

**DUE DATE SLIP**

**GOVT COLLEGE, LIBRARY**

**'KOTA (Raj.)'**

Students can retain library books only for two weeks at the most

BORROWER'S No	DUE DATE	SIGNATURE

ॐ श्री ॥

## हरिदास-संस्कृत-ग्रन्थमाला

प्रकाशकः

१८०

॥ वी. ॥

वनारस-गवर्नमेण्ट-संस्कृत-कालेज- प्रथमपरीक्षापाठ्यनिर्धारित  
गाल्मीकीय-अयोध्याकाण्डस्य २४-३१ सर्गात्मकं-

## रामवल्गमनम्

सदिष्पण-सान्वय-सुधा-इन्दुमती-संस्कृत-हिन्दी

चतुष्प्रष्ठाप्रितम् ।



३१

६

७६

टीकासार—

श्रीकृष्णमोहन शास्त्री

श्रीरामचन्द्र द्वा

Herbert College Library

KOTAH

Class No

583/

Book No

1196

Accession No

11926

K P P 5000 2 49

प्रसा कर रह ह।

॥

है। का

ताराचरण

को गयी है।

मा का विवेचन।

आजतक इतनी

मी इष्ट के सामने

ठ से इष्टकी

मूल्य १२)

## दशकुमारचरितम्

बालविद्योधिनी-बालकीडा समृत हिन्दी टीका द्वयोपेतम् ।

साहित्याचार्य ५० ताराचरण भट्टाचार्य कृत बालविद्योधिनी समृत टीका तथा  
लक्कोडा हिन्दी टीका से युक्त परीक्षोपयोगों यह सक्तरण सब सक्तरणों से श्रेष्ठ  
। विशेष क्या आप स्वयं परीक्षा कर निर्णय कर सकते हैं ।

पूर्वपीठिका ॥) पूर्वपीठिका तथा प्रथम और अष्टम उच्छ्वास २)  
पूर्वपीठिका तथा उत्तरपीठिका का द्वितीय उच्छ्वास ( अपदारवर्मचरित  
यन्त ) अभिनव भूमिका द्वयोजित संस्कृत २॥) संपूर्ण ग्रन्थ ४॥)

## नागानन्द नाटकम्

भावार्थदीपिका-संस्कृत-हिन्दी-टीकाद्वयोपेतम् ।

इस अभिनव परिवर्द्धित द्वितीय सक्तरण में उम्भूर्ण मायको उर्वाङ्ग पूर्ण  
क्षोभयोगी बना दिया गया है। अतिशय सरल व विद्युत भाषा टीका को  
पास्थानमें सनिवेशित हरके प्रत्येक खंग का परीक्षोदयोगी समित हिन्दी  
यादार भी दे दिया गया है। द्वितीय सक्तरण ३॥)

प्रामिस्थानम्—चौखम्बा समृत पुस्तकालय, बनारस सिटी ।



## रामवनगमनम्

काशीस्थविष्वनाथमन्दिराध्यक्षस्थापितश्रीभगवानीशङ्करसस्कृतमहाविद्यालयप्रधानाध्यापकग्राहकरणसाहित्याचार्यठडकुरोमनामक

श्रीकृष्णमोहनशास्त्रिरचित् 'सुधा' टीक्या  
तथा

पण्डित श्रीरामचन्द्रज्ञा व्याखरणाचार्यरूप—  
'इन्द्रमता' टीक्या च विभूषितम्।

( द्वितीय सत्करणम् )

CHECKED APR 1959  
प्रकाशक

जयकृष्णदास—हरिदास गुप्तः—  
चौखम्बा सस्कृत सीरिज आफिस,  
बनारस सिद्धी ।

स० २००४ ]

मूल्य १॥०)

[ १६६७ ई०

[ अस्य प्रथम्य सर्वेऽधिकारा प्रकाशकाधीना ]

[ *Registered According to Act XXV of 1867* ]

---

PRINTED BY

JAYA KRISHNA DAS GUPTA  
VIDYA VILAS PRESS BENARES CITY  
1947

---

[ *All Rights Reserved by the Publishers* ]

## प्राक्थनम्

~~~~~

रामवनगमनदेव वा मोक्षिरामायणाऽयोध्याकाण्डान्तर्गतमिति प्रायेण पुनर्सिद्ध  
मेवाऽनहतदर्थं न किञ्चिद्दक्षिणस्ति । यदप्यप्रत्येतिवृत्तिं रामवनगमनोपक्रम  
एव प्रतीयते न तु 'रामवनगमनम्' तथापि वनगमनार्थमेव श्रीमतो रामस्य मातृ  
दशनादिविधानात् रामदनगमनभियस्य नामधेयम् । पितृ-मातृ-स्वामि-भ्रातृ-  
भक्तीनां यथाक्रम सञ्जिवेशात् सुकुमारमतीजा बालाना महन्तमुपकारमय जनयि  
त्यतीति द्रढोयान् मे विश्वास ।

यद्यपि सस्करणात्तो वहव पाठभेदा सनुपलभ्यते किंतु नवीननियमाव  
स्यनुरोधेन निणयसागरयन्नालयमुदितसस्करणस्य विशुद्धपाठानुकम एव पाठो मया  
मूले सनिवेशित । वस्य च परीक्षोत्तितार्थूणा बालानामुष्योऽग्निं काखिरपि टीका  
भनासाय सद्याऽतिविषमेऽपि समये चौनम्बासाङ्गतमुस्तकाळयाद्यक्षे गोनोक्षवासि-  
'बाबू-हरिदासगुप्तात्मक-श्रीजयकृष्णदासगुप्तमहोदये टीका निमोत्तु प्रेरितोऽह  
स्वहेनैव समयेन टीका निमित्वान् । द्वानोपकारवद्वपरिकरैर्मिथिलाग्राथसम्पाद  
वैरस्मिन्नप्रवरै श्रीरामचन्द्रभा व्याकरणाचार्यमहाशयैमहता परिव्रमेण  
'इन्दुमता' नामकहिन्दीभाषया समलृतवेदमतीव सारल्य भजते । यदि चैन  
सस्करण समादाय आत्रा सन्तोषमेऽन्ति तदाऽहनात्मान उक्तश्चयत्न सन्भावयि  
त्यापि । आशासे च मुद्रणदोशात् प्रमादाद्वा यत्र क्वचन काखिदशुद्धय परिलक्षिता  
स्युस्ता कृपया सशोच्य व्यवहरिष्यन्ति श्रीमत इति शम् ।

थोमवानीशाहर सल्लुत  
महाविद्यालय काशी }  
स० २००४ }

साहित्य-वाकरणाचार्य  
श्री कृष्णभोहन शास्त्री

## ग्रन्थ-प्रशास्ति

काव्य ग्रन्थोंमें महर्षि वाल्मीकि प्रणीत 'वाल्मीकिरामायण' ही एक ऐसा मुख्य ग्रन्थ हे जिसकी रचना काव्य-कलेचरमें सबसे पहले हुई। इसीलिये यह प्राय आदि काव्यके नामसे प्रसिद्ध है। इस ग्रन्थमें सबसे विशेषता यह है कि रामायण तारसे पूर्व ही वाल्मीकिजीने अपने तपे बलसे इसकी रचनाको थी। इस ग्रन्थमें चौप्रीस द्वजार श्लोक हैं और प्रत्येक द्वजारके शुष्ठु श्लोकके आदिम अद्वार यदि कमसे लिखा जाय तो चौप्रीस अद्वारको गायत्री इस ग्रन्थसे निकल आती है। महर्षि वाल्मीकिजीकी मानव जातिका कल्पयण करनेवाली और युगानन्दरकारिणी अनुभूति (रामायण) ऐसी है जिसपर संसारके करोड़ों बड़े २ मनाथी लट्टू ही रहे हैं। इसम भारतीय सभ्यता पिनृ-भक्ति भ्रातृस्नेह, ख्याली शिक्षा, स्वामि भक्ति राजनीति आदिका वर्णन ग्रन्थकारने ऐसे मर्मस्पदांश शब्दोंमें किया है कि विश्वके अंग किसी भी धर्म ग्रन्थोंमें नहीं है। रामायण हमें पुण्य-राज्यमें, ज्ञानीके ब्रह्मानन्दम योगीके योगानन्द-निवेतनम और भक्तके प्रेम-निकुञ्जनमें लेजाने वाली है। इस प्रायम हिन्दूजातिकी समूची छस्कते, सारा द्वितीयास और समस्त ज्ञान-विज्ञान भरे पड़े हैं।

**स्रोता-यनवासके उपरा-त महर्षि वाल्मीकिजीने अपने आश्रममें भगवती सतो सीताके गर्भसे उत्पन्न युग्मज लक्ष-कुश दोनों भाईयों को ही सर्व प्रथम इस ग्रन्थका अध्ययन कराया था।**

प्रस्तुत 'रामवनगमन' इसी वाल्मीकि-रामायण अयोध्याकाण्डके अन्तर्गत २४ से ३१ सर्गोत्तमक है। १९४८ की नवीन नियमावलीने अनुसार निशुल्यमागम-प्रेससे प्रकाशित वाल्मीकिरामायणके मूलाधारपरही यह ग्रन्थ तैयार किया गया है। यह भी इस सक्षरणकी एक सुरय विशेषता है। पाठकोंको सक्षरणान्तरके पाठान्तरोंको देखकर ग्रन्थमें नहा पढ़ता चाहिये ग्रन्थुत नियमावलीके अनुसार इसी सक्षरणको विशुद्ध व प्रामाणिक मानकर अपनाना चाहिये।

### द्वितीय स्सकरण

गवर्नेंट सम्मुक्त कालेज, बनारसके मनोनीत प्रिसिपल डा. महलदेव शास्त्री जीने प्रस्तुत 'रामवनगमन' को भूरि २ प्रशासा को है। चौबांधा सत्कृत पुस्तकालय के प्रति प्रिसिपल साहबको बहुत ही धक्का बनो है। इसीके फलस्वरूप हमारे पुस्तकालयने एक महीनाके अन्दर ही प्र० स्सकरण तुक्त जानेपर अविलम्ब इन परिष्कृत द्वितीय स्सकरण निकालनेका उत्साह किया है।

## कथा-सारः

३४८

### चतुर्विंशः सर्गः

पित्राङ्गानुवर्तने हृषमनहृक् स्वतन्त्रय (रामम्) अवलोक्य कौशल्या मामपि  
सहैव नय, यत इह दु स्वभावानां सपलीनां मध्ये मे लाभो नोचित इत्यगारीत् ।  
भर्तृशूद्धृष्टणमेव सभर्तृकाया कत्तन्य तद्वते नाय पाया कल्याणयेति बुद्धतो  
रामस्य वनगमन स्व विनामि सा यथाकथिदितुमेने ।

### पञ्चविंशः सर्गः

वनगमनोयत राम स्थावरजह्नमादय सर्वे देवा लोकपालादयस्थ वनेत्वा रक्षा  
निष्ठत्वाशिष्य दत्तवा कौशल्या मधुदध्यक्षतादिना द्रिजान् रक्षितवाच्य वाच्यामास ।  
तेभ्यथ दक्षिणा समप्य वृत्रानुरक्षे मुरेन्द्रस्य, सुग्रनयने गणदह्य, अमृतोपादने  
दैत्यान् घ्रत सुराधिपत्य, त्रिविन्द्रमान् प्रक्षमतो वामनस्य च याद्या महाल समभ  
वत्ताददा तेऽस्तिव्येव विशेषत पुनरप्याशिष्य दत्तवा परिव्यज्य च वन गन्तुमादि  
देश । अथ रामस्तचरणाभिवाय प्राणवल्लभा सीतामप्यनुमानयितु तद्वयन प्रतस्थे ।

### षष्ठिविंशः सर्गः

अविदिताभिषेकविषाततया प्रहृष्टं जनय ती सीता देवान् सम्पूर्ण्य चान्द्रहर्तृ-  
राममन प्रवीक्षने तावहुमनहृक् व्यपगतकार्ति हियाङ्गवनतवदन समागत भर्तृर  
(रामम्) अद्वय कुतस्त्वामभिषेकसम्भारा राजच्छवचान्नरादयोनोपतिष्ठ ते, कुतव्येद  
भुखर्जेवधर्मिति सीतासा धृष्टे राम प्राह-देवि । सुरा जग दैवेष्यै जाग्रे वरद्वय(१)  
मे पित्रा प्रतिश्रुत सम्प्रतमभिषेकोयते इप्ये तथाएव श्रतिश्रुतवरद्वयस्याऽयमेव समय  
इति विश्वाय एकेन ममामजो भरतो राज्येऽभिषेक्य अपरेण चतुर्दशवर्षीणि  
रामो वने हिष्ठिविति यस्तिते सूक्यप्रतिष्ठेन पित्रा तद्वचोऽङ्गीकृ याहतोऽह वन  
प्रवत्रजामीति । प्रायूयुजच्च त्वमिहैव ब्रतोपवासतपरा भरतशुभ्रान्तृपुनसमाव  
वलोक्यन्तो यथापूर्वे मे मात् पितर च सेवत्वेति ।

### सप्तविंश भर्तृ

रामेण मात्रादिसेवार्थमिहैव वसेत्युपदिष्टा सीता कृतव्रण्यकोषाऽपि तद्वाक्यम्य

(१) वरद्वयके विषयमे अधिष्य चतुर्य पृष्ठपर “अभिनव वाने” पढ़िये ।

जनापहास्यत्वमुपपाद भवनिर्वासनेन ममाऽरि निर्वासन सिद्धमेवेति प्रदर्शयन्ती  
चाऽसोऽव्यस्ते विरहोऽतो मां स्वैर्व वन नयेति तमभ्यर्थयामास ।

### अष्टाविंशः सर्गः

एव प्रार्थमानो सीता॑ यूगेन्द्रसरीषणदिदुषजन्तुसत्त्वादशनपानशयनादेव्य  
वस्थितत्वाच सवथा वनवासस्यातिक्लेशयुक्त वेन दु सहत्वं प्रदर्श्यं रामस्तस्मात्तो  
प्रत्यावर्त्तयितुमचेष्टत ।

### एकोनप्रिंशः सर्गः

इथं भर्तुर्वचन निशम्येषदथुमुखी सीता प्राद—नाथ ! वने वस्तव्यता प्रति  
त्वदुक्षास्ते न दोषा प्रत्युत त्वया सह स्नेहपुरस्कृता गुणा एवेति विद्धि । प्रपि  
च पितुगृहे, सामुद्रिकशास्त्रविद्विर्बनवासोऽस्या भ्रुवं भाषीत्युच्चमत स समय  
प्राप्तोऽय त्वया सहाऽवश्य गमिष्यामीति प्रास्तावीत् । एव सत्यपि राम वियोग  
भीरन्ता सा॒त्ववचोभि पर्यसा॒त्वयत् ।

### त्रिंशः सर्गः

अनेकश सा॒त्वमानापि सीता रामे परिजाणात्सामर्थ्यमारोप्य स गहया  
मास—नाथ ! मार्गे त्वया सह कुशाभाशशरेषीका ये च कण्ठकिनो हुमास्ते  
तूलजिनसमस्पर्शी भवेयु । त्वत्याग एव मद्ददुख भविष्यति सहानुगमने क्लेश  
लेशोऽपि मयि न स्यादिति प्रतिपाद्य मा परित्यज्य वन गते त्वयिह विष धीत्वा  
प्राणास्त्यद्यामि, किंतु क्षणमपि परवशा जीवितु नोत्सह इति प्रास्तावीत् । अथ  
सेन वशीभूतो रामस्तस्या अनुगमन स्वीकृत्य वनगमनाय मङ्गलदानादी युपया  
दयितु तस्यै सदिदेश ।

### एकत्रिंशः सर्गः

एव दम्पत्यो सवाद थुत्वा लक्ष्मणो घनधरोऽह तेऽप्येसरो भूत्वा गमिष्या  
मीति राममयाचत । रामस्तु बहुभि सान्त्वववनैस्त न्यघेधीत् । पूर्वं दत्तानुमति  
रपि कथमिदानी निषेधसीति पृष्ठे त्वयेहैव स्थित्वा मातृपालन विषेधमिति बहुशा  
सा त्वमानोऽपि लक्ष्मणो मत्सदशपर सहस्रपालनक्षमाणा मातणा कोऽह पालक  
इति तज्जिष्येधीत् । अथ रामस्तदनुगमनमनुमत्य वरणदत्तायुधादीनि गुरुषृष्टादानेतु  
तथा मीयघनसमर्पणपात्रीभूतान् सुयहादि-कुशीनानायवितु च लक्ष्मण प्रेरित्



## सुधाकर्तुः परिचयः

---

मिथिलादक्षिणे भागे जाहन्याइचैव यनिधौ ।  
 ब्राह्मणे कर्मनिपुणैर्धनिवैष सुशोभिता ॥  
 शाखैर्हैथ सुविख्याता नदा च समलङ्घता ।  
 एव सर्वंगुणोपेता “वरीनो” वसति शुभा ॥  
 तस्यां वस्तुलोद्भूतो दयावान् शुचिमास्तथा ।  
 ‘बद्रिनाथात्मज’ श्रीमांहलोकनाथति विश्रुत ॥  
 ज्योतिर्विदामप्रगण्य सबलोकप्रियवद ।  
 स चोपयेमे विधिना कश्यपा वयसम्भवाम् ॥  
 पुनो “गृहमणे” नित्यमावालयादवृत्तत्पराम् ।  
 सर्वोनन्दकर्ता “लद्मो” यथा विष्णुहि क्षीरजाम् ॥  
 तस्यामह समुद्यत “लद्मोहन” संक्षित ।  
 “गेनादिलाल” गुरुतो दद्ध्वा शान च शैशवे ॥  
 काह्यामागत्य बहवो गुरवो भेडभवस्तत ।  
 तेषा सुश्रूषया किञ्चिज्ज्ञन प्राप्य च सम्प्रतम् ॥  
 सुधयाऽलङ्घतन्त्वेनमादाय यदि बालका ।  
 प्रहृष्टेयुस्तदा मन्ये सफलत्य मम थम ॥  
 कण्ठकाद्वरदोपेण अमेण यदि वा मम ।  
 शुटिर्चेदिह सशोभ्याऽदुष्टत्व दुलभ यत ॥

शुभ मूलात् ।

---

## अभिनव चातें

पेज ५२, इलोक २१, यहाँ 'महावरी' के विषयमें शका यह होनी है कि, एक बर तो देवा सुरस्थामके समय मिला था और दूसरा कद मिला था । छिह्न किसीका मत है कि दोनों एक ही समयके हैं, परंतु एक ही वारणसे वरदयका वपस्तिन होना युक्तिसङ्गत प्रतीत नहीं होता । वस्तुत दोनोंकी वधा-प्रसङ्ग इस प्रकारका है —

एकना देवराज इद्रका निम त्रण पाकर देवाद्वार-सप्तामके लिये बब महाराज दशरथजी प्रस्तुत हो रहे थे, उस समय महाराजको देवनोकके सप्ताममें पहुचानेवाला कोई सारथी उपस्थित नहीं था । इसलिये महाराज अति चिन्त दुष्ट, तब महाराजी कैकेयीने सारथिनी बनकर उ है उस सप्ताममें लेजाकर मदद पहुचायी ( जैसा कि ५२ पेजकी टिप्पणीमें सुधा ठीकाकारने लिखा है ) उसीकी सुनीमें महाराजने प्रथम बर मांगनेकी कहा था ।

**द्वितीय बरका प्रसङ्ग इस प्रकारहा है —**

महाराज दशरथजाना निदम था कि जबतक रामजी (वचपनमें) उनके नाथ भोजन नहीं करते थे तबतक महाराज भोजनपर नहीं बैठते । एक गिनवी बात है—सधा इका समय था, महाराज भोजन बरनेकी आगये पर रामजी अभी तक नहीं आये । कारण बह था कि उस दिन रामजा बच्चोंके साथ खेलमें छार गये थे और अपने साथियोंके दाव तुकारामें इतने अम्भ थे कि उ है भोजन की सुधि नहीं थी । महाराजजा अनेक बार सन्देशा गया पर वे नहीं आये । इस तरह अपराह्नका समय दो गया । अ उमें कैकेयीने कहा—हे महाराज ! यदि आप हो तो मैं लालनको बुलाल कैं । महाराज कैकेयीकी तामसी प्रकृतिसे परिचिन थे इसलिये उ होने मना किया और कहा कि कोई कारण ऐसा नहीं है जो तुम्हारे कहनेमें वे आज्ञायें । इस पर कैकेयीने तमक भर बढ़ा हूँ, ऐसा आप क्या कह रहे हैं, मेरा लालन, जिसको मैं पाणीने बढ़कर मानती हूँ, भरे कहनेम नहीं आवेगा ! अच्छा मैं अभी उसको बुला लानी हूँ । यह कहकर कैकेयी स्वयं वहाँ गयो, पर रामजी माता कैकेयीसे देखकर चाल—मुन्नम चापल्यके कारण छिप गये । कैकेयीने बार बार उनसे चलनको कहा और अ तमें यह भी कहा—ऐखो लालन ! यदि अब तू नहीं चलेगा तो मैं जलकर खाक हो जाऊँगी, पर महाराजके सामने खाली नहीं लोटूँगी । इत्यादि कहने पर भी नद रामजी चलनेकी तैयार नहीं हुए, तब कैकेयीने नौकरोंको बिता सजानेका भाष्य दिया और जलनेक लिये चिडापर बैठ गयी । विमाता कैकेयीके इस प्रवारका दु साइस देखकर रामजीमें नहीं रहा गया, वे दीड़कर चिनाके पास आकर कहने लगे—हे माताजी ! बनिये मैं चलनेकी तैयार हूँ । उसीकी सुनीमें महाराजने ( दिनाय ) बर मांगनेकी कहा था ।

श्रीवाल्मीकिरामायणान्तर्गतं

# रामवनगमनस्

सान्वय-सुधा-इन्दुमती-संस्कृत-हिन्दी-टीकोपेतम्

अयोध्याकाण्डे चतुर्विंशः सर्गः

मातृ-दर्शनम् ।

तं समीक्ष्य व्यवसित पितुनिर्देशपालने ।  
कौशल्या वाष्पसरद्धा वचो धर्मिष्ठमवधीत् ॥ १ ॥

सर्वारिष्टदर सुखैकरमण श्रीसीतया शोभित  
मेवशयामतनु प्रसन्नवदन श्रीलघुमणेनान्वितम् ।  
कारण्यामृतसागर भवभयत्वसैकवीजं पर  
वन्दे ॥ ह रघुनायक प्रभुवर भूपालचूडामणिम् ॥  
सुधा रथार्या करोम्यस्य विशुच्छान्नहितेपिणीम् ।  
कृष्णोहनशमाह लोकनाथात्मजोऽल्पधी ॥

अन्य — पितु , निर्देशपालने व्यवसित, धर्मिष्ठ, त, समीक्ष्य, वाष्पसरद्धा  
(सती) कौशल्या, वच , अवधीत ।

सुधा—पितु =राशो दशरथस्य, निर्देशपालने=आशापितकरणे, व्यवसित=कृतनिष्ठयम् , धर्मिष्ठम् =अतिशयेन धर्मवातम् , त=श्रीरामम् , उपीक्ष्य=अवलोक्य, वाष्पसरद्धा=वाष्पमन्तदृष्टा तेन सरद्धा अवशदा, (सती) कौशल्या=राममाता, वच =वक्ष्यमाणवचनम् , अवधीत् =अवोचत् ।

श्रीजानकीचरणकञ्जमरन्दन्त्रूप—श्रीरामचद्रसुहृती जननोपहृत्यै ।  
टीकान्तनोति वचसा सरलातिरम्या स्वग्रिताङ्ग मनसेन्दुमर्ती दधान ॥

इन्दुमती—( तदनन्तर, आवेशमें आये हुर छोटे भाई लदमणको समझा  
बुझाकर शान्त करनेके बाद ) जब माता कौशल्याने देखा कि धर्मिष्ठ भीरामचन्द्र  
बी पिताकी आशा ( १४ वर्षका वनवास ) पालन करनेके लिये उद्यत हो गये हैं  
तब उनके नेशोमें आश, उमड आया, वे गद्वद कठसे (रामजीको) कहने लगे— ।

अदृष्टु खो धर्मात्मा सर्वभूतप्रियवद् ।

मयि जातो दशरथात् कथमुञ्जेन वर्तयेत् ॥ २ ॥

अन्वय.—दशरथात्, मयि, जात, सर्वभूतप्रियवद्, अदृष्टु ख, धर्मात्मा, (राम) उञ्जेन, कथ, वर्तयेत्।

सुधा—तद्वचनमेवाद—महृष्टेति । दशरथात्=दशदिनु अप्रतिहतो रथो यस्य स तथोक्त चक्रवर्तीत्यर्थ, तस्मात् । मयि=कौशल्यायाम्, जात=उत्पन्न, सर्वभूतप्रियवद्=निखिलप्राणिप्रियवक्ता ( सर्वभूते निखिलप्राणिषु प्रिय मधुर वदतीत्येव शील ), अदृष्टु ख=अग्नवलोक्तिक्षेत्र, अद्याऽवधिकदा प्यननुभूतदुख इति यावत् । धर्मात्मा=धर्मस्वरूप, ( ताहशो भवान् रामः ) उञ्जेन=दैवात् क्षेत्रादिषु प्रकीर्णाना ब्रीहादिधान्यानामहृत्या एकैकर्णो प्रदण मुञ्जुस्तेन तथोक्तेन, फलमूलाद्याहरणादीनामुपलक्षणश्चैतत् । कथ=कैन प्रकारेण, वर्तयेत् =जीवेत् ।

इन्दुमतो—( कौशल्याजीने कहा है वत्स राम ! ) जिसने कभी दुखका अनुभव नहीं किया और धर्म पथपर चलनेवाला है एव नवसे प्रिय वचन बोलने वाला है और चक्रवर्ती महाराज दशरथके ग्रीष्म तथा मेरे (महारानी कौशल्यादे), गर्भसे उत्पन्न हुआ है, वह (राजकुमार त् राम) वनमें ( १४ वर्षतक ) किस प्रकार उञ्जुवृति ( खेतमें विलो दूष दानेको चुन-चुनकर श्रूयियों की तरह ) से निर्वाह करेगा ।

यस्य भृत्याश्च दासाश्च मृष्टान्यज्ञानि भुजते ।

कथ स भोक्यते रामो वने मूलफलान्ययम् ॥ ३ ॥

अन्वय—यस्य, भृत्या, च, दासा, च, मृष्टानि, अज्ञानि, भुजते, स, अयम्, राम, वने, मूलफलानि, कथ, भोक्यते ।

सुधा—यस्य=तव, रामस्य, भृत्या=भटा, च=पुन, दासा=दास्यकरा, मृष्टानि=इलाघ्यानि, अज्ञानि=ओदनादिमद्यद्रव्याणि, भुजते=खादति, स=ताहशो राजपुत्र, अयम्=भवान्, (राम) वने=दण्डकारश्ये, मूलफलानि=कन्दफलानि, कथ=कैन प्रकारेण, भोक्यते=खादयिष्यति ।

इन्दुमतो—(माता कौशल्याने अधीर होकर मिर कहा है वत्स !) जिसके नौकर-चाकर मिष्ठानम् ( सुस्वादु पकाजादि ) भोजन करते हैं, वह ( मेरा पुत्र राजकुमार ) राम किस तरहसे वनमें कन्दमूल फून खायगा ।

क पतच्छ्रद्धधेच्छ्रुत्या कस्य वा न भवेत् भयम् ।

गुणवान् दयितो राहृ. काकुतस्यो यद्विवास्यते ॥ ४ ॥

अन्तर्य—गुणवान्, गश, दयित, काकुतस्य, यद्, विवास्यते, एतत्, क, अद्वेत्, वा, शुभा, कस्य, भयम्, न भवेत् ।

सुधा—गुणवान् = गुणयुक्त, राहृ = दशरथस्य, दयित = अत्यन्तप्रियतम्, काकुतस्य = राम, यद् = यस्मात् कारणात्, विवास्यते = ( वन ) ऐपते पतद् = एतादृश ( वन ), व ( जन ) अद्वेत् = गुणवत् प्रियपुत्रविवासन सभी चीन मन्येन, असुभावितत्वादिति भाव । वा = अथवा, धूत्वा = आकर्षण, ( अदेवस्त्रे ) कस्य = अयोध्यावासिनो जनस्य, भय = रामगमने कथमत्त्वाना जीवनमिति भीति, न भवेत् = न स्यात् । अपि तु सर्वस्याऽपि स्यादेवेति भाव । यद्वा—गमविवासन सर्वमिति शास्त्रा स्वपित्रादिम्बो भमाऽप्येव मविघ्नीति कस्य हृदये भय न भवेत् । अपि तु भवेदेवत्वाशय ।

इन्दुमतो—( पुनभ कौशल्याने कहा—वे बत ! ) चक्रवर्ती महाराज दशरथ अपने अत्यन्त प्रिय तथा गुणवान् रामको राज्यसे निर्वासित कर रहे हैं, यह समाचार सुनकर, इष्टपर कौन विश्वास करेगा और इस समाचारसे किसको भय नहीं होगा अर्थात् जो कोई इस समाचारको सुनेगा वही भयमीत ही उठेगा और कहेगा कि जब महाराजने सर्वगुण सम्पन्न और सर्वप्रिय निरपराधी धीराम जीको कैकेयीके कहनेसे देशसे निकान दिया है तो निश्चय ही महाराजकी तुद्धि मारी गयी है, अब मेरी रक्षा भी इस राज्यमें नहा हो सकेगी अथवा जब महा राजके ऐसे धेष्ठ जनने भी अपने पुत्रको निश्चालदिया है तब इमारे पिंगा तो हमें धरमें क्यों रहने देंगे ।

नून तु यत्त्वौक्तोके कृतान्त सर्वमादिशन् ।

लोके रामाभिरामस्त्व वन यत्र गमिष्यति ॥ ५ ॥

अन्तर्य.—सर्वम्, आदिशन्, ( सन् ) कृतान्त, तु, लोके, नून, चलवान्, यत्र, राम ।, लोके, अभिराम, त्व, वन, गमिष्यति ।

सुधा—सर्व = सुखदुःखादिकम्, आदिशन् = प्रदिशन्, ( सन् ) कृतान्त = दैवम्, तु, लोके = इह सभारे, नून = निश्चित, चलवान् = पराक्रमशाली, “इत्यह मन्ये” इति शेष । यत्र = दैवे निश्चिते, हे राम !, लोके = सभारे, अभिराम = मनोज, त्व, वन = विपिन, गमिष्यति = व्रजिष्यति । यद्वा—हे राम ! अभि-

रामस्त्व यत्र=लङ्घाया, ( यदर्थं गमिष्यति ) सः कृतात् =धर्मस्वरक्तर्चा रावण ,  
सर्वे जनम् , आदियन्=स्वाज्ञाविषयोभूत कुर्वन् , लोके=इह पृथिव्या , बलवान् ,  
इत्यह लोके =जाने ८तेन सावधानतया त्वया चक्षितव्यमिति ध्वनितम् । इह  
पृथिव्यामित्यनेन तब समुख परमार्थतो न बलवानिति ध्वनितम् ।

इन्द्रुमतो( भाग्यके ऊपर पश्चात्ताप करती हुई माता कौशल्याने फिर कहा  
है वरस ! ) जब समस्त कौशलराज्यके सर्वप्रिय तुम ( राम ) बन जाओगे तब  
सुख-दुःखके नियमनकर्ता भाग्य ही को निश्चित रूपेण सब से बड़ा मानना  
पड़ेगा ।

अय तु मामात्मभवस्तवादर्शनमाशत ।

विलापदु खसमिधो रुदिताभुहुताहुति ॥ ६ ॥

चिन्तावाध्यमहाधूमस्तवागमनचिन्तज ।

कर्षयित्यरात्यधिकं पुत्र ! नि श्वासायाससम्भव ॥ ७ ॥

त्वया विहीनामिह मा शोकाग्निरतुलो महान् ।

प्रधक्षयति यथा कक्ष चित्रभाउर्हिमात्यये ॥ ८ ॥

अन्वय —हे पुत्र ! , तु , आत्मभव , तब , अदर्शनमाशत , विलापदुःखस-  
मिध , रुदिताभुहुताहुति , तब , आगमनचिन्तज , चिन्तावाध्यमहाधूम , नि श्वा-  
सायाससम्भव , महान् , अतुल , शोकाग्नि , इह , त्वया , विहीना , माम् , अधिक ,  
कर्षयित्वा , हिमात्यये , चित्रभानु कक्ष , यथा , ( तथा ) प्रवद्यति ।

सुधा—सम्प्रति त्वद्वियोगजनित दुःख सोऽुमशक्त्यमिति बोधयन्ती आह-  
अयमिति । “अय तु” इयारम्भ “हिमात्यये” इत्यन्त श्लोकव्यमेसान्वयि  
तिशेषकमित्युच्यते । तदुच्चम्—“द्वाग्यो मुगममिति प्रोक्त त्रिभि श्लोकैविशेषकम् ।  
कलापक चतुर्भिं स्यात्तदूर्वं कुलक स्मृतम् ॥” इति । (व्याटया) हे पुत्र=हेराम ,  
तु=किन्तु , आत्मभवः =स्वमन प्रातुभूत , तवादशनमाशत =तब—भवत ,  
अदर्शनम्—अनवलोक्यमेव बद्धकस्त्वात् माशतो-वायुर्यस्य स तयोक्त , विलाप-  
दु खसमिध =विलापदु ख-प्रलापज इत्य , तदेव समित-इत्यन यस्य स ता  
इत्य । रुदिताभुहुताहुति -रुदिताभूष्णि-रोदनजन्यनेत्रजलानि , तान्येव हुता  
प्रकृता , आहुतियस्य स तयोक्त । चिन्तावाध्यमहाधूम =चिन्तावाध्य—चिन्त  
नोध्मा , स एव , महाधूमो यस्य स तयोक्त । तवागमनचिन्तज =तव-भवत ,  
आगमनचिन्तज —अतिष्ठेशजनकदूरदेशगमनोत्तर कथमयमागमिष्यतीति चित्तन

बनित । निरवासायाससम्बव =निवासायासेन-नि इवासरुपरिश्रमेण सञ्चुद्ध-  
णात्, सम्बव -वृद्धिर्यस्य स तादृश । महान्=अतिाद, ( अत एव ) अतु-  
ल =इत्यता विधातुमशक्य, शोकाग्नि =शोकहृष्ववह्नि, इहशरीरे, त्वया =  
जलस्थानीयेन भवता, विहीना=विषुका, मा=कौशल्या, तव मातरमित्यर्थ । मा=  
रज्यलद्मीश, 'इन्द्रियालो कमाता मा द्वीरोदतनया रमा' इत्यमर । अधिकम्=  
अत्यर्थं यथा स्यात्तथा । कर्णयित्या=क्लेशप्रापणेन शुक्राकृत्य हृशा विधायेति  
यावत् । हिमायमे=हिमस्वरुपमये भीमे इति यावत् । कद्ग=गुलमनतादिक-  
मित्यर्थ । वित्रभानु =वन्योऽग्नि, सूर्यो वा, यथा, ( तथा स ) प्रधन्यति =  
महसीकरिष्यनि । प्रज्ञव लन्तवहेष्वगान्तियथा ज्ञेनैव भवति तथैव तवागमनेन  
जलस्थानीयेन मम शोकाग्नेष्वप्नो भविष्यतीत्याशय ।

**इन्दुमती—**( पुत्रवियोगसे होनेवानी अपनी विनिक्षा स्वरूप वताई हुई  
कौशल्याने कहा— ) है वस्तु । तुम्हारे दन चले जानेपर मेरे मनका शोकाग्नि  
तुम्हारे अदर्शनरूपी वायुने सुन्जग उठेगी और विलाप तथा दुखरूपी इच्छन  
( लक्ष्मी ) एव रोदनाधुरूपी धूम के पहनेसे प्रश्वालित हो जायगी तब उससे  
चिन्तारूपी धूम निकलेगा और वह मुझे सुखाकर उसी तरह मस्मसात् कर देगा  
जिस तरह हिम ( जाङे ) के पथात् ग्रीष्म आनेपर कृक्षोंकी रागड़से उत्पान दावा  
नन बनके लता—मवादिकोंकी भस्म कर देता है ।

कथ हि घेनु स्व वस्तुं गच्छुन्तमनुगच्छुति ।

अह त्वाऽनुगमिष्यामि यत्र वस्तुं । गमिष्यसि ॥ ६ ॥

**अन्यय.—**हि, गच्छु त, स्व, वस्तु, घेनु, कथम्, अनुगच्छुति, ( तथा )  
है वस्तु ! यत्र गमिष्यति, अह, ( तत्र ) तत्र, अनुगच्छुति ।

**सुधा—**हि=यत्, गच्छुत=वज्ञत, स्वम्=आत्मीय, वत्तत=पुत्र घेनु =  
गै, कथ = यथा, अनुगच्छुति=ग्रनुवज्ञति ( तथा ) है वस्तु ! यत्र=यस्मिन्  
स्पाते, ( इव ) गमिष्यति=ग्रन्तिष्यति, अह=कौशल्या, तव माता, ( तत्र ) त्वा=  
त्वाम्, अनुगमिष्यामि=अनुवज्ञिष्यामि । अत्र कथ शब्दो हि भथार्थ, अन  
एवोत्तरादेहं तयेत्यथाहार्यम् । त्वेत्याप॑त्वात् प्रयागो ज्ञय । तथा च यत्र यत्र  
स्वकीयो वत्सो गच्छुति तत्र तत्र तदतु यथा गौरुगच्छुति तथैव यत्र यत्र एव  
गन्ताऽग्नि तत्र तत्राऽहमनुगमिष्यामीति सरलार्थ ।

**इन्दुमती—**( अन्तमें माता कौशल्याने कहा— ) है वस्तु ! जिस प्रकार

गाय अग्ने वल्लुड़ेके पीछे २ चलती रहती है (अपनी ग्रौलोके सामने ही वल्लुड़ेका रहना पसन्द करती है) उसी प्रकार मैं तुम्हारे पीछे २ जर्दा तुम जाश्रोगे वहाँ में भी चलूगी (तुम बनजाओगे तो मैं भी तुम्हारे साथ चलूगी। तुम्हारे बिना मैं यहाँ नहीं रह सकूगी)।

**यथा निगदित मात्रा तद्वाक्य पुरुषर्षम् ।**

**श्रुत्वा रामोऽव्रवीद्वाक्य मातर भृशादुखिताम् ॥ १० ॥**

**अन्वय—**पुरुषर्षम्, राम, मात्रा, यथा, निगदित, तद्वाक्य, श्रुत्वा, भृशादुखिता, मातर, वाक्यम्, अव्रवीत्।

**सुधा—**मातृवचनभाणानन्तरकालिकोदन्तमाह—यथेति । पुरुषर्षम् = पुरुषर्षेषु, राम = कौशल्यानन्दन, मात्रा = कौशल्यया, यथा = येन प्रकारेण, निगदित = कथित, तद्वाक्य = तद्वच, भृत्वा = आकर्षण, भृशादुखिता = अत्यंत कलेशमनुमवन्नी, मातर = जननी, वाक्य = वच्यमाणवचनम्, अव्रवीत् = उक्त वान् । यथा निगदितमित्यनेन स्ववाचोऽप्यगोचरत्वे दर्शित मुनिना ।

**इन्दुमतो—**पुरुषस्तेषु श्रीरामचद्गी माता कौशल्यानी तथाकथित (तुम्हारे बिना मैं नहीं रह सकूँगी, तुम बन जलोगे तो मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगी इत्यादि) चातोको सुनेकर अत्यन्त दुखिनी मातासे कहने लगे—।

**कैकेया वज्ञितो राजा मयि चाऽरत्यमाश्रिते ।**

**भवत्या च परित्यक्तो न नून वर्त्तयिष्यति ॥ ११ ॥**

**अन्वय—**कैकेया, वज्ञित, राजा, मयि, अरण्य, च, आश्रिते, भवत्या, च, परित्यक्त, नून, न, वर्त्तयिष्यति ।

**सुधा—**कैकेया = एतज्ञामिकया मद्दिमात्रा, वज्ञित = प्रतारण्या मद्दियोगजनुस प्राप्ति, राजा = दशरथ, मयि = रामे, अरण्य = वनम्, च, आश्रिते = गते सतीत्यर्थ, च = पुन, भवत्या = त्वया, परित्यक्त = परिवर्जित, नून = निश्चित, न = नहि, वर्त्तयिष्यति = जीविष्यति, अतो भर्तु प्राणाक्षण भवत्याऽवश्यमेव विधेयमिति भाव ।

**इन्दुमतो—**(रामचन्द्रजीने माता कौशल्याने कहा—) है माता जी! इस समय महाराज (पिताजी) को मेरी विमाता कैश्यीने वज्ञित कर दिया है (धोखा देकर दुखी बना दिया है) मेरे बन जले जानपर वे और भी दुखी होंगे,

विश्वपर यदि द्रुम सौ महाराजको छोड़कर बन चलोगी तो महाराज कभी भी नीचित नहा रह सकेगे । -

**भर्तुं पुन धरित्यागो नृशस्त केवलं ह्यिया ।**

**स भवत्या न कर्त्तव्यो मनसाऽपि विगहित ॥ १२ ॥**

**अन्वय-**—पुन , मर्तु , परित्याग , क्रिया , केवल , नृशस्त , मनसापि , स , मवत्या , न , कर्त्तव्य , ( यत ) विगहित ।

**सुधा—**भवत्या कथमपि राजा न परित्याग्य इत्युच्च तत्र ईतुमाह—भर्तुं-रिति । पुन =अन्यत्र , मर्तु =स्वाभिना , परित्याग =परिवर्जन , ह्यिया =पत्न्या , केवल , नृशस्त =कूरतैव , न तु तेनैदिकमात्रुधिक वा किंविदिपि सुखमित्यर्थ । मनसाऽपि=हृदयेनापि , स =परित्याग , मवत्या=त्वया , न कर्त्तव्य =न विधेय न चिन्तनीय इति यावत् ( यत् स ) विगहित =महापात्रनक्तव्यादतिनिन्दित ।

**इन्दुमती—**( रामचन्द्रजीने माता कोशल्यामे कहा—हे मातानी ! महाराजको छोड़कर आप मेरे साथ बन जाना चाहती हैं सो ठीक नहीं क्योंकि—) स्वामीका परित्याग करना रुक्षाके निये सबसे बड़कर निन्द्य कर्म है । सो ऐसा निन्द्यकर्म करनेकी कल्पना भी आपका मनमें नहा करना चाहिये ( क्योंकि—तुष्ट भतरि नारीणा सन्तुष्टा सबैवता ) ।

**यावत्जीवति काकुत्स्य पिता मे जगतोपति ।**

**शुश्रूषा क्रियता तावत् स हि घर्म सनातन ॥ १३ ॥**

**अन्वय—**काकुत्स्य , जगतोपति , मे , पिता , यावत् , जीवति , तावत् शुश्रूषा , क्रियता , हि , सनातन , स , घर्म , “वर्तत इति शाक्खारै गीयत” इति शेष ।

**सुधा—**श्रव कि कर्त्तव्यमित्यत आह—यावदिति । काकुत्स्य=इकुत्स्य व शोद्धव , जगतोपति =पृथिवीपति , मे=मम रामचन्द्रस्य , पिता-जनक राजा दशरथ इत्यर्थ । यावत्=यावत्कालपर्यन्त , जावति प्राणान् घारयति , इह प्रवा पानयति वा , तावत्=तावत्कालपर्यन्त , शुश्रूषा=चेवा , क्रियता=विधीयताम् , हि=यत , सनातन=सार्वकालिक , स , घर्म=स्वामिसेवागलनरूप , “वर्तत इति शाक्खारै गीयत” इति शेष । दस्माद्भवत्या मर्तृशुश्रूषा न परित्याक्यमित्याशय । अत्र “यावत्जीवति तावत्शुश्रूषा क्रियता” मित्यनेन निरुक्तोकातरणमनावश्यकत्व खनितम् ।

**इन्दुमतो—**( रामचन्द्रजीने कहा— ) जब तक ककुत्स्थ वशमें उत्पन्न पिता चक्रवर्तीं महाराज ( दशरथ ) जीवित है, तब तक आप ( मेरी ॥ कौशल्या ) उनकी सेवा करें ( मेरे साथ बन जानेका विचार छोड़ दें ) आपके लिये यही सनातन धर्म है ।

**एवमुक्ता तु रामेण कौशल्या शुभदर्शना ।**

**तथेत्युवाच सुप्रीता राममङ्गिष्ठकारिणम् ॥ १४ ॥**

**अन्वय—**रामेण, एवम्, उचा, तु, शुभदर्शना, सुप्रीता, कौशल्या, अङ्गिष्ठकारिण, राम, तथा, इति, उवाच ।

**सुधा—**रामेण=कौशल्यातनयेन एव=पूर्वोक्तप्रकारेण उचा=कृपिता, तु, शुभदर्शना=धर्म्यमति, सुप्रीता=मुप्रसन्ना, कौशल्या, अङ्गिष्ठकारिणम्=उच्चम कमविधायिन कस्याऽपि जनस्य क्लेशादायिनमित्यर्थं । रामम्=आत्मतनयम्, तथा=यथा त्वं कथयति तथैव विवास्ये, इति=एवम्, उवाच=उच्चवती ।

**इन्दुमतो—**( महर्षि वाल्मीकिजी कहते हैं कि—) इस प्रकार रामचन्द्रजी के समझानेपर धर्ममें विश्वास रखने वाली महारानी माता कौशल्या ने रामब्री की बात मान ली ( बन जानेका विचार छोड़ दिया ) और प्रसन्न हो कर बोली ( हे वत्स ! ) बड़ेसे बड़े कठिन कार्यको सहजमें करने वाले तुम जो कुछ कहते और करते हो सब ठीक है ( वैसा ही होगा ) ।

**एवमुक्तस्तु वचन रामो धर्मभृता वर ।**

**भूयस्तामव्यवीद् वाक्य मातर भृशदु खिताम् ॥ १५ ॥**

**अन्वय.—**एव, वचन, (तथा) उक्त, तु, धर्मभृता, वर, राम, भृशदु खिता, ता, मातर, भूय, वाक्यम्, अववीत् ।

**सुधा—**दार्ढर्यार्थं पुनर्घण्पादयति—एवमिति । एव = मत्तृशुभूपाङ्गीकारस्तप, वचन = वाक्य, ( तथा ) उक्तस्तु = अवित्स्तु, धर्मभृता = धर्मिष्ठाना, वर = भ्रेष्ट, राम, भृशदु खिता = निश्चितवियोगस्मृतिजनितदु याकान्वा, मातर = कौशल्या, भूय = पुन, वाक्य = वक्ष्यमाणवचनम्, अववीति = उक्तवान् ।

**इन्दुमतो—**( रामजीके समझाने पर जब कौशल्याने बनजानेका विचार छोड़कर महाराजकी सेवा स्वीकार करली तब रामजी बहुत प्रसन्न हुए और ) इस प्रकार माता कौशल्याका वचन ( स्वीकारोक्ति ) सुनकर धार्मिक भेष भीरामचन्द्रजी अत्यन्त दुखिनी मातासे पुन. कहने लगे— ।

मया चैव भवत्या च कर्तव्य वचन पितु ।

राजा भर्ता गुरु अष्टु, सर्वेषामोद्वरं प्रभु ॥ १६ ॥

अन्वय — पितु, वचन, मया, भवत्या, च, कर्तव्यम्, एव, (यत) राजा, भर्ता, गुरु, अष्टु, प्रभु, सर्वेषाम्, ईश्वर, “शस्ती” ति शेष ।

सुधा—पितु हृवातस्य, वचन=ज्ञान्य, मया=रामेण, भवत्या च=त्वयाऽपि, कर्तव्यमेव =पालनीयमेव, उभयोऽस्त्रद्वचनावश्यकर्तव्यत्वे हेतुमुपपादयितु-माह—राज्ञेति । अत्रोत्तरादें ‘ह’ इत्यध्याहृतव्यम् । तथा च स =सम पिता, राजा =भूपति, भर्ता =विविदभवत्या पाणिप्रदीता, गुरु =मम तत्त्वोपदेशा, तत्वाऽपि (पतिरेको गुरु खीणाम्) इति नियमाद्वृत्, अष्टु =महात्मा, प्रभु =सञ्चलतामर्थ्यसम्पन्न, सर्वेषामाननाम्, ईश्वर =पूज्य शस्तीति शेष ।

इन्दुमतो—(रामचन्द्रजीने कहा—) हे माता जी । जैसे मुझे अरने पिता (महाराज दशरथ) की आशा अपश्य माननी चाहिये वैसे आपको भी चाहिये क्यों कि महाराज मेरे पिना हैं तथा मेरे ओर आगके (पतिरेको गुरु खीणाम्) गुरु हैं । इस लिये दोनों के अष्टु हैं तथा सबके पात्रन-प्रीत्य करने वाले स्वामी और प्रभु हैं\* ।

इमानि तु महारणे विद्वत्य नव पञ्च च ।

वर्णाणि परमप्रीत्या स्थास्यामि वचने तत्र ॥ १७ ॥

अन्वय — महारणे, इमानि, नव, पञ्च, च, वर्णाणि, विद्वत्य, परमप्रीत्या, तत्र, वचने, स्थास्यामि ।

सुधा—पितुनिदेशगालनानन्तर तद्यूधूभूत्याऽपि करिष्यामीत्याह—इमानोति । महारणे =दण्डकपुष्टि ते महाविभिन्ने, इमानि =एतानि, नव पञ्च च मिलित्वा चतुर्दश, वर्णाणि =हायनानि, विद्वत्य =विहार कृत्वा, परमप्रीत्या =प्रतिप्रेम्या, तत्र =भवत्या, वचने =आशापिते, स्थास्यामि =नद्विषास्यामीत्यर्थ । अत्र विद्वत्येत्यनेन वनगमनस्य स्वप्रीतिविषयीमूतत्व दर्शित, तेन भवत्या विशादो न विदेय इति अजितम् ।

इन्दुमतो—(रामचन्द्रजी ने कहा हे माताजी । आप हु खी मन होइये )

\* नोट — तात्पर्य यह है कि मैं उनकी आशा से बन जा रहा हू और आपको बन जानेकी आशा नहीं मिली है, अत आपने जो हमारे साथ बनजानेका विचार स्थगित किया है सो समुचित है ।

मैं इन चौदहों वर्षोंको बोर ज़ज़लमें (भी) विद्वार करके (आत्मन्त खुशीसे) विता कर आजाऊगा और तब जो आप कहेंगी वही कहगा ।

एवमुक्ता प्रिय पुत्र वाधपूर्णनिना तदा ।

उवाच परमार्ची तु कौशल्या सुतवत्सला ॥ १८ ॥

अन्वय — एव, तु, ( पुत्रेण ) उच्चा, तदा, सुतवत्सला, परमार्ची, वाधपूर्णनिना, कौशल्या, प्रिय पुत्रम्, उवाच ।

सुधा— एवम्=उच्चपक्षरेण, तु, ( पुत्रेण ) उच्चा=कथिता, तदा=तस्मिन् समये, सुतवत्सला =पुत्रविद्यकातिवात्सल्यमुखा, परमार्ची=अतिलिङ्गा, वाधपूर्णनिना=वाधेण-नयनजलेत, पूरणम्-व्याप्तम् आनन—मुख, यस्या या तयोर्च्छा, “आनन लपन मुखम्” इत्यमर । कौशल्या, प्रिय=स्नेहिन, पुत्र=रामम्, उवाच = उच्चवती । एतेन वियोगजनितक्लेशस्य दुनिकारत्व घनितम् ।

इन्दुमती— अपने पित्रे इन ( पिताकी आहा पालन बरनेके बाद जो आप कहेंगी वही करुणा इत्यादि ) वचनोंको सुनकर दुखोंको नहीं उहन करने वाली महारानी कौशल्याके देवोंसे ( पुन ) कृत-कृत औंसु बहने लगा । वे अष्टपूर्ण मुखसे ( औंसु बहावी हुई ) रामचन्द्रजीसे बहने लगीं— ।

आसा राम ! सपलोना वस्तु मध्ये न मे क्षमम् ।

नय मामपि काकुत्स्य ! वन वन्या मृगीमिति ॥ १९ ॥

यदि ते गमने बुद्धि कृता पितुरपेक्षया ।

अन्वय — दे राम ! आसा, सपलीना, मध्ये, वस्तु, मे न, क्षमम्, ( अत ) हे काकुत्स्य !, पितु, अपेक्षया, यदि, ते, गमने, बुद्धि, कृता, ( तदि ) वन्या, मृगीमिति, मामपि, अपि, वन, नय !

सुधा— एव स्वीकृतरामवनगमनस्वभृंसेवाऽपि सपलीक्लेशस्मरणाद् पुना | रामानुगमनमर्थयते—आसामिति ! आसा=तदियोगदेतुभूताना, सपलीना | मध्ये, वस्तु=स्थातु, मे=मम कौशल्याया, न क्षम=नोक्षितम्, ( अत ) हे काकुत्स्य=वकुत्स्यवशोद्भव !, पितु=तात्स्य, अपेक्षया=इच्छया, यदि=चेत्, ते=तव, गमने=प्रस्थाने, बुद्धि, कृता=निक्षिता, ( तदि ) वन्या=वने भवा, मृगी=हरिणीमिति, मामपि=कौशल्यामिति, नय=प्राप्य । तथा च यथा वन्या मृगी वने सन्तुष्टा तिष्ठति तथाऽहमपि स्थास्थामि न नवन्त लोकयिष्यामीति भाव ।

इन्दुमती—( अब कौशल्याको यह भय होनेनगा कि शंगर महाराजकी

सेवाके लिये हम अयोध्यामें रहे तो कैदेयीने पुन कोई कुचक रखकर महाराजकी सेवासे बच्चित करनेके लिये हमें भी न कही घरसे निकलवा दे । अत रामसे इष्ट प्रकार कहने लगी— ) हे कुरुत्यवशमें उत्पन्न वास राम । ( दुम महाराजकी सेवाके हेतु हमें रहनेको कहते हो पर ) मैं यहा इन ( कैदेयीकी ऐसी ) सौतोके बीच रहनेये असमय हूँ ( नहीं रहूँगी ) इसलिये हे पुन । यदि दुमने पिताकी आङ्गा पालन करनेके लिये बन जाना निष्ठय कर ही लिया है तो मुझे भी अपने साथ बनमें लेते चलो । मैं वहा बनैजी इरियीकी तरह खुशसे रहूँगी ( दुमहे किसी प्रकारका कष्ट नहीं दूँगी )

तां तथा ददतीं दृष्टा-ददन् रामो वचोऽप्रवीत् ॥ २० ॥

**मन्त्रय** —ता, तथा, ददतीं, दृष्टा, ( स्वयम् ) अददन् ( वा-ददन् ) राम, वचनम्, अब्रवीत् ।

सुधा—ता=कौशल्या, तथा=रेत प्रवारेण ददतीं=कन्दतीं ( दृष्टाऽपि स्वयम् ) अददन्=रोदननिवृत्ति कूवन् सन्, पच=वचाम्, अब्रवीत्=अब्रो चद् । रोदने सति कात्यैपकाशनेन मातु भूयोऽप्यतुगमनप्रयाशाप्रउद्धादिति भाव । यद्वा-तथा ददतीं ता ( दृष्टा ) रामोऽपि ददन् वचोऽप्रवीदित्यन्वय ।

इन्दुमती—इष्टप्रकार रोती हुई माता कौशल्याको देखकर तथा उनके बचनोंको मुनक्कर रामचान्द्रजी भी रोने लगे ( मातृस्नेहसे नेत्रोंमें जल भर आया ) और माता से कहने लगे— ।

जीवन्त्या हि लिया भर्ता दैवत प्रभुरेव च ।

भरत्या मम चैवाद्य राजा प्रप्रभति प्रभु ॥ २१ ॥

**मन्त्रय** —हि, लिया, भर्ता, एव, दैवत, प्रभु, च, अद्य, जीवन्त्या, भवत्या, मम, च, राजा, एव, प्रभु, प्रप्रभति ।

सुधा—हि=यत्, लिया = नार्या, भर्ता = स्वामी, एव, दैवत=दैवती, प्रभुश्च=सर्वार्थसम्पादनसमर्थम्, ( अत ) अथ=सम्प्रति, जीवन्त्या = प्राणघारण कुर्वन्त्या, भवत्या = श्रीमत्या, मम=रामस्य, च, राजैव=गृप्तिरेव, प्रभु = ईश्वर, प्रप्रभति=आदेश समर्थो भवति । तथा च राजाऽभावाचवागमनम्-नुचिदिमित्याशय ।

। इन्दुमती—(रामचान्द्रजीने कहा है माता जी ! महाराजसे बढ़कर आपका कोई नहीं है) जी जब तक जीती रहे तब तक उसे चाहिये कि वह अपने पतिकी

ही देवता और मालिक समके । महाराज ही अभी आपके और मेरे भी मालिक हैं ( वे आपको सौतका कष्ट नहीं होने देंगे ) ।

नद्यनाथा वय राजा लोकनाथेन धीमता ।

भरतश्चाऽपि धर्मात्मा सर्वभूतप्रियवद् ॥

भरतीमनुवत्तेत स हि धर्मरतः सदा ॥ २२ ॥

**अन्वय.**—धीमरा, लोकनाथेन, राजा, वय, नहि, अनाया, भरत, च, अपि, धर्मात्मा, सर्वभूतप्रियवद् हि धर्मरत स, भवती, सदा, अनुवत्तेत,

सुधा—ननु त्वा विना कथमह स्थास्यामि सपल्नीक्लेशब्धातिदु सह इत्यत आह = नहीति । धीमता=बुद्धिमता, लोकनाथेन=सकलजननियन्त्रा, राजा=भूपतिना, वयम्=अस्मदादय नहि अनाया =सनाया इत्यर्थ, नशद्वयेन प्रकृतमर्थ दण्डीकृतम् । ननु चोक सपल्नीमध्यवासो दुष्कर इति तनिराकर्तुमाह—भरतश्चाऽपोति । भरतश्चापि,=कैवल्यधीनुक्षापि, धर्मात्मा=धर्मशील, सर्वभूतप्रियवद् = अखिलप्राणिप्रियवक्ता । तथा च हि ‘ग्रनाया’ इत्युक्त्या राजकर्तृकगमननि योगाऽमावाद्दुष्कराऽपि स्थितिरनुवर्त्तनीयैव, यच्च सपल्नीमध्यवासदु ख तदपि भरतस्य धर्मशीलत्वान्त भविष्यतीति माव । ननु त्वद्विष सेवको नाऽस्तीति न शङ्कनीयमित्याह—भरतीमिति । हि=निष्ठयेन, धर्मरत =धर्मत्वर, स—भरत, भवती=स्वाम, सदा सर्वदा, अनुवत्तेत =सेवेत ।

इन्द्रुमती—( बीतके बीचमें नहीं रहूँगी । इसका उत्तर देते हुए रामचन्द्र-जीने पुन कहा है माता जी । ) लोकनाथ ( चक्रवर्ती ) बुद्धिमान् महाराज ( पिता दशरथ ) के रहते हम लोग अनाय नहीं हो सकते । हमारे भाई भरत भी धर्मात्मा है और सबसे प्रिय थोलनेवाला है । धर्ममें उसका अधिक प्रेम है, सभी प्रकारसे सदा ही वह ( भरत ) आपका मन रखे गा । ( आप जो कहें गी वही वह करेगा माता कैनेयिके कुचकमें कभी नहीं पड़सके गा ) ।

यथा भयि तु निष्कान्ते पुत्रशोरेन पार्थिव ।

श्रम नाऽवाप्नुयात् क्रिञ्चिदप्रमत्ता तया कुरु ॥ २३ ॥

**अन्वय**—तु, भयि, निष्कान्ते, पार्थिव, पुत्रशोरेन, यथा, क्रिञ्चिद्, श्रम, न, अवाप्नुयात्, तया, अप्रमत्ता, (सती) दुष्कर ।

सुधा—दु=किन्तु, भयि=गमे, निष्कान्ते=निर्गते, वनमाधिते इत्यर्थ । पार्थिव=यज्ञा, पुत्रशोरेन=पुत्रशोरेन, यथा=येन प्रकारेण, क्रिञ्चित्=अल्पमपि,

अम = सेद, न अवाप्नुयात् = न प्राप्नुयात्, तथा = तेन प्रकारेण, अप्रमत्ता = अनवधानतारहिता, कुरु = विषेहि ।

इन्दुमती—( रामचन्द्रजीने कहा है माताजी । आपको देख-रेख भरत करेगा परन्तु—) मेरे बन चले जानेपर जिससे महाराजको पुत्र-शोक (मेरे विषेग) से जरा भी कष्ट न हो सो काम सावधानीसे आनंद करतो रहना ।

दाशणश्चाऽप्यय शोको यथैन न विनाशयेत् ।

राहो बृद्धस्य सतत हित चर समाहिता ॥ २४ ॥

अन्वय —दाशण च, अय, शोक, अपि, यथा, एन, न विनाशयेत्, ( तथा ) समाहिता, ( उत्ती ) बृद्धस्य, रात्, हित, सतत, चर ।

सुधा—दाशणभ्य-अतिभयङ्करभ्य, अय = मद्विषोत्तरनिति, शोक = क्लेश, अपि, यथा = येन प्रकारेण, एन = पितृ, न विनाशयेत् = लोकान्तरणमनहेतु-कादर्शनता न प्रापयेत्, तथा = तेन प्रकारेण समाहिता = एकाप्रचिता, ( उत्ती ) बृद्धस्य = शानवयोभ्यामधिकस्य, रात् = भूपते, हित = प्रिय, सतत = निरन्तर, चर = अनुतिष्ठ ।

इन्दुमती—( रामचन्द्रजीने कहा है माताजी । ) महाराजको अब हृदा-वस्था है अत मेरे बन चले जानेसे उत्तरन यह भयङ्कर पुत्र-शोक जिससे महाराजका नाश नहीं करसके ऐसा काम दबी सावधानीसे हमेशा करती रहना ।

ब्रतोपवासनिरता या नारी परमोत्तमा ।

भर्तार नानुवर्त्तत सा च पापगतिर्भवेत् ॥ २५ ॥

भर्तुः शुश्रूपया नारी लभते स्वर्गमुत्तमम् ॥

अन्वय —परमोत्तमा, ब्रतोपवासनिरता, ( अवि ) या, नारी, भर्तार, नानुवर्त्तत, सा, पापगति, भवेत्, भर्तुः, शुश्रूपया च, नारी, ( अपि ) उत्तम, स्वर्ग, लभते ।

सुधा—पतिगुभूरणमेव पद्या परमो धम इति सार्धलोकेन दर्शयति— घ्रतेति । परमोत्तमा=उत्तर्णगुशाजात्यादिमत्वेन सर्वोत्कृष्टा, ब्रतोपवासनिरताऽपि= ब्रतोपवासनत्वराऽपि, या=तादशगुणविशिष्टा, नारी=स्त्री, भर्तार=स्वामिन, नानुवर्त्तत=न सेवत सा, पापगति=पापस्थ=दुःखतस्य, गति=पलमिव फल यस्या सा तथोका । भवेत्=स्यात् । भर्तुः=स्वामिन शुश्रूपया=सेवया, च=अपि नारी=साधारणज्ञी, उत्तम=भ्रेष्ट, स्वर्ग=देवनोक, लभते=प्राप्नीति ।

**इन्दुमती—**( रामचन्द्रजीने कहा है माताजी ! ) प्रतिसेवासमें ही निरत होकर उत्तमसे उत्तम कहलाने वाली छी क्यों न हो जाय, परन्तु यदि वह अपनी पतिकी सेवा नहीं करती है तो पापियोकी गति (नरक) को प्राप्त करती है। और जो छी ( निवासमें निरत नहीं होकर भी ) अपने पति की सेवा-शुभ्रूपामें ( ही ) लगी रहती है वह पतिसेवा से उत्तम ईर्गं लोकोंको श्राप करती है ।

**अपि या निर्नमस्कारा निवृत्ता देवपूजनात् ॥ २६ ॥**

**शुभ्रूपामेव कुर्वीत भर्तुः प्रियहिते रता ।**

**अन्धय—**—देवपूजनात्, निवृत्ता ( तथा ) निर्नमस्कारा, अपि, या, भर्तुः, प्रियहिते, रता, ( सतीः ) शुभ्रूपाम्, एव, कुर्वीत, ( साऽपि स्वर्गं लभते ) ।

**सुधा—**स्त्रिया देवपूजनादिप्रवृत्तिर्गति भर्तृशुभ्रूपाया सत्यानावश्यकीति सूत्र यति—अर्थीति । देवपूजनात् = शिवादिदेवाचनात्, निवृत्ता = अशानाद्रहिता, ( तथा ) निर्नमस्काराऽपि=मर्त्तुभिन्नद्विविषयक्तनमस्काररहिनाऽपि, या = नारी, भर्तुः = स्वामिन, प्रियहिते = प्रियज्ञ तदिति प्रियहित तस्मिन् तथोर्ते । रता = तत्परा, ( सती ) शुभ्रूपामेव=तत्प्रीतिजनक कर्मेव, कुर्वीत = विधीयीति । साऽपि उत्तम स्वर्गं लभने इति पूर्वेण सम्बन्ध । प्रियहिते इत्यत्र हितशब्दस्य प्रभादुपादानेनाऽप्यातोऽप्रियमपि हित कुर्यात् ।

**इन्दुमती—**( रामचन्द्रजीने कहा है माताजी ! पति-सेवा ही छोका परम धर्म है इस लिये—) भले ही कोई छी देवी-देवताओंका पूजन नहीं करती हो तथा हाथ बोड़कर किसीको नमन नहीं करती ही परन्तु यदि वह छी पतिकी सेवा ही करती हुई, निरन्तर पति की भवाई करनेमें तत्पर रहे तो निर्धय ही उसे स्वर्ग प्राप्त होता है ॥

**एष धर्मः स्त्रिया नित्यो वेदे लोके श्रुतः स्मृतः ॥ २७ ॥**

**अन्धय—**—एष, स्त्रिया, धर्म, वेदे, लोके, ( च ) नित्य, श्रुतः, ( तथा ) स्मृतः, “जात ” ।

**सुधा—**पतिशुभ्रूपामेव स्त्रिया कर्त्तव्यमित्यत्र प्रमाणमाह—एष इति । एष=, पतिशुभ्रूपाम, स्त्रिया = नार्या, धर्म = सुकृतम्, वेदे = मन्त्रवाक्यात्मके श्रुतौ श्रुत = भ्रवणविषयीभूत, वेदाऽवगत इत्यर्थ । लोके=सभारे, स्मृत = मन्वादिभि समये स्मृतिविषयीभूतो जात इत्यर्थ ।

**इन्दुमती—**( रामचन्द्रजीने कहा—हे माताजी । ) स्त्रीके लिये परिकी सेवा ही पुरातन लोकाचार सिद्ध तथा वेदावगत स्मृत्यनुकूल घर्म है ( इसलिये इस घर्मका परित्यागकर मेरे साथ आप वन नहीं चलें । )

अग्निकार्येषु च सदा सुमनोभिश्च देवता ।

पूज्यास्ते मरुते देवि ! ब्राह्मणाश्वै च सुब्रता ॥ २८ ॥

एव काल प्रतीक्षस्व ममागमनकाङ्क्षिणी ।

**अन्वय—**हे देवि । सदा, च, मरुते, अग्निकार्येषु, च सुमनोभिश्च, देवता सरुता, ते, ब्राह्मणाश्वै, पूज्या, एव, ममागमनकाङ्क्षिणी, काल प्रतीक्षस्व ।

**सुधा—**नु तदि कर्मात्मक त्यात्य किं नेति, यदा-त्वचीमेव स्थिती मद्वियोगाजनित दुखमेनामासाद्य कर्त्तेशयिष्यतीति विया दुखविच्छेदनार्थं समय यापनसाधन दशयितुमाह—अग्निकार्येष्विति । अत्रैकरचकार एवकारार्थं द्वितीयश्च समुच्चयार्थं, अप्यर्थकश्चापर तथाच—हे देवि=देवतावत्पूजनीये मात । सदा=सर्वदा, मरुते=अस्मदर्थम्, अग्निकार्येषु=मर्तृष्मरेषु शान्तिकौषिकद्वेष्टु क्रियमाणेषु, च=एव, सुमनोभि=नानापुण्डादिभि, ( च च न तामूलनादिभिश्च ) देवता=शिवाद्य, पूज्या=प्रर्चनीया, ( तथा ) सरुता=दानमानादिभिरादर प्राप्ता, ब्राह्मणा=विप्राश्च पूज्या=वन्दनीया ( एतेन स्वपूजैव परोक्षेण व्यक्तीकृतेति वोध्यम् । ) एव=मर्तृष्मतोक्तपूजनादिना, भम=रामस्य, यदागमन=वनात् प्रत्यावर्त्तन, तदाकाङ्क्षिणी=तदभिलापावती, काल=चतुर्दशवर्षपर्यन्त ममागमनसमय, प्रतीक्षस्व=श्राशया वर्त्तस्व ।

**इन्दुमती—**( रामचन्द्रजीने कहा— ) हे देवि माताजी । शान्तिक-रौष्टिक होमादि इम करके नाना प्रकारके पुष्म, चन्दनादिसे देवताओंकी पूजा और ब्राह्मणोंका सत्कार मेरे मङ्गलके लिये करती रहना और इस प्रकारके अनुष्ठानसे समय बिताती हुई मेरे प्रत्यागमनकी प्रतीक्षा करना ।

नियता नियताहारा भर्तु शुश्रूषे रता ॥ २९ ॥

प्राप्त्यसे परम स्थान मयि पर्यागते सति ।

यदि धर्मभूता श्रेष्ठो धारयिष्यति जोवितम् ॥ ३० ॥

**अन्वय—**भर्तुशुश्रूषे, रता, नियता नियताहारा, ( स्थास्यसि चेत्, तथा ) मयि, पर्यागते, सति, धर्मभूता, श्रेष्ठ, यदि, जीवित, धारयिष्यति, ( तदा ) परम स्थान, प्राप्त्यसे ।

**सुधा—भर्तु** = वृपस्य, शुभ्रूयणे=सेवाया, रता=निरता, नियता=स्तनादि-  
नियमेन सयतचित्ता, नियताहारा=मधुमासादिवर्जनेन शुद्धाहारा (स्थास्यति चेत्,  
तथा, ) मयि=रामे, पर्यागते=प्रत्यावृत्ते (सति) घर्मभृता=घमिष्ठाना (मध्ये)  
श्रेष्ठ = अप्रगण्य पूज्य हत्यर्थ । (पिता) यदि = चेत्, जीवित=जीवन, भार  
यिष्यन्ति=धारण करिष्यति । यद्वा सर्वेषा जीवन पालयिष्यति । अनेन पितृमरणस्य  
सन्निहितत्वमवगमयति । (तदा) परमम् = उत्तम, काम = स्वेष्टितमैहिकविषय-  
सुखम्, प्राप्त्यसे=लक्ष्यसे । भर्तृजीवनपुत्रागमने सतोरेव परमकामप्राप्तिसम्भव  
इत्याशय ।

**इन्दुमती—**(रामचन्द्रजीने कहा है माताजी !) नित्य स्तनादि नियमसे  
मुक्त होकर मधु मासादि छोड़कर (स्थम नियमसे रहकर) आप महाराजकी  
सेवा करना मेरे (बनसे) लौट आने तक (चौदह वर्ष तक) यदि घर्मात्मा  
ओमें श्रेष्ठ महाराज जीवित रहें तो आपका उत्तम मनोरथ पूर्ण होगा ।

एवमुक्ता तु रामेण वाप्यपर्याकुलेक्षणा ।

कौशल्या पुत्रशोकार्त्ता राम वचनमम्बवोत् ॥ ३१ ॥

**अन्वय—**रामेण, एवम्, उच्चा, तु, वाप्यपर्याकुलेक्षणा, पुत्रशोकार्त्ता,  
कौशल्या, राम, वचनम्, अब्रवीत् ।

**सुधा—**रामेण=स्वतनयेन, एव=पूर्वोक्तप्रकारेण, उक्ता=वयिता, तु, वाप्य-  
पर्याकुलेक्षणा = वाप्तो-नयनजल, तेन पयाकुल-व्यासम्, ईक्षणम्-अवलोकन,  
यस्या सा तथोक्ता, पुत्रशोकार्त्ता=पुत्रशोकेन रामवियोगजनितशुचा, आर्ता=  
पोषिता या सा तथोक्ता । कौशल्या=राममाता, राम = स्वतनय, वचन=वद्य  
माण वाक्यम्, अब्रवीत्=अवोचत् ।

**इन्दुमतो—**जब रामचन्द्रजीने इस प्रकार (महाराजकी सेवा करनेके देतु  
अयोध्या ही मेरहने के लिये) समझाया तब माता कौशल्याके नेत्रोंमें आँखुभर  
आया । पुत्र-वियोगसे आर्त होकर कौशल्याजी बहने लगी— ।

गमने सुकृता बुद्धि न ते शक्तोमि पुञ्चक ।

विनिवच्चयितु वीर ! नून कालो दुरत्यय ॥ ३२ ॥

**अन्वय—**हे पुत्रक ! गमने, सुकृता, ते, बुद्धि, निवच्चयितु न शक्नोमि,  
(यत) काल नून, दुरत्यय ।

**सुधा—**हे इत्रक = हे वीर ! गमने=वनप्रस्थाने, सुकृता = अतिनिविष्टा

सुहृदामिति यावत् । ते=तव, हुद्दि=पति, निश्चित्यित्=प्रस्थावर्त्तिष्ठित् न शक्नोमि=न समर्थो भवामि । तत्र हेतुमाह—नूनमिति । कान् =हृष्टविद्योगादिज-नक्तदैव, यठा-कान् =वित्तयसमय । नून् =निश्चित, दुरस्थय =अनिश्चितमितुम-शक्य । विधिवशादेव सयोगविद्योगौ तत्प्रतिक्षत्तुमशक्योऽस्मामि ।

इन्दुमती—( कौशल्याने कहा— ) हे बत्स राम । बन जानेमें मुहृद तुम्हारी हुद्दिको अर हम केर नहीं सकती । हे धीर । निधय ही कान् कोई अतिनमण नहीं कर सकता ( होनेवाला होइर ही रहता है ) ।

गच्छ पुत्र ! रथमेकाग्रो भद्र तेऽस्तु सदा विभो ॥

पुनस्त्रयि निवृत्ते तु भविष्यामि गतक्षमा ॥ ३३ ॥

अ-त्रय —हे पुत्र ! एकाप्र , (मूर्वा) त्व, (बन) गच्छ, हे विभो । सदा, ते, भद्रम्, अस्तु, ( अह ) तु पुन त्वयि निवृत्ते गतक्षमा भविष्यामि ।

सुधा—हे पुत्र = बत्स । एकाप्र = समादितचित्त , (भूत्वा) त्व (बन) गच्छ=ब्रज, हे विभो = विरक्तीव राम ।, सदा=पवस्त्रिन् काने, ते=तव भद्र=कल्याणम् , अस्तु = भवतु, ( अह ) तु पुन =भूय , त्वयि=भवति, निवृत्ते=बना द्वागते सति गतक्षमा = स्वरूपनशा भविष्यामि - भविताऽस्मि ।

इन्दुमती—( अन्तमें पुत्रबत्सला माता कौशल्याने कहा— ) हे बत्स राम ! अप तुम एकाप्र दिति ( साव धान ) होकर बन जाग्रो । बनमें सदा ही दुम्हारा कल्याण हो । हे विभो ! ( देवातिथि-पूजन व महाराजकी सेवामें भने ही मैं समय विजाउंगा परन्तु- ) दुम्हारे बनसे लौट आने पर ही मेरा क्लेश दूर होगा ॥

प्रयागन महाभागे चतार्थं चरितव्रते ।

पितुरानृष्ट्यता प्राप्ते स्वपिष्ये परमसुखम् ॥ ३५ ॥

अन्त्रय —चरितव्रते, इतार्थं महाभागे प्रत्यागने, ( सति ) ( तथा ) पितु आनृष्ट्यता, प्राप्ते, ( च सति ) परम सुखम् , ( अह ) स्वपिष्ये ।

सुधा—चरितव्रते = चरितम् — अनुष्ठित पित्राङ्गापालनस्य व्रत धैन, तस्मिन् तथोक्ते । इतार्थं =हृत-सम्पादित अप-स्वप्रतिशाविषयीभूत वा तु धैन तस्मिन् तथोक्ते । मानाभागे = ‘ ग्राम्योत्तिमामृत्यो कलङ्को यस्य नो भवेत् । स्याच्चैवानुपमा कीति स महूमा । उच्यते ॥ ’ इत्युक्तगुणविशिष्टे त्वयि प्रत्या गते=पराहृत ( सति ) तथा, पितु =राह , आनृष्ट्यताम् =आनृष्ट्यताम् , ( स्वाप्यम् ) प्राप्ते=लघ्वे, ( च, सति,) परमम् =उत्तम, सुखम् =आनन्द, यथा स्यात्या,

कियाविशेषणमिदम् । ( अह ) स्वपिष्ठे = शयिष्ठे, । यद्वा—चरितवते, प्रत्यागते, तथा, पितुरानुशयता प्राप्ते इहागते च महाभागे = महाऽऽभा—रालद्वीमागच्छति-प्राप्तुवति तस्मिन्, त्वयि, परम सुख शयिष्ठ इत्यर्थ ।

**इन्दुमतो—**( कौशल्याने कहा— ) हे महाभाग वत्स राम ! जब तुम्हारा ब्रह्म ( पिताकी आशापालनरूप, चौदह वर्षका बनवास ) पूरा हो जायगा और इह पितृ-कृष्णसे मुक्त होकर ( अर्थात् तुम्हारे पिताके कपर कैंकेयीका जो क्षण या उसको बनवाससे छुकाकर ) जब तुम बनसे लौट आओगे तब मुझे बहुत ही आनन्द होगा और तब ही मैं सुखकी निन्द सोऊँगी । ( अभी तो दिन-रात तुम्हारी ही चिन्ता बनी रहे गी ) ।

कृतान्तस्य गति पुत्र ! दुर्विभाव्या सदा भुवि ।

यत्त्वां सञ्चोदयति मे वच आविद्धय राघव ! ॥ ३५ ॥

**अन्वय—**हे पुत्र ! भुवि सदा, कृतान्तस्य, गति, दुर्विभाव्या, यत्, हे राघव ! मे, वच, आविद्धय, त्वा, सञ्चोदयति ।

**सुधा—**हे पुत्र=वत्स !, भुवि=पृथिव्या, सदा=सर्वदा, कृतान्तस्य=दैवस्य, गति=चरित्र, दुर्विभाव्या=तर्कितुमशक्या दुर्लक्ष्येति यावत् । यद्=यस्मादेतो, हे राघव=खुनन्दन ।, मे=मम कौशल्याया, वच=वचनम्, आविद्धय=आविद्धुय त्वा=सर्वप्रिय सर्वसुन्दर भवन्त, सञ्चोदयति=गमनाय प्रेरयति । यद्वा—हे पुत्र ।, यद्=यस्मादेतो, कृतान्तस्य=राक्षसस्य, ( जातावेकवचनम्, तेन राक्षसानामित्यर्थ ) गति=गमन, दुर्विभाव्या=ज्ञातुमशक्या तस्मादेतो, हे राघव ! आविद्धय=स्वस्त्यादिविधान कृत्वा, मे, वच, त्वा, सञ्चोदयति=तत्र गमनाय भ्रेयति ।

**इन्दुमतो—**( माता कौशल्याने पुन कहा— ) हे वत्स राम ! इस लोकमें विधाताकी गतिको कभी कोई समझ नहीं सकता ( भाग्यका लिखा होकरके ही रहता है ) क्योंकि यह भाग्यकी ही गति है, जो मेरे वचनको टालकर तुम्हें बनजानेकी प्रेरणा कर रही है ( मेरे वचनको तुम नहीं मान रहे हो ) ।

गच्छेदानीं महावाहो ! क्षेमेण पुनरगत ।

नन्दयिष्ठसि मा पुत्र ! साम्ना शुश्येन चारणा ॥ ३६ ॥

**अन्वय—**हे महावाहो ! इदानीं, ( त्व ) क्षेमेण, ( सहित ) गच्छ, हे पुत्र ! आगत, ( त्व ) रलच्छेन, चारणा, साम्ना, ( वान्येन ) मा पुन, नन्दयिष्ठसि ।

**सुधा—**हे महावाहो=महान्तौ—आजानुज्ञिनौ, वाहू—मुजौ, यत्प

स , तत्सम्भुद्गौ । इदानीं=सम्प्रति, स्मेरण=मल्कृतस्वस्त्ययनादिवाचनहेतुकफल्याखेन  
(सहित वन) गच्छ=घज, हे पुत्र=वर्तत । आगत =वनाज्ञिवृत्त, (स्व) रक्षद्दणेन=मृदुलेन-निर्मलेन, रमणीयार्थेन वा चारणा = मनोहरेण रमणीयवर्णविशाङ्केने-  
त्वर्थ । साम्ना=शान्तिविधायकेन, ( वन्मेन, ) मा=वीना मातर, पुन = भूम ,  
नन्दयिष्यसि=आनन्दयिष्यसि ।

इन्दुमतो—हे आजानुग्रह भद्र राम ! अप तुम वन जाओ और हे पुत्र !  
( चोदर वर्षके बाद ) कुण्डलसे लोटकर शुद्ध चित्तसे मृदु वचन कड़कर  
मुके ( अपनी दु गिया माताको ) आनंदित करो ।

अपोदानों स काल स्यात् वनात्प्रत्यागत पुन ।

यत्वा पुत्रक ! पश्येय जटाप्रकल्पारिणम् ॥ ३७ ॥

अन्तर्य —हे पुत्रक ! यत् वनात्, प्रच्यागत, जटाप्रकल्पारिण, त्वा,  
पुन, पश्येय, स, काल, इदानीम्, अपि, स्यात् ? ।

सुधा—शगमात्रमप्यनवतोकनासनिष्ठानुत्वात् प्रत्यागमनकान समीप एव  
सम्बोदिति प्राप्ययते—अपोति । हे पुत्रक=वीर ! यन्=यस्मिन् समये, अथवा  
यत्=येन चतुहशवशान्तेन कानेन, वनात्=अरण्यात्, प्रत्यागत=प्रायावृत्त, जटा  
प्रकल्पारिण=जटा सत्तरेणात्, व=कलानि-वृक्षत्वचश्च धारयनीतिरेव शीनम् ।  
त्वा = भवन्त, पुन = भूम , पश्येयम् = अवलोक्येय, स = काल, इदानीं =  
समीपे = एव, अपि स्यात् = अपि भवेत् ?, वियागकालस्याविक्ष्य यथा न प्रति  
भासेत तथा स्यात् किमित्यथ । ( अपिरञ्च सम्भावनायाम् )

इन्दुमतो—( पुत्रवत्सला माता कोशल्याने कहा- ) हे वर्त्त ! मैं आशा  
करती हूँ कि वह समय शीघ्र आवेगा जब मैं तुम्हें वनसे लौटे हुए और जटा  
वस्तकल धारणकिये हुए देखूँगी ।

तथा हि राम वनवासनिश्चित ददर्श देवो परमेण चेतसा ।

उवाच राम शुभलक्षण घ ग्रो वभूव घ स्वस्त्ययनाऽभिकाह्विणो ॥ ३८ ॥

इत्यार्थं श्रोमद्भाष्यायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये

उयोध्याकाण्टे चतुर्विंशु. सर्ग ।

अन्तर्य —देवी, वनवासनिश्चित, तथा, शुभलक्षण, राम, परमेण, हि,  
चेतसा, ददर्श, ( तथा ), स्वस्त्ययनाभिकाह्विणी, च, वभूव । ( त ) राम, ( शुभ-  
लक्षण ), घच, उवाच ।

**सुधा**—वमधासनिक्षित = निश्चितवनवासु, तथा, शुभलक्षण = सकलसामुद्रि-  
कलक्षणशुलक्षित, राम = स्वतभय, परमेण = उत्कृष्टेन, हि, चेतसा = दृष्ट्या, दर्श =  
आवलोकयामापि । तथा, स्वस्त्रयनाभिकाङ्क्षिणी = स्वस्त्रयन-मङ्गलम्, अभिज्ञा  
चक्षितुम्-अभिलक्षितु, शीलमस्त्रयस्या सा तथोका च, बभूत=जाता, ग्रस एव  
(त) राम शुभलक्षण=शुभसूचक, वच = वक्ष्यमाणवचवतम्, उवाच = उच्चती ।  
शुभलक्षणमित्यर्थं देहल क्षेप 'यायेऽभयत्र सम्बन्ध ।

इनि धीवालसीकिरामायणेऽयोव्याप्तार्हेऽसुधा' टीकाया चतुर्विंश सर्ग ।

**इन्दुमतो**—एव प्रकारेण रामचन्द्रजीसे कह कर, माता कौशल्याने बन-  
जानेके लिये निश्चित ( दृष्टप्रतिष्ठ ) पुत्र रामको आदर दृष्टिसे देखा और शुभ  
सूचक वचन ( 'अयमारम्भ शुभाय मवतु' इत्यादि ) कहा और राम-वनगमन-  
यात्राके मङ्गलाचारमें लग गयी ।

इस प्रकार इन्दुमती टीकामें अयोध्याकाण्डका चौबीसवा सुर्ग समाप्त हुआ ।

### पञ्चमिश्रः सर्ग आशीर्वादः

सा विनीय तमायासमुस्पृश्य जलं शुचि ।

चकार माता रामस्य मङ्गलानि मनस्त्वनो ॥ १ ॥

**आन्वय**—मनस्त्वनी, माता, तम्, आयास, विनीय, शुचि, जलम्, उप-  
सृश्य, रामस्य मङ्गलानि, चकार ।

**सुधा**—ता येव स्वस्त्रयनादीनि दर्शयत्तमाह—सेति । मनस्त्वनी = दृढ-  
मनस्त्वा, सा = माता कौशल्या, त = निश्चितवियोगजनिनम्, आयास = ईश,  
विनीय = विचारेण दूरीकृत्य, शुचि = पवित्र, जल = सलिलम्, उपसृश्य =  
आन्वय, "उपस्पशस्त्वानमन" मित्यपर । रामस्य = स्वतन्त्रस्य, मङ्गलानि =  
शुभानि स्वस्त्रयनानोत्यर्थ । चकार = कृतवनी ।

**इन्दुमती**—( अन्ततो गत्वा 'नून कालो दुरत्यय ' अर्थात् भावीको कोई  
रोक नहीं सकता, यह समझकर ) विचार शील माता कौशल्याजी शोकको याग  
कर ( आसु पोद्वक्त्र ) जलमें आवमन करके पवित्र होकर एमजीकी बत्तयात्राको  
सम्पूर्ण गतानेके लिये तदमुकूल मङ्गलाचार करने लगी ।

न शक्यते वारयितु गच्छेदानीं रघूतम् ॥

शीघ्र च विनिवृत्तस्य वर्त्तस्य च सताक्रमे ॥ २ ॥

अन्यय — हे रघूतम् !, इदानीं ( गमन ) वारयितु, ( मया ) न, शक्यते, ( अत ) गच्छ, च, सता, क्रमे, वर्त्तस्व, च ( तत्त्वतुदशवर्णने वनात् ) शीघ्र, विनिवृत्तस्य ।

सुधा—हे रघूतम् = खुगशिथेष्ठ ।, इदाना = सम्प्रति, ( तव गमन ) वारयितु = निये गयितु ( मया ) न शक्यते = न पार्यते, ( अत वन ) गच्छ=वज, च = तथा, सता = महात्मना, क्रमे = मार्गे, वर्त्तस्व = सिध्यतो भव । ( तत्त्वतुदशवर्णने वनात् ) शीघ्रम्=आशु, विनिवृत्तस्य = प्रत्यारूपस्व । यद्वा ( चतुदशवर्णने वनात् ) शीघ्र विनिवृत्तस्य, विनिहृत्य च सता मार्गे = अभिवेचने वर्त्तस्वेत्याशी शुस्तनम् ।

इन्दुमतो—( कोशत्याने कर्ता- ) हे रुक्मिणीपक वत्स राम ! मैं अब तुमको बनानेने रोक नहीं सकती ( क्योंकि मैं समझ गयी कि 'विविधति टरे न याए' अत ) अब तुम जाओ और सम्माँका अनुसरण करो ( मिताशाका यथाविधि पालन करो ) परन्तु हे पुत्र ! चौदह वषक बाद शीघ्र ही लौटकर चला आना ।

य पालयमि धर्मं त्वं प्रीत्या च नियमेन च ।

स वै राघवशार्दूल । धर्मस्त्वामभिरक्षतु ॥ ३ ॥

अन्यय — हे राघवशार्दूल ! य धर्म, प्रीत्या, च, नियमेन, च, त्व, पालयसि, वै, स, धर्म ( एव ) त्वाम्, अभिरक्षतु ।

सुधा—हे राघवशार्दूल = रुक्मिणीथेष्ठ !, य=पित्र्याशापाननक्षण, वर्म, प्रीत्या=प्रेमणा, च = सुन, नियमेन=यमादिनमप्रनियमेन, च, पालयसि = अगच्युतमनुति धर्मसि, वै = नियमेन, स = पित्र्याशापालनरूपो धर्म, ( ५व ) त्वा = भवन्तम्, अभिरक्षतु=सम्मालयतु विप्रादिभ्यो निवारयत्विति भाव ।

इन्दुमतो—( माता कोशत्याने शाशीर्वाद देती हुई कहा- ) हे रुक्मिणी केसरी ( महाप्रनारी ) वत्स राम ! जिस धर्मका पालन तुम प्रीतिपूवक नियमित ल्पसे करने जारहे हो वही ( मिताशापान रूप ) धर्म ( वनर्मे ) दुम्हारी रक्षाकरे ।

येऽय प्रणमसे पुत्र ! देवेऽप्यायतनेषु च ।

ते च त्वामभिरक्षतु वने सह मदपिभिः ॥ ४ ॥

**अन्वय** — हे पुत्र !, देवेषु, आयतनेषु, च, यैम्य, प्रणमसे, ते, च, वने, महिंपिभि सह, त्वाम्, अभिरक्षन्तु ।

**सुधा** — हे पुत्र=वत्स !, देवेषु=देवार्चनेषु, आयतनेषु=देवानयेषु, च, यैम्य = देवेम्य, प्रणमसे=नमस्कारीपि । यदा। देवेषु=युतिपत्सु, आयतनेषु=यहेषु यैम्य प्रणमसे च, ते=देवा, चाहपय, वने=विपिने, महिंपिभि = भरद्वाजादिभि, सह=सहित, त्वा=भवन्तम्, अभिरक्षन्तु=प्रत्यूहरहित कुव तु । यदा-महिंपिभि सह देवा अभिरक्षन्ति सम्बन्धो विधेय ।

**इन्दुमती**— हे वत्स राम ! देव-मदिरोमे जिन देवी-देवताओंको, तुम नित्य प्रणाम करते हो वे देवतालोग महिंपियोंके सहित वनमें तुम्हारी रक्षाकरें ।

यानि दत्तानि तेऽखाणि विश्वामित्रेण धीमता ।

तानि त्वामभिरक्ष तु गुणैः समुदित सदा ॥ ५ ॥

**अन्वय** — धीमता, विश्वामित्रेण, ते, यानि, अखाणि, दत्तानि, तानि, गुणै समुदित, त्वाम्, सदा अभिरक्षन्तु ।

**सुधा** — धीमता = बुद्धिमता, विश्वामित्रेण = गाधिषुतेन ते = तुम्य, यानि = सम्मोहनादीनि, अखाणि = आयुध तु प्रदरण शत्रुमध्यम्” इत्यमर । दत्तानि = अर्पितानि, तानि निखिलायखाणि, ( कतृणि ) गुणै = दयादाक्षि ष्यादिभि सद्गुणै, समुदित = प्रकाशित, त्वा = भवन्तम्, सदा = सर्वस्मिन् काले, अभिरक्षन्तु = सम्पालयन्तु ।

**इन्दुमती**—( माता कौशल्याने फिर कहा- ) हे वत्स ! बुद्धिमान् महिंपि विश्वामित्रजीने तुम्हें जितने सम्मोहनात्म दिये हैं, वे सब भेषु गुण युक्त अख वनमें तुम्हारी रक्षा करें ।

पितृशुश्रूपया पुत्र ! मातृशुश्रूपया तथा ।

सत्येन च महावाहो ! चिर जीवाऽभिरक्षित ॥ ६ ॥

**अन्वय** — हे पुत्र !, हे महावाहो !, पितृशुश्रूपया, तथा, मातृशुश्रूपया, च, सत्येन, अभिरक्षित, ( त्व ) चिर, जीव ।

**सुधा**— हे पुत्र=हे वत्स !, हे महावाहो=महान्तौ-दीर्घीं, वाहू-भुजौ यस्य तत्समुद्दी । ‘भुजवाहू प्रवेष्टो दो’ इत्यमर । पितृशुश्रूपया=जनकमेवया, तथा, मातृशुश्रूपया=अस्मत्सेवया, यदा-मातु-कैवेद्या, शुश्रूपया=मनोरथसम्पादनरूपसेवया । च = अपि च, सत्येन = तद्वैषण घर्मेण, अभिरक्षित =

अभित -सर्वदिन्दु, रक्षित -ब्रात, ( त्वं ) चिर = बहुकाल, जीव = प्राणान् धारय, वस्तुतोऽन्तभावितश्यर्थाऽयम्, तथा सति चिर जीव चिर ( प्रजा ) पालयेत्यर्थ ।

इन्दुमती—( दुनश्च कौशल्याने कहा— ) हे आजनुबाहु बत्स राम ! पिता-मानाकी सेवा और सत्यपालनके पलसे ( वामें रक्षित होकर ) तुम अधिक दिनतक जीवित रहो ।

समित्कुशपवित्राणि विद्यश्चायतनानि च ।

स्थणिडलानि च विप्राणा शैला वृक्षा ज्ञुपा हृदा ॥

पतञ्जा पञ्चद्वाः सिहास्त्वा रक्षन्तु नरोत्तम ! ॥ ७ ॥

अन्वय — हे नरोत्तम !, समित्कुशपवित्राणि, वेद, च, आयतनानि, च, विप्राणा, स्थणिडलानि च, शैला, वृक्षा, ज्ञुपा, हृदा, पतञ्जा, पञ्चगा, सिहा ( वने चरन्त ) त्वा, रक्षन्तु ।

सुधा—हे नरोत्तम=नरध्रेष्ठ !, समित्कुशपवित्राणि=समिध—होमीयपलाशादि-काषानि, कुरा = वहिष पवित्राणि-दर्मग्रन्थिविशेषा, तानि च तपोकानि, वेद = अग्निधिएयानि, च = तथा, आयतनानि = देवगृहाणि, वित्राणा=वाद्य-णाना, स्थणिडलानि = देवपूजास्थलानि शैला = ज्ञुदपर्वता, वृक्षा = द्रुमा, ( एतचोपलक्षणन्तेन लतादेरपि परिप्रह ) ज्ञुपा = हस्तशाखाशिपायुक्ता वृक्ष विशेषा “हस्तशाखाशिफ ज्ञुप ” इत्यमर । यद्वा ‘हस्तशाखावृक्षेभ्वेव प्रायशो देवता सन्निदधत” इत्यैतिध्याद् वृक्षविशेषण ज्ञुपरान्दो जेय । हृदा = तड़ागाद्य, पतञ्जा = पश्चिण, पञ्चगा = सर्पा, सिहा = मृगेन्द्रा, ( वने चरन्त ) त्वा=भवन्त, रक्षन्तु = ब्रायन्ताम् । अत्र समिदादिपदेन ततदषिष्ठातृदेवता प्राप्या ।

इन्दुमती—( कोशल्याने कहा— ) हे नरोत्तम राम ! वनमें समित् ( हवन की सकड़ी ) कुरा, कुशाकी, बनी पवित्री तथा ( अग्निमण्डपकी ) वेदिया, देवालय, ग्रामणोंके देव-पूजास्थन ( जो कि बड़, पौपल, नीम आदि देवहृदोंके नीचे वना रहता है ), पर्वत, वृक्ष, छोटी २ शाखा वाले पौधे ( चूमनेवाले तृणविशेष ), जलाशय पक्षी, सर्प, और मिह सभी वनमें दुम्हारी रक्षा करें ।

स्वस्ति साध्याश्च विश्वे च मरुतश्च महर्पिभि ।

स्वस्ति धाता विधाता च स्वस्ति पूषा भगोऽर्थमा ॥ ८ ॥

लोकपालाश्च ते सर्वे घासवप्रमुखास्त्वया ।

ऋतवः पट् च ते सर्वे मासा सवत्सरा क्षपा ॥ ६ ॥  
दिनानि च मुहूर्तांश्च स्वस्ति कुर्वन्तु ते सदा ।

**अन्यथ** (सदा) महर्षिभि (सह) साध्या च, विश्वे, च, मष्ट,  
(ते) स्वस्ति कुर्वन्तु, च धाता, विधाता (ते) स्वतिति, च, (करोतु) च, पूषा,  
भग, अर्यमा (ते) स्वस्ति (करोतु) च, वासवप्रमुखा, ते सर्वे, लोकपाला,  
तथा ते, सर्वे, पट् ऋतव, च, मासा, सवत्सरा, क्षपा, च, दिनानि,  
मुहूर्तां, सदा, ते स्वस्ति, कुर्वन्तु ।

**सुधा**—(सदा) महर्षिभि =भरद्वाजादिभि, (सह) साध्या =साध्य सिद्धि, साऽ  
स्ति येषा ते गणदेवविशेषा (१), च=पुन, विश्वे=विश्वेदेवा (२), मष्ट =  
मरहणा (ते=तुभ्य) स्वस्ति =कल्याण, कुर्वन्तु (लिङ्गबृहत्ययेनाप्ने  
इत्यव) । च=पुन धाता =दक्षप्रजापति, विधाता =ब्रह्मा, च=चक्र  
रादन्येऽपि ब्रह्माण्डाऽधिनायका (ते=तुभ्य) स्वस्ति =मङ्गल, करोति च=  
पुन पूषा, भग अर्यमेत्यादिदादशसंख्यकादित्यामान्तरभेदविशेषवाचका, (ते=  
तुभ्य) स्वतिति =मङ्गल करोतु । च=पुन, वासवप्रमुखा =इन्द्रादिप्रधाना, ते  
सर्वे (३) लोकपाला, तथा=शास्त्रोक्ता (४) सर्वे =पट् ऋतव, च=पुन (शास्त्रो  
चा सर्वे) मासा =चैत्रादयो द्वादशमासा, सवत्सरा =सवसन्ति ऋतवो  
यत्र ते तयोक्ता प्रभवनामादिका इति यात् । क्षण =रात्र्य, च=पुन,  
दिनानि =सर्यादिवारा, मुहूर्ता =द्वादशाखणा ‘ते तु मुहूर्तां द्वादशाखियाम्’  
इत्यमर । सदा =सर्वस्मिन् काने ते=तुभ्य स्वस्ति =मङ्गलम्, कुर्वन्तु ।

**इन्द्रुमतो**—(कौशल्याने कहा-) हे वत्स राम! बनमें जाने पर (वारही  
साध्यगण, तेरही विश्वेदेवगण, उन गासो पक्ष और सभी ऋषिगण तुम्हारा  
मगात करै और धाता, विधाता (दक्ष-प्रजापति) पूषा, भग और अर्यमा ये

(१) ते च यथा—‘मनोमन्ता तथा प्राणो भरोऽगनक्ष वीर्यवान् । नि-  
र्भयो नरकश्चैव दण्डो नारायणो वृष ॥ प्रभुश्चेति सपाख्याता साध्या द्वादश  
देवता ॥’ (२) क्षु-दक्ष-सत्यवसु-काल-काम-धुमिलोनन-पूरुत्वो-माद्रवत-  
अष्टावेते विश्वेदेवदशवाच्या । (३) इदो-वहि-पितृपति-नैर्जतो-वरणो-  
मष्ट, कुवेर-ईश-अष्टावेते दिग्मालगदवाच्यो लोकपाला । (४) इमन्त-शि-  
रिर-वसन्त-ग्रीष्म-वर्षा-शरद-एते पट् ऋतव ।

( इशादि ) लोकपाल तुम्हारा मङ्गल करें । एव छहो स्तुत्ये, दोनो पक्ष, बारहो मास साठहो भिन्न २ नामके सबत्सर, रात, दिन तथा बारहो मुहूर्चे तुम्हारा मङ्गल करें ।

थुति स्तृतिश्च धर्मश्च पातु त्या पुत्र ! सर्वतः ॥ १० ॥

स्कन्दश्च भगवान् देव सामश्च सदृहस्पति ।

सप्तर्षयो नारदश्च ते त्या रक्षन्तु सर्वत ॥ ११ ॥

अन्वय — हे पुत्र !, ध्रुति, च, स्तृति, च, धर्म, त्वा, सर्वत, पातु । च, स्कन्द, भगवान्, देव, च, सदृहस्पति, सोम, ( तथा ) सप्तर्षय, नारद, च, ते, ( मया स्तुता ) सर्वत, त्वा, रक्षन्तु ।

सुग्रा—हे पुत्र=वत्स !, ध्रुति =आम्नाय, च=पुन, स्तृति =मन्वादिष्य-मंशाख, च=पुन, धर्म =श्रुतिस्त्रृत्युदित, त्या=भवन्त, सर्वत =अभित, पातु=रक्षन्तु । च=पुन, स्कन्द =वार्तिकेय भगवान्=भग-माहात्म्यमस्याऽस्तीति भगवान्, देव =महादेव ( नामैकदेशेन नामप्रङणात् ), च=पुन, सदृह-स्पति =गुरुसहित, सोम =चन्द्र यद्वा उमासहितो महादेव, एतत्तेषे पूर्व “देव” इत्यस्ये द्रोऽर्थ । ( तथा ) सप्तर्षय =मरीच्यत्रिप्रमुखा ( १ ) नारद =नार-ज्ञान, ददातोति नारदो योगी । ते =सर्वे ( मया स्तुता ) सर्वत =अभिन त्वा =भवन्त, रक्षन्तु =पान्तु, तत्रत्यविज्ञादिम्यो निशारयन्त्रित्यर्थ ।

इन्दुमती— ( कौशल्याने पुन वहा- ) हे पुत्र राम ! वेद, स्तृति और तत्प्रतिपादित धर्म, वनमें तुम्हारी रक्षा करें । तथा पार्वतीनन्दन और पार्वती सहित भगवान् शङ्खर, शृहस्पति, सतर्णि और योगि-राज नारद जो सदैव ( वनमें ) तुम्हारी रक्षा करें ।

ते चाऽपि सर्वत सिद्धा दिशश्च सदिगोश्वरा ।

स्तुता मया घने तस्मिन् पान्तु त्या पुत्र ! निरयश ॥ १२ ॥

अन्वय — हे पुत्र !, मया, स्तुता, ते, च, सदिगीश्वरा, सबत, सिद्धा, च, दिश, अग्नि, तस्मिन्, घने, निरयश, त्या, पान्तु ।

सुधा—हे पुत्र=राम !, मया =तव मात्रा कौशल्यया, स्तुता =वन्दिता, ते=सप्तर्षादय, च=तथा, सदिगीश्वरा =दिक्गलमहिता सिद्धा =परिद्धा, यद्वा—तपोविशेषै कृतसाक्षात्कारा सिद्धा च=पुन, दिश =आशा “दिशस्तु

( १ ) सप्तर्षिणा यगाक्षम नामानि—

मरीचि-अङ्गिरा अत्रि पुनस्त्य पुनह करु विष्वरुचेति ।

**सुधा—**ते = तब, आगमा = आगम्यन्ते इति आगमा --मार्गी , आगमनानुकूलव्यापारा इत्यर्थं । शिवा = मङ्गलविशिष्टा , सन्तु = भवन्तु, पराक्रमा = पुरुषार्थी , सिद्धयन्तु = सफला भवन्तु, च = तथा, सर्वसमत्तय = वनवासापे क्षिति फलमूलादिरूपा , ( सन्तु ) हे पुत्रक=हेवीर राम ! , त्व स्वस्तिमान=मङ्गलयुक्त , ( सन् , वन ) गच्छ=ब्रज ।

**इन्दुमती—**( पुत्रत्वला माता कौशल्या आशीर्वादसे हित जन्तुओंका भय निवृत्ति करके अब माझलिक वचन कहने लगी— ) हे वरस राम ! तुम्हारे मार्ग (वनगमन) कल्याण कारक हो और तुम्हारा पराक्रम सिद्ध हो तथा बनवे पल, मूलादि तुम्हें प्राप्त होने रहें । हे पुत्र राम ! ( यही मेरा आशीर्वाद है ) अब तुम स्वस्तिमान होकर ( निर्विघ्न पूकक ) वन जाओ ।

**स्वस्ति तेऽस्त्वान्तरिक्षेभ्य पार्थिवेभ्य पुन पुन** ।

**सर्वेभ्यश्चैव देवेभ्यो ये च ते परिपन्थिन ॥ २२ ॥**

**अन्तर्य** —हे राम !, आन्तरिक्षेभ्य , ते, स्वस्ति, अस्तु, पार्थिवेभ्य , पुन , पुन , ( ते, स्वस्ति, अस्तु ) देवेभ्य , ( ते स्वस्ति, अस्तु ) च, ये, च, ते, परि पन्थिन , ( तेभ्य ) सर्वेभ्य , एव, ( ते, स्वस्ति, अस्तु )

**सुधा—**हे राम ! आतरिक्षेभ्य =गगनचारिभ्य , ते=तुभ्य, स्वस्ति = मङ्गलम् , अस्तु = भवतु, पार्थिवेभ्य = पृथिवीवर्तिभ्य , पुन पुन = भूयो भूय ( ते स्वस्ति, अस्तु ) देवेभ्य =सुरेभ्य ( ते, स्वस्ति, अस्तु ) च=पुन , ये= पूर्वानुक्ता , च = अपि, ते = तब, परिपन्थिन = विरोधिन ( तेभ्य ) सर्वेभ्य , एव = अपि, स्वस्ति = मङ्गलम् , अस्तु = भवतु ।

**इन्दुमती—**( कौशल्याने पुन कहा— ) हे पुत्र ! आकाश और पृथिवी वर्ती पताथोंसे पुन पुन ( फिर कहती हूँ या बार २ आराधना करगी कि ) तुम्हारा कल्याण हो, तथा सभी देवताओंसे एव जो तुम्हारा विरोधी हो उनसे भी ( इन २ कहाँगी कि वनमें ) तुम्हारा कल्याण हो ।

**शुक सोमध्य सूर्यश्च धनदोऽथ यमस्तथा ।**

**पान्तु त्वामचिता राम ! दण्डकारण्य(१)वासिनम् ॥ २३ ॥**

( १ ) दण्डको नाम कथन सूर्यवंशीयो राजा देखगुरो शुकाचार्यस्य ‘अरजाम्’ नामकाच्या बलेन धार्थितवान् तच्छुस्त्वा शुकाचार्यस्तु नितरा कुपित त

अन्वय — हे राम !, दण्डकारण्यवासिनम्, त्वाम्, शुक्र, च, सौम, च, सूर्यः, अथ, घनद, तथा, यम, (एते) अचिता, पान्तु ।

सुधा — हेराम = हेवत्स !, दण्डकारण्यवासिन = दण्डकवननिवालिन, त्वा = भवन्त, शुक्र = भार्गव, च = पुन, सौम = चन्द्र, च = इन, सूर्य = आदित्य, अथ = अपि च, घनद = कुवेर, तथा, यम = कृतात्, (एते) अचिता = पूजिता, पान्तु = रक्षन्तु । पूर्ववैकैकरण, अत्रतु मिलितवेति न पुनर्दक्षि ।

इन्दुमतो—(माता कौशल्याने पुन कहा—) हे दण्डक वनमें वास करने वाले हुश राम ! (तुम वन जाओ) भगवान् भार्गव शुक्र, चन्द्र, सूर्य, कुवेर, यम ये सब हमसे पूजित (खुश) होकर वहा (दण्डक वनमें) तुम्हारी रक्षा करें ।

अग्निर्वायुस्तथा धूमो मन्त्राश्रिपिमुखच्युता ।

उपस्पृशनकाले तु पान्तु त्वा रघुनन्दन ! ॥ २४ ॥

अन्वय — हे रघुनन्दन !, उपस्थर्यनकाले, तु, अग्नि, वायु, तथा धूम, ऋषिमुखच्युता, मन्त्राश्र, त्वा, पान्तु ।

सुधा—हे रघुनन्दन = नन्दयति—आनन्दयतीति नन्दन, रघो—रघु कुलस्य नादन—रघुनन्दनस्तत्पुद्गुद्गु । उपस्थशनकाले=अस्पृशयस्थर्यनसपये, तु, अग्नि = गाहैपत्याद्यग्नि, वायु = आश्रमस्थपवन, तथा, धूम = वहेषपस्थित शिखा, ऋषिमुखच्युता = ऋषय—भरद्वाजाद्यस्तेषा, मुखाद् वदनात्, च्युता—नि सृता, त्वया गृहीताश्च । पान्तु = रक्षन्तु । वनश्रमणसपये अस्पृशयस्थर्यनाशुचय आश्रमस्थाग्न्यादिना पूता सन्तस्त्वा रक्षित्वत्याशय ।

इन्दुमतो—(अस्त्रूर्धयका स्वर्ण होनेसे आयुका नाश होता है, अत माता कौशल्याने कहा—) हे गधुकुनका आनन्दवर्धक राम ! वनमें अछूतोंसे अथवा अस्पृशय पदार्थोंसे स्वर्ण होने पर (दण्डकारण्यवासी ऋषि—आश्रमके) अग्नि वायु, धूम और ऋषियोंके मुखसे निस्दृत मत्र (वेदध्वनि) तुम्हारी रक्षा करें (पवित्र करें) ।

सर्वलोकप्रभुर्ब्रह्मा भूतकर्त्ता तथर्यय ।

ये च शेषा सुरास्ते तु रक्षन्तु वनवासिनम् ॥ २५ ॥

राजान शशाप—त्व मरिष्यसि' अद्यप्रभृति राज्यञ्चेद सहाइमच्ये महारथयत्या परिणत भविष्यतीति, तत्र विभ्याच्चलशिखरदेशस्य राज्य दण्डकारण्य नामाऽभूदित्यन् रामायणीयकथाऽनुसन्धेया ।

**अन्वय।—** वनवासिन, ( त्वा ) भूतक्त्ता, सर्वलोकप्रभुः, ब्रह्मा, तथा, शृणुपय च, ये, शेषा, सुरा, ते, तु, रक्षन्तु ।

**सुधा—** वनवासिन=दण्डकारण्यस्थायिन ( त्वा ) भूतक्त्ता=प्राणिनिर्माता, सर्वलोकप्रभु, =उर्वे च ते लोका -चतुर्दशमुखनानि, तेषा प्रभु—स्वामी । ब्रह्मा=पितामह, तथा, शृणुपय = भगद्वाजादय, च=पुन, ये शेषा = उक्ताऽवशिष्ट, सुरा = देवा, तु = तेऽपि, रक्षन्तु = पान्तु ।

**इन्दुमतो—** ( कौशल्याने कहा— ) हे रघुनन्दन । चौदहो लोकोंके स्वामी ब्रह्मा तथा प्राणियोंका पालन करनेवाले भगवान् विष्णु एव छायगण तथा अन्य ( पूर्वोक्तावशिष्ट, जिनका नाम पहले नहीं लिया गया हो वे ) देवता भी दण्डकारण्यमें तुम्हारी रक्षा करें ।

**इति माल्ये सुरगणान् गन्धैश्चाऽपि यशस्विनी ।**

**स्तुतिभिक्षानुरूपाभिरातर्चायतलोचना ॥ २६ ॥**

**अन्वयः—** इति आयतलोचना, यशस्विनी, माल्ये, च, गन्धै, अनुरूपाभि, स्तुतिभिक्षाऽपि, आनर्च ।

**सुधा—** इति=एव प्रकारेण, मत्वेति शेष । आयतलोचना=आयते लोचने यस्या सा तथोका दीर्घादीर्थ्यर्थ । यशस्विनी=कीर्तिमती, माल्ये = स्त्रीगम, च=पुन, ग ये = च-दनादिभि, अनुरूपाभि = स्वयोग्याभि, स्तुतिभिक्षाऽपि=प्रार्थनाभिक्षाऽपि, आनर्च = पूजयामास ।

**इन्दुमतो—** (रामवनगमनके समय) इस प्रकारकी मन कामना करके सुकी तिमती विशालाक्षी सुन्दरी रामकी माता मदारानी कौशल्याने पुष्प-माला-चन्दन आदिसे देवताओंकी यथायोग्य स्तुति-पूजा की ।

**ज्वलन समुपादाय ब्राह्मणेन महात्मना ।**

**हावयामास विधिना राममङ्गलकारणात् ॥ २७ ॥**

**अन्वय—** (कौशल्या) राममङ्गलकारणात्, महात्मना, ब्राह्मणेन, ज्वलन, समुपादाय, विधिना, हावयामास ।

**सुधा—** ( कौशल्या ) राममङ्गलकारणात् = रामाभ्युदयहेतो, महात्मना=शुद्धान्त बरयेत, ब्राह्मणेन = विप्रण ज्वलन = गङ्गि, समुपादाय = प्राहृष्टिवा, विधिना = शास्त्रोक्तविधिकमेया हावयामास = होम कारणामास ।

**इन्दुमतो—** ( देव-पूजनके पश्चात् पूजान्तरमें माता कौशल्याने-- ) पवित्र

अन्त ऋण वाले ब्राह्मण द्वारा अग्निस्थापन करवाकर प्रश्वलित अग्निमें राम चाक्रजीके वन-मङ्गलके लिये ब्रह्ममाणोक्त विधिसे हवन करवाया ।

**घृत इवेतानि माल्यानि समिष्ठश्वैर् सर्वपान् ।**

**उपसम्पादयामास कौशल्या परमाङ्गना ॥ २८ ॥**

**अचय —परमाङ्गना, कौशल्या, घृत, इवेतानि, माल्यानि, सर्वपान्, समिष्ठः, च, अग्नि, उपसम्पादयामास ।**

**सुधा—परमाङ्गना=परमोक्तमा छी, कौशल्या=राममाता, घृतम्=आज्ञ्यम्, इवेतानि=शुभ्राणि, माल्यानि=सज्ज, सर्वपान्=तत्तुभान्, “सर्वं स्यात् उरिष्य कुट्टनेइथ तत्तुभम्” इनि विकाशद्वेष । समिष्ठ =यागादिहवनीय काङ्गानि, चाडपि, उपसम्पादयामास =होमाय ब्राह्मणसमीप प्रापयामास ।**

**इन्द्रमती—(ऐव—स्तुति दूजनके पश्चात्) राम—वन मगल काङ्क्षणी छीधेष्ठ माता कौशल्याने घृत, इवेत पुष्टकी माला, समित् ( हवनकी विहित लकड़ी ), सरसो आदि सभी हवनकी सामग्रियाँ एकत्र जुटाकर, वेदीपर अग्निस्थापन प्रदेशके समीपमें पहुंचवायी ।**

**उपाध्याय स विधिना हुत्वा शान्तिमनामयम् ।**

**हुतहृष्टवशेषेण वाह्य वलिमकल्पयत् ॥ २९ ॥**

**अचय —स, उपाध्याय, शान्तिम्, अनामयम्, (उद्दिश्य) विधिना, हुत्वा, हुतहृष्टवशेषेण, वाह्य वलिम्, अकल्पयत् ।**

**सुधा—स, उपाध्याय =पुरोहित (१), शान्तिम्=अभिभवकारकविध्वरादि त्यम्, अनामयम्=आरोग्यम्, उद्दिश्येति शेष । विधिना=विधिपूर्वकेण, हुत्वा=हवन विधाय, हुतहृष्टवशेषेण=हुतम्-आहुत, यद्दहृष्ट-हवनीय इति, तस्य, अवशेष-अवशिष्टो भाग तेन, तथोक्तेन । वाह्य=होमस्थानाद्विभागयोग्य, वलि=लोकपालादिवलिम् विहितलोकपालादिपूजा मत्यर्थ । अकल्पयत्=अरचयत् ।**

**इन्द्रमती—(माता कौशल्याद्वारा हवन सामग्री उपस्थित होनेके पश्चात्-) हवन करनेवाला उपाध्याय ( पुरोहित ) ने विधिपूर्वक अनामय-शान्ति ( कष्ट घोरभय धारय वारय पूर्णायुवितर वितर सर्वान् कामान् पूरय २ इत्यादि रूपेण,**

( १ ) एकदेश तु वेऽस्य वेदाङ्गा यपि वा पुन ।

अस्याप्य त वृत्यर्थमुपाध्याय स उच्यते ॥

राम—वनगमन कल्याणाय ) इवन करके अग्निस्थापन प्रदेश से बाहर इवनावरिष्ट साकल्यसे लोकपालोंको बलि दी ।

**मधुदध्यक्षतघृतैः स्वस्तिवाच्य द्विजौस्तत ।**

**वाचयामास रामस्य यने स्वस्त्ययनक्रियाम् ॥ ३० ॥**

**अन्धय — स्वस्तिवाच्यम् , ( उद्दिश्य ) मधुदध्यक्षतघृतैः , द्विजान् ( कृत्वा ) तत , रामस्य , यने , स्वस्त्ययनक्रिया , ( द्विजैः ) वाचयामास ।**

**सुधा—स्वस्तिवाच्य=पुण्याद्वाचनम् ( उद्दिश्य ) मधुदध्यक्षतघृतैः=मधुच , दधि च , अक्षत च , घृतञ्चेति मधुदध्यक्षतघृतानि तैस्तथौकै , एतैस्तपलक्षितान् द्विजान्—स्वस्तिवाचनाद्वाचनान् ( कृत्वा ), तत =तदनन्तर , रामस्य =स्वत नयस्य , यने = दण्डकारणे , स्वस्त्ययनक्रिया=स्वस्ति—मङ्गलमस्तिव्यवैरुपा वन विषयकस्वस्त्ययनक्रियाप्रतिपादकमन्त्रमित्यर्थ । वाचयामास = पाठयामास ।**

**इन्दुमती—(इवनोत्तर माता कीशल्याने—) ब्राह्मणोंको शहद , दही , अक्षत , और घृत देकर श्रीरामचन्द्रजीके मगलके लिये उनसे स्वस्तिवाचन कराया ।**

**ततस्तस्मैद्विजेन्द्राय राममाता यशस्विनो ।**

**दक्षिणा प्रददौ काम्या राघव चेदमग्नवोत् ॥ ३१ ॥**

**अन्धय — तत , यशस्विनी , राममाता , तस्मै , द्विजेन्द्राय , काम्या , दक्षिणा , प्रददौ , च , राघव , इदम् , अग्नवीत् ।**

**सुधा—तत =स्वस्तिवाचनानन्तर , यशस्विनी=शीर्तिमती , राममाता=कौश ल्या , तस्मै=इवनकर्त्रै , द्विजेन्द्राय=ब्राह्मणभ्रेष्टाय , काम्या=स्वाभिलिपिता , दक्षिणा=कर्मसपलताप्राप्तश्यथ द्रव्य , प्रददौ=दत्तवती , च=पुन , राघव=रामम् , इद =उद्यमाणवचनम् , अग्नवीत =अग्नोचत् ।**

**इन्दुमती—तदुत्तर ( स्वस्ति धाचन करवानेके पश्चात ) सुकीर्तिमती रामकी माता महारानी कीशल्याने उन भ्रेष्ट कर्मकारडी ब्राह्मणोंको यथेच्छ दक्षिणा दी श्री तदुपरात रामचन्द्रजीसे कहा—।**

**यन्मङ्गल सदस्ताद्दे सर्वदेवनप्रस्फुते ।**

**तुत्रनाशो समभवत्तत्ते भवतु मङ्गलम् ॥ ३२ ॥**

**अ वय — यत् , मङ्गल , तुत्रनाश , सब देवनमस्फुते , सदस्ताद्दे , समभवत् तत् , मङ्गल , ते भवतु ।**

**सुधा—** यत् = याद्या, मङ्गल = विजय, वृत्रनाशो = वृत्रान्तुरवचकाले (१) यत् देवनमस्तुते = सकलसुरवदिते, उद्दश्यते = इत्रे, समन्वये = सज्जातम्, तद् = तादृश, मङ्गल = विजय, ते = तव, भवतु = अस्तु ।

**इन्दुमती—** ( कौशल्याने कहा— ) हे बत्त राम ! वृत्रासुरको मारनेके समय सब देवताओंसे नमस्तृत होनेर जैसा मङ्गल इन्द्रको हुआ था, वैसा ही मङ्गल ( दण्डकारण्यमें ) दुम्हार भी हो ।

यमङ्गलं सुर्पर्णस्य विनिताक्षरपयत्पुरा ।

अमृतं प्रार्थयानस्य तत्त्वं भवतु मङ्गलम् ॥ ३२ ॥

**अन्वय—** पुरा, यत्, मङ्गलम्, अमृत, प्रार्थयानस्य, सुर्पर्णस्य, विनिता, अक्षरयत्, तद्, ते, मङ्गल, भवतु ।

**सुधा—** पुरा = पूर्वस्थिति समये कद्गृह्णतया भवत्तमय इत्यर्थं । यत् = यादृश मङ्गल = विजय, अमृत = पीयूष, प्रार्थयानस्य = याचमानस्य, ( आर्थत्वान्मुग्धाभावो नेत्र ) सुर्पर्णस्य = गद्धस्य, विनिता = गद्धमाता, अक्षरयत् = कृतवर्ती, तद् = तादृश ते = तव, मङ्गल = विजय, भवतु = अस्तु ।

**इन्दुमती—** ( कौशल्याने फिर कहा— हे पुत्र राम ! ) पहले गद्धकी माता विनिताकी देव-प्रार्थना करनेपर अमृत लानेके निये प्रस्तुत गद्धका जैसा मन्त्र हुआ था वैसा ही मन्त्र ( दण्डकारण्यमें ) दुम्हार हो ।

अमृतोत्पादने दैत्यान्घ्रतो वज्रधरस्य तत् ।

अदितिरङ्गलं प्रादात्तत्त्वं भवतु मङ्गलम् ॥ ३३ ॥

**अन्वय—** अमृतोत्पादने, दैत्यान्, ग्रह, वज्रधरस्य, यत्, मङ्गल अदिति, प्रादात्, तद्, मङ्गल, ते, भवतु ।

**सुधा—** अमृतोत्पादने = अमृतोत्पत्तिसमये, ( समुद्रमन्धनकाने ), दैत्यान् = असुरान्, ग्रह = मारवत्, वज्रधरस्य = इद्रस्य, यत्, यादृश, मङ्गल = विजय, अदिति = क्षयपत्नी, प्रादात् = दत्तवर्ती, तद् = तादृश, मङ्गल = विनय, ते = तव, भवतु = अस्तु ।

( १ ) पुरा किन विश्वस्याक्ष त्वप्तु पुत्रे इत्रेण इने सति हुपि स्त्रदशा इद्रस्य इन्द्रार वृत्राख्य पुत्रान्तुरमुरिणादयितुराभिचारिक याग कुर्वान् तस्मादुद्यूतो इत्रो भामास्तुर । तदस्य मध्यभीता देवा भगव त तुम्हातु । अथ तस्मात्मात्मवद्या देवा इन्द्र पुरस्त्वय दधीचैरुम्भ जग्म । अनन्तरय सम्प्राप्य ततोऽस्मि प्राप्य नेत्र वज्रं निर्माय तेन वत्रेण च वृत्रमिद्रो इद्रवानिति भागवतीया कथानुभवेया ।

**इन्दुमती—**( पुनर्भू कौशलयाने कहा-हे वर्त । ) इन्द्रकी माता अदिति ने समुद्रसे अमृत निकालने के समय दैत्यों की मारने के लिये प्रस्तुत वज्रधारी हाँड़ी जैसा मण्डल प्रदान किया वैसा ही यह (मेरा) मण्डल तुम्हें (दण्डक वनमें) प्राप्त ही ।

**त्रिविक्रमान् प्रकमतो विष्णोरतुलतेजसं ।**

**यदासोऽमङ्गलं राम । तत्ते भवतु मङ्गलम् ॥ ३५ ॥**

**अन्वय—**अतुलतेजस , विष्णो , त्रिविक्रमान् , प्रकमत , यत् , मङ्गलम् , आक्षीत , हे राम , तत् , मङ्गलम् , ते भवतु ।

**सुधा—**अतुलतेजस =अतुलम्-अनुरम् , तेज पराक्रम यस्य वस्य , विष्णो = वेदेष्टि भुवनव्रय पादवयेणोनि विष्णुस्तस्य वामनाऽवतारस्य(१) मधुसूदनम्येत्यथ । त्रिविक्रमान्=वारत्रयपादविक्षेपन् , प्रकमत =प्रकुर्वत , यत् =यादृश , मङ्गल=विजय , आक्षीत=अभूत् , हे राम = वर्त । तत्=तात्त्वा , मङ्गल=विजय , ते=तत् , भवतु=अस्तु ।

**इन्दुमती—**( कौशलयाने कहा-हे आजानुवाहु वर्त्स राम ! वामनावतारमें ) अतुलित तेज शाली विष्णु भगवान् का तीन बार पादप्रक्षेप करने से तीनों लोक नापनेमें जैसा मङ्गल ( विजय ) हुआ था वैसा ही मङ्गल ( दण्डकारण्यमें ) हुम्हारा हो ।

**शूष्य सागरा द्वीपा वेदा लोका दिशब्धता ।**

**मङ्गलानि महावाहो । दिशन्तु शुभमङ्गलम् ॥ ३६ ॥**

**अन्वय—**हे महावाहो ! , शूष्य , सागरा , द्वीपा , वेदा , लोका , (तथा) दिशब्ध , मङ्गलानि , दिश-तु , ( मङ्गलानि च ) शुभमङ्गलम् दिशन्तु ।

**सुधा—**हे महावाहो = दोर्षवाहो । , शूष्य = भरद्वाजप्रभूतप , सागरा = क्षीरनिधिप्रभृतय , द्वीपा = अन्तर्बारितटानि , समुद्रमध्यवर्तिप्रदेशा इति यावद् । यद्वा-जन्मू १ लङ्घ २ शालमली ३ कुश ४ क्रीड ५ शाक ६ पुष्कर ७ एते सह-द्वीपा , वेदा =शूगादय , लोका =चतुर्दशभुवनानि ता =प्रसिद्धा दिश =प्राप्त्या ,

(१) पुरा कश्यपाददित्यो भगवान् वामन प्रादुर्भूत । स च कर्मि मुनिभिर्देशोपनीतः वलियक्षाभाष्यां गत तत्रासुराभिषो वनियषोत्तविधिना तमचयामास । भय तत्र भगवान् तत्पर देवले पादवयमिनभूमियाचन कृत्वान् । ततो गुरुणा शुक्रण मुद्दमुद्दिनिष्ठोर्वि वलिस्तस्मै पादवयमिनभूमिदान ददी । ततो विराह्मूल गृहोत्त्वा पादवयलेव त्रौडावान् जिगायेति भा-वनीया कथा ।

दयक्ष, मङ्गलानि = शुभानि दिशन्तु = ददतु, (तानि च) (ते) शुभमङ्गल = मङ्गलानामपि मङ्गलम्, दिशतु = ददतु ।

इन्दुमतो—(कौशल्याने विर कहा-) हे महावाहो ! सप्त शृणिगण, चारो समुद्र सातो द्वीप (समुद्रके पर्यवर्ती तट-प्रदेश, लङ्घा आदि) चापो वेद, चौदहो भुवन तथा दशो दिशायें तुम्हारा शुभ मङ्गल करें और वह मङ्गल तुम्हारा अतिशय मङ्गल दायक हो अर्थात् मङ्गलगर मग्न तुम्हारा बनाये होता रहे ।

इति पुत्रस्य शेषाश्च रुचा शिरसि भासिनी ।

गच्छैश्वापि समालभ्य राममायतलोचना ॥ ७ ॥

ओषधीं च सुसिद्धार्थी विशलयकरणीं शुभाम् ।

चकार रक्षा कौशल्या भन्त्रैरभिजजाप च ॥ ८ ॥

अन्यथ — इति, (उक्त्वा) आयतनोचना, भासिनी, कौशल्या, पुत्रस्य, शिरसि, शेषाश्च कृत्वा, गच्छैश्वापि, समालभ्य, सुसिद्धार्थी विशलयकरणीम्, ओषधीं, च (गुलभीकृत्य) शुभा, रक्षा चकार (ता) म त्रै अभिभृतजाप च ।

सुधा—इति = पूर्वोक्तकथेण, (उक्त्वा) आयतलोचना = दीघनेत्रा, भा सिनी = सौभाग्यवती, कौशल्या = राममाता, पुत्रस्य = स्वतन्त्रस्य, शिरसि = मस्तके, शेषाश्च = अक्षताश्च, कृत्वा, गच्छैश्वापि = अनेकविधच दनैश्वापि, समालभ्य = विलिप्य, सुसिद्धार्थी = सुनिद - प्राक्षित, अथ = फल यस्या ता, विशलयकरणीम् = अ तगतशत्र्यनिर्गमनकारिणीम्, ओषधीं = मूलिका (गुलभीकृत्य) शुभा = मङ्गलप्रदा, रक्षा, चकार = रक्षा हेतुत्वेन इस्ते वव घेत्यर्थं । (ता) मात्रै = पौराणिकमन्त्रविशेषै, अभिजजाप = अभियन्त्रयामात्र ।

इन्दुमतो—इस प्रकार मग्न पाठ करके सौभाग्यवती रामकी माती विशालाक्षी कौशल्याजीने बनगमनोद्यत अपने पुत्र श्रीरामचन्द्रजीके मस्तकपर मगलादृत चढ़ाकर चादन लगाया और तदुपरात्र प्रत्यक्ष फल देनेवानी विशलयकरणी नामका ओषधि विशेष (जिसके लगाने से शरीरमें शुस्ता हुआ) बाण उद्धर नहीं सकता, अपने आप निकल आता है, वह ) लगाया तथा ( हाथमें ) मग्नप्रद रक्षिका व घन किया एव तत्रोक रातिसे भन-जन करके उसे अभिभृत कर दिया ।

उवाचापि प्रहृष्टेऽसा दुखगशयत्तिनी ।

बाङ्मात्रेण न भावेन याचा ससज्जमानया ॥ ९ ॥

**अन्वय** — सा, दु खवशवत्तिनो, अपि, प्रहृष्टा, इव, ससज्जमानया, वाचा, उवाच, ( तत्र ) वाढ़माश्रेण, न ( किन्तु ) भावेन ।

**सुधा**—सा=प्रसिद्धा, दु खवशवत्तिनी अपि=वियोगजनितदु खाकात्ताऽपि, प्रहृष्टा इव, पुत्रमुखोल्लासार्थं सन्तुष्टेव भावयन्तीत्यर्थं । ससज्जमानया=आत्मा-सक्षिप्तिकथा, स्वत्तात्मा वा, वाचा=वाण्या, उच्छवती ( तत्र ) वाढ़माश्रेण के वलवचनेन, नोवाच, ( किन्तु ) भावेन=अतिप्रेष्णा उच्छवतीत्यर्थं । यदा पूर्वं मनसाभिजगाप, सम्प्रति च मन्त्रानुसन्धानेन रामस्य हृत्प्रसादार्थम्, उवा चापि=मन्त्रानितिशेष, लपोत्तर स्पष्टमपि मन्त्रानुच्चारयामासेत्यर्थं । आत्मार्थं ससज्जमानया=खिन्नमानसयेत्यर्थो शेष ।

**इन्दुमती**—( चन्दनादि लेपनके पश्चात् ) वह रामकी माता महारानी की शल्या पुत्र-वियोगजाय दु खसे आकान्त होती हुई ( राम-बन-यात्राके समय अमागलिक तुदृष्ट्या जवरन अभुपातको रोकती हुई ) भी हर्षित होकर बोलने लगी, किन्तु बोल न सकी, पुत्र-स्नेह उमड़ आया और उनकी वाणी गद-गद हो गयी ।

**आनन्द्य मूर्धिन चाप्राय परिष्वज्य यशस्विनी ।**

**अवदत्पुत्रमिष्ठायौ गच्छु राम ! यथासुखम् ॥ ४० ॥**

**अन्वय** — यशस्विनी, पुत्रम्, आनन्द्य, मूर्धिन, आप्राय, च परिष्वज्य, हे राम !, इष्ठार्थं, ( त्व ) यथासुख, गच्छु, ( इति ) अवदत् ।

**सुधा**—यशस्विनी=कीर्तिमती ( कीशल्या ) पुत्र=रामम्, आनन्द्य=आनन्द्य, मूर्धिन=शिरसि, आप्राय=प्राण विषयाय, च=पुन, परिष्वज्य=आलिङ्गय, हे राम=हे घर्तु ! इष्ठार्थं=इष्ट-अभिलिप्ति, शर्थं-देवप्रयोजन यस्य स तथोक्त, ( त्व ) यथासुख=सुखमनतिकम्य, गच्छु=प्रज, ( इति ) अवदत्=अगदत् ।

**इन्दुमतो**—( अन्तमें राम-बनगमनके समय ) कीर्तिमती रामकी माता महारानी की शल्या पुत्रस्नेहसे विहृन हो गयी । उन्होने बनगमनोद्यत अपने स्नेही पुत्र श्रीरामचन्द्रभीको हृदयसे लगा लिया, और अतिथिनेहसे उनका मरणक सूत कर थीठपर हाथ फेरती हुई कहा—हे वत्स राम ! शब जहा तुम्हारी इच्छा हो वहा सुखसे चले जा ग्रो ( दण्डकारण्यमें नि शक होकर धूमो और अपना इच्छा साधन ( निशाचरवत ) करो ।

अरोग सर्वसिद्धार्थमयोध्या पुनरागतम् ।

पश्याम त्वां सुख वत्स । सचिन्त राजवर्तमंतु ॥ ४१ ॥

अन्वय — हे वत्स ।, अरोग, सर्वसिद्धार्थम्, श्रयोध्या, पुन, आगतम्, राजवर्तमंतु, सचित, त्वा, सुख, पश्यामि ।

सुधा—हे वत्स=पुन ।, अरोग=रोगरहित, सर्वसिद्धार्थ =लञ्चसकलमनोरथम्, श्रयोध्या=राजधानीं पुन=भूय, आगत=प्राप्त, राजवर्तमंतु=राजद्वारा तिषु, सचिनम्=आस्थावात् प्राप्तराज्यमित्यर्थ । त्वा=भवत्, सुख=सुखपूर्वक (यथासात्तथा क्रियाविशेषणमिदम्), पश्यामि =द्रव्याभोत्पर्थ ।

इन्दुमती—(माता कोशल्याने बनप्रस्थानके समय अपने स्नेही पुनरामने मुन कहा—हे वत्स । अब तुम जाओ और बनमें) आरोग्य शरीरसे दभी मनोरथ (पित्राशापालन करते हुए निशाचरोङ्ग वध) सिद्ध करके किर (१४ वर्षके बाद) श्रयोध्या लौट आओ । हे पुन । (बनसे लौटकर) जब तुम राजा होगे तब तुमको देखकर मैं बहुत ही सुख पाऊँगी ।

प्रणष्टु-खसकल्पा हर्षविद्योतितानना ।

द्रव्यामि त्वा वनात्प्राम पूर्णचन्द्रमिवोदितम् ॥

अन्वय — प्रणष्टु खसकल्पा, हर्षविद्योतितानना, (सती अह) वनात्, प्राप्त, त्वाम्, उदित पूर्णचन्द्रमिव, द्रव्यामि ।

सुधा—प्रणष्टु खसकल्पा=हु खस्य—क्लेशस्य, सकल—मानस कर्म बने रामस्य कि भविष्यतीति चिन्तारमकमित्यर्थ, प्रणष्ट—ज्ययगत हु खसकल्पो यस्या सा तथोऽका, हर्षविद्योतिताना=हर्षेण—रामागमनस्यानन्देन ‘विद्योतितम्—अतिदीप्तम्, आनन—सुख यस्या सा तथोऽका (सती अह) वनात्=अरण्यात्, प्राप्तम्=आगत, त्वा=भवतम्, उदितम्=उदयाचलस्थिति, पूर्णचन्द्र=सम्पूर्णेन्द्रामव, द्रव्यामि =अनलोकविष्यामि ।

इन्दुमती—(कौशल्याने कहा—हे वत्स ! ) पूर्णमासोके उदित पूर्णचन्द्रकी तरह बनसे लौटकर आये हुए तुम्हारा प्रसन्न बदनको देखकर मेरे मनका सी चिन्तायें दूर हो जायेंगी और उस समय हमसे मेरा मुख प्रसन्न हो जायगा ।

भद्रासनगत राम ! वनवासादिहागनम् ।

द्रव्यामि च पुनस्या हु तीर्णवगत पितुर्वच ॥

अन्वय—हे राम !, बनवासात्, पुन, इह, आगत, भद्रासनगत च, पितु, वच, तीर्णवन्त, तु, त्वा, द्रष्ट्यामि ।

सुधा—हे राम=हे वत्स !, बनवासात्=विपिननिवासात्, पुन=भूय, इह=अयोध्यायाम्, आगत=प्राप्त, भद्रासनगत=राज्यमिहासनस्थ, च=तथा, पितु=पाश, वच=वचन तीर्णवन्तम्=उत्तीर्ण पारगत, तु, त्वा=राम, द्रष्ट्यामि=अवलोक्यिष्यामि ।

इन्दुमतो—( कौशल्याने आने भावो मनोरथमिद्धकी चर्चा करती हुई पुन कहा— ) हे वत्स ! पिताकी आशापालन करके बनसे अयोध्या लौटनेके बाद भद्रासन ( राजसिंहासन ) पर बैठे हुए जब तुम्हे मैं देखूगी । ( तब मुझे बहुत ही आनन्द होगा ) ।

मङ्गलैरुपसम्पन्नो बनवासादिहागत ।

वधाश्च मम नित्य त्वं कामान् सवर्धं याहि भोः ॥ ४२ ॥

अन्वय.—मङ्गलै, उपसम्पन्न, त्वं, याहि भो, बनवासात्, इह आगत, ( सन् ) मम वधाश्च, कामान्, नित्य, सवर्ध ।

सुधा—मङ्गले=राजोचितवस्त्राभूषणै स्वस्त्रयनादिभिरु, त्वं, याहि=गच्छु, भो, = भो' इति निपात आमाश्रये वर्तते । बनवासात्=दण्डकारण्यनिवासात्, इह=अयोध्यायाम्, आगत=प्राप्त ( सन् ) मम=कौशल्याया, वधा=सीतायाश्च, कामान्=मनोरथान्, नित्य=प्रतिदिन, सवर्ध=वधयस्व, आषवादाऽप्नेपदलक्षणस्यानित्यत्वाद्वाप्र परस्मैपदमित्यवगन्त्वयम् ।

इन्दुमती—(पुनश्च माता कौशल्याने कहा—) हे वत्स राम ! अब तुम बन जाओ और बनसे लौटकर राजोचित वस्त्रालकरणोंको धारण करके (राजा बनकर) वधू ( सीता ) के छोर मेरे मनोरथको सदा पूर्ण करो ।

मयाचिता देवगणा, शिवादयो महर्षयो भूतगणा सुरोरगा ।

अभिप्रयातःय बन चिराय ते हितानि काढ़्भन्तु दिशश्च राघव ॥ ४३ ॥

अन्वय—हे राघव !, मया, श्रिंता, देवगणा, शिवादय, मर्ईय, भूतगणा, सुरोरगा, दिशश्च, चिराय, बनम्, अभिप्रयातस्य, ते, हितानि, काढ़्भन्तु ।

सुधा—हे राघव=राम !, मया=कौशल्यया, श्रिंता = पूजिता, देवगणा = मणदेवता, शिवादय = महेश्वरप्रभृतय, महर्षय = भरद्वाजादयः, भूतगणा = विद्यावरादयो देवयोनिविशेषा, सुरोरगा = सुरा—हन्द्रादय, उरगः

शेषप्रभृतय , सुराश्च उरगाश्चेति सुरोरगा , दिश = प्राच्यादय , चिराय = वहु काल , वन= इण्डकारण्यम् , अभिप्रयातस्य= गच्छुत , ते= तव रामस्य , हितानि = प्रियाणि , काहृत्नु= अभिलर्तु कुवर्त्स्वत्याशय , सबत्र पुत्रे मगरवशयात् पुनरुचिर्न दोपाय ।

इन्दुमती—( पुत्रवत्सला माता कौशल्याने पुन आशीर्वाद देती हुई कहा— ) हे पुत्र राघव ! मैंने जिन शक्तरादि देवताओंकी, वशिष्ठादि महर्षियों की, विद्याधरादि भूतगणोंकी, इद्रादि देवताओंकी और शेषनाग प्रभृति दिव्य सूर्योंकी पूजा की है वे सब तथा दण्डो दिक्गणल चिरकाल ( १४ वर्ष ) पर्यन्त बनयात्रा में तुम्हारा कल्याण करते रहे ।

अतीर चायुप्रतिपूर्णलोचना समाप्य च स्वस्त्ययन यथाविधि ।  
प्रदक्षिण चाऽपि चकार राघव पुन पुनश्चाऽपि निरीद्य सस्वजे ॥ ४४ ॥

अ-वय — अतीव, अ\_प्रतिपूर्ण नोचना, स्वस्त्ययन, यथाविधि, समाप्य, च राघव, प्रदक्षिण, चाऽपि, चकार, पुन पुनश्च, निरीद्य, सस्वजे, अपि ।

सुधा—अतीव-अत्यन्तम् , अभुप्रतिपूर्णलोचना = अभुष्णा—रोदनजन्य नेत्रजलेन प्रतिपूर्णे-परिपूर्णे-नोचने—नयने यस्या सा तयोक्ता कौशल्या, स्वस्त्ययनं = पुण्याद्वाचन, यथाविधि = गाल्कोक्तप्रश्नेष, समाप्य = समाप्य, च = तया, राघव-राम, प्रदक्षिण = चतुर्दिन्तुभ्रमणाऽपि, चकार = कृतवती, पुन पुनश्च = भूयोभूयरच, निरीद्य = अवनोक्त्य, सस्वजे = आलिलिङ्, अपि । यद्यपि पुनस्य मात्रा प्रदक्षिणमनुचितमिवाभावति तथापि मातृप्रदक्षिणकरणेन पुत्रस्येष्टविद्विर्भवतीति घमशाले प्रसिद्धम् ।

इन्दुमती—इस प्रकार राम वन गमनके समय आशीर्वाद देकर माता कौशल्याने यथाविधि स्वतिवाचन कर्म पूरा किया और नेत्रोंमें आमूर्त भरकर अपने पुत्र भी रामचन्द्रजीको प्रदक्षिणा की ओर बार बार ( अपनक दृष्टिसे ) उनके मुख को देखती हुई रामजीको पुन हृदयसे लगा लिया ( पुत्रस्नेहसे विहल हो गयो )। तथा हि देव्या च कृतप्रदक्षिणो निरोद्य मातृशरणे पुन पुन ।

जगाम स्रोतानिलय महायशा च राघव प्रज्ञलितस्तया धिया ॥ ४५ ॥

इत्यार्थे भीमदामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽशोध्याकारडे पञ्चविंश सर्ग ।

अन्वय — च, तया, देव्या, कृतप्रदक्षिण, हि, महायशा, च, राघव,

पुन तु , मातु , चरणौ , निरीड्य , तया , श्रिया , प्रज्वलित , सीतानिलय , जगाम ।

**सुधा**—च=तत , तया=कौशल्यया , देव्या=पद्मराज्या , कृतप्रदक्षिणा=विहि  
ततचतुर्दिग्भ्रमण , हि , महायशा =विपुलकीत्तिमान् , स , राघव =राम , पुन  
पुन =भूयो भूय , मातु =कौशल्याया , चरणौ=पादौ , निरीड्य=निरीडनपूर्वकम  
भिवायेत्यर्थ , तया =मातृसेवाननितया , श्रिया =शोभया , प्रज्वलित =प्रदीप ,  
( सन् ) सीतानिलय=सीतासमवन , जगाम =गतवान् ।

इति श्रीवाल्मीकीयरामायणोद्याकाण्डे “सुधा” टीकाया पद्मविशः , सर्ग ५

**इन्दुमती**—इस प्रकार जब माता कौशल्याने रामकी प्रदक्षिणा करके उन्हे  
हृदयसे लगालिया तब रामचन्द्रजीने पुन २ अपनी माताके चरणौ पर झुक्कर  
उन्हे साष्टाग प्रणाम किया । तदुपरान्त स्वत सिद्ध शोभासे दीतिमान् महाप्रतापी  
श्रीरामचन्द्रजी सीताजीके घर ( उन्हे भी सात्वना देनेके लिये ) चलादिये ।

इस प्रकार इन्दुमतीटीकामें अयोध्याकाण्डशा २५ वाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

पद्मविशः सर्गः ।

**पतिव्रता सीता**

अभिवाद्य तु कौशल्या राम सप्रस्थितो वनम् ।

कृतस्वस्त्ययनो मात्रा धर्मिष्ठे वर्तमनि स्थित ॥ १ ॥

**अन्वय**—धर्मिष्ठे, वर्तमनि, स्थित, मात्रा, कृतस्वस्त्ययन, तु, राम,  
कौशल्याम् , अभिवाद्य, वन, सप्रस्थित , ( आसीद ) ।

**सुधा**—एव मातर रामो यथाकथजिदनुमान्य , सीतामप्यनुमानयितु गत  
इति दशयितुमाह अभीति । धर्मिष्ठे=अतिशयेन धर्मवति, वर्तमनि=मार्गे, स्थित =  
वर्तमान , मात्रा=कौशल्यया , कृतस्वस्त्ययन =हृत—विहित, स्वस्त्ययन—उपद्रव  
शान्तिईत्युपुरुषाऽह यस्य स तथोक , कृतमङ्गलस्त्वत्यर्थ । राम , कौशल्या=  
स्वमातरम् , अभिवाद्य=प्रणाम्य, वन=दण्डकारण्य, सप्रस्थित =गन्तु प्रवृत्त ,  
आसीदिति शेष ।

**इन्दुमती**—अपनी माता महारानी कौशल्या द्वारा स्वस्तिवाचन होजाने  
पर सर्वथ्रेष्ठ (पिताजी आज्ञागलनरूप) धर्म-मार्गमें स्थित श्रीरामचन्द्रजी माताको  
प्रणाम करके बन जानेके लिये प्रस्तुत हुए ( बहकन धारण करनेके लिये अपने  
महलकी तरफ जहा उनकी प्राणेश्वरी सती सीताजी रहती थी, चले ) ।

विराजयन् राजसुतो राजमार्गं नरैर्वृतम् ।  
हृदयान्याममन्थेव जनस्य गुणवत्तया ॥ २ ॥

अन्वयः—राजसुन् , नरै वृत, राजमार्ग, विराजयन् , गुणवत्तया, जनस्य हृदयानि, आममन्थ इव ।

**सुधा**—मार्गवृत्तान्तं निरूपयन्नाह—विराजयान्तति । राजसुन् =राजपुत्र श्रीगम , नरै =स्मदशनाकास्तिज्ञते , वृत=युत, राजमार्ग=राजमन्यान, विराजयन्=प्रकाशयन् (सन्) गुणवत्तया=प्रियतादिगुणविशिष्टत्वेन, देतुना, जनस्य=अयोध्या-स्थसवलोकनम्, हृदयानि=चेतासि “चित्त तु चेतो हृदय स्तात् हृन्मानस मन ” इत्यमर । आममन्थ इव=आलोऽयामासेव ।

**इन्दुमतो**—( अचानक रामबन गमनका समाचार सुनकर श्र्योऽश्वावासी व्यथिन हो उठे और बेदना प्रकट करते हुए रामबनद्रजीका दर्शन करनेके लिये रान भवनकी सङ्केत दोनो तरफ खड़े हो गये । इसी बीच—महाराज कुमार श्रीरामचन्द्रजी, माता कौशल्याके भवनसे निकल कर ) दण्डनाधियोसे भरा हुआ मार्गको सुशोभित करते तथा अपने सद्गुणोके प्रभावसे श्र्योऽश्वावासियोके हृदयको मथन करते हुए ( अर्थात् राम राज्याभिषेकसे उत्कृष्ण उनके हृदयमर हठात् आवात् सहृद्द्वाते हुए) वल्ल धारण करनेके पूर्व प्राणेश्वरी सती सीताजी से मिलनेके लिये अपने महलकी ओर चले ।

वैदेही चापि तत्सर्वं न शुभ्राव तपस्विनो ।

तदेव हृदि तस्याश्च यौवराज्याभिषेचनम् ॥ ३ ॥

अन्वय —तपस्विनी, वैदेही, च अपि, तत्सर्वं, न, शुभ्राव, तस्या च हृदि, तदेव यौवराज्याभिषेचनम् , स्थितम् , आसीत् ।

**सुधा**—तपस्विनी = रामाऽभिषेकार्थधौत्रवासादिनियमविशिष्टा, वैदेही = जानकी चापि, तत्सर्वम्=अभिषेकविधातादिक, न=नहि, शुभ्राव=श्रुततती, तस्या-श्च = वैदेहाश्च, हृदि=मनसि, तदेव = पूर्वनिश्चितमेव, यौवराज्याऽभिषेचन = युवराजयन्द्रप्राप्तम् , ( स्थितमासीत् ) यद्वा—तपस्वीनी = सर्वविषयकनित्यज्ञानविशिष्टा, चापि वैदेही, तत्सर्व = रामबनवाप्रादिक, शुभ्राव = श्रुतवती, तदेव = तदनामनमेव, चक्षयेत्, तस्या हृदि स्थितमासीत् ( अत एव यौवराज्याऽभिषेचन नासीदिति इवन्यते ।

**इन्दुमतो**—( रामचन्द्रजी माता कौशल्याजीसे मिलकर घन जानेके लिये

प्रस्तुत होकर सीताजीसे मिलनेके लिये चले, परन्तु—) अभीतक यह ( कैकेयीके कुचक्षसे रङ्गमें भज्ञ, राज्याभिषेकके बदले चौदह वर्षका बनवास, होनेका ) सारा इत्तान्त, वह तपस्थिनी ( तपसे रामशो प्रात उठनेवाली ) महात्मा जनककी पुत्री रामकी प्राणेश्वरी सती सीताजी नहीं सुन पाई थीं। उनके मनमें उस समय श्रीरामचन्द्रजीके राज्याभिषेककी ही बात बनी थी ( इस लिये अभीतक वे उसी राममें मस्त थी ) ।

देवकार्यं स्म सा कृत्वा कृतज्ञा हृष्टचेतना ।

अभिज्ञा राजधर्माणा राजपुत्री प्रतीक्षति ॥ ४ ॥

अन्तर्य—कृतज्ञा, हृष्टचेतना, राजधर्माणा, अभिज्ञा, सा, राजपुत्री, देवकार्य, कृत्वा, प्रतीक्षति, स्म ।

सुधा—कृतज्ञा=देवादिप्रार्थनाजात्री, यद्धा—अभिषिक्षस्वामिविषये गच्छ पुष्टादिना पृष्ठमहिषीभि कृतपादाऽभिवादादिवृत्तान्तरा । हृष्टचेतना=प्रकुल्ल स्वान्तरा, राजधर्माणाम्=अभिषिक्षराजाऽकाषारणलक्षणस्वेतच्छ्रुत्रबामपुरकृत भद्रासनादीनाम्, अभिज्ञा=तद्वेत्ती सा=प्रसिद्धा, राजपुत्री=जनकसुता, देवकार्यम्=देवार्चनम्, कृत्वा=सम्पाद्य, प्रतीक्षति स्म=तदासने स्वामिना सह कदा स्थास्यामीनि वाल यान्यतिस्तेत्यर्थ । प्रतीक्षतीत्प्रार्थत्वादेव परस्मैरदपाठ ।

इन्दुमती—( जब बनगमनके लिये प्रस्तुत होकर सीताजीसे मिलनेके लिये उनके पासतक रामचन्द्रजी पहुँच रहे थे तब, उस समय ) राज्याभिषेक समयके माझलिक विधिकी जाननेवाली तथा शशिप्रभ छुत्र, चामर, लिहाजनादि राजचिह्नोंको जानने वाली राजा जनककी पुत्री श्री सीताजी देवी—देवताओंकी पूजाकरके प्रसन्न मनसे राज-पुत्र ( सुवराज ) श्रीरामचन्द्रजीकी अभ्यर्थना करनेके लिये प्रतीक्षा कर रही थीं ।

प्रतिवेशाऽथ रामस्तु स्ववेशम सुविभूषितम् ।

प्रहृष्टजनसमूणे हिया किञ्चिद्वाऽमुख ॥ ५ ॥

अन्तर्य—अथ, हिया, किञ्चिच्चद्, अवाऽमुख, ( इव ) राम, तु, प्रहृष्टजन समूणे, सुविभूषित, स्ववेशम, प्रविवेश ।

सुधा—अथ=यथाक्रम किञ्चिद्राजमार्गातिक्रमणानन्तरम्, हिया=स्वमाता पितृकृतमिदमन्याद्य कथ कथयिष्यामीति इसो लक्षण्या । यद्धा—मद्दनगमने नून घोराऽपि गमिष्यति परन्तु पित्राज्ञानमन्तरा कथमिमा सह नेष्यामीति ऐनो

लब्धया, किञ्चित्=ईपत्, अशास्त्रमुख =न वाक् वचन, मुचे—वदने, यस्य स तादृश ( इव ) । रामस्तु, प्रहृष्टजनसपूर्णं =प्रहृष्टे—गमाऽभिषेचनेन प्रसुदितैः, जनै नगरस्थै, सपूर्णं-व्याप्त, सुविभूषितम्=चित्रादिभि शोभित स्ववेशम्=स्वगृह-प्रविवेश =प्रविष्टवान् ।

इन्दुमती—( सीताजी प्रश्नीक्षा कर ही रही थीं कि ) इतने ही में श्रीराम चन्द्रजी राज्याभिषेको सब पर सुन्दर र प्रतिमाओंसे चित्रित होकर सुन्नित अत्यन्त मनोहर अपने भवनमें, जहा सीताजी थी, लज्जासे किञ्चित् मुख नीचे किये हुए ( चुप-चाप ) प्रवेश कर गये ( लज्जा इम बातकी थी कि माता कैकेयीके कुचकसे मैं बन जारहा हूँ, यह सीतासे कैसे कहूँ ? ) ।

अथ सीता समुत्पत्य वेपमाना च त पतिम् ।

अपश्यद्व्योक्तसन्तप्त चित्ता-याकुलितेन्द्रियम् ॥ ६ ॥

अन्वय —अथ, वेपमाना, सीता, समुत्पत्य, विनाव्याकुलितेन्द्रिय, शोक सन्तप्त, च, त, पतिम्, अपश्यत् ।

सुधा—अथ=रामस्य स्वगृहप्रवेशानन्तर, वेपमाना=पूर्वमिति रामकर्तुक वचनोद्घारणामावेन कम्पमाना । यद्वा-स्वामिन विगतहृषत्वावाहूमूलत्वायव-लोकनारक्षममाना, सीता=जनकनदीनी, समुत्पत्य=स्वासनादुरथाय, चिन्ता व्याकुलितेन्द्रिय =चिन्तया—इमा सह कथ नयामीति विचारेण । यद्वा-मावि दुःखस्मरणरूपचित्तया, व्याकुलितानि—व्यथितानि, इन्द्रियाणि—चक्रुतादीनि यस्य त तथोक, शोकसंतप्त=शोकेन-उक्तविचारहेतुकशुना, सन्तप्त—क्षिन त=गृहस्थित, पति=भर्तारम्, अपश्यत्=अवज्ञोक्तवनी ।

इन्दुमती—महलमें प्रवेश करनेके बाद रामच द्रजीको शोक और चिन्तादे व्याकुल देखकर सीताजी सदम गयी और कागती हुई आसनसे उठ खड़ी हो गयी ।

ता दद्वा स द्वि धर्मात्मा न शशाक मनोगतम् ।

तं शोक राघव सोदु ततो विद्वृतता गत ॥ ७ ॥

अन्वय —हि, धर्मात्मा, स, राघव, ता, दद्वा, मनोगत, त, शोक सोदु, न, शशाक, तत, विद्वृतता, गत ।

सुधा—हि=यत्, धर्मात्मा=धार्मिक, स, राघव =राम, ता =सीता, दद्वा =निरोद्ध, मनोगत=चेतसि विद्यमान, त =सीतानयनयुक्त्यभाव मूजकस मावितसीतावियोगजनित, शोकम् =आतस्ताप, सोदु =सहनकर्तु, न शशाक=न

समर्थो वभूव, तत् = सोदुमशकादेव हेतो, विवृतता=विवर्णता, गत = प्राप्त ।

इन्दुमती—घर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजी अपनी प्राणेश्वरी सीताको देखकर अपने मानसिक ( प्रिया-वियोग जनित ) शोकोद्देशको नहीं रोक सके उनका चेहरा उत्तर गया ।

विवर्णवदन दृष्टा त प्रस्त्विन्नमर्षणम् ।

आह दुखाभिसन्तता किमिदानीमिद प्रभो ! ॥ ८ ॥

अन्वय—प्रस्त्विन्नम्, अमर्षणम्, विवर्णवदन, त, दृष्टा, दुखाभिसन्तता, ( सीता ) आह, प्रभो !, इदानीम्, इद, किम् ?

सुधा—रामाभिप्रायविज्ञानजनक सीताप्रसन वर्णयति—विवर्णेति । प्रस्त्विन्न = करतलगतराज्यस्यायामित्व स्वकीयवनगमनप्रयासव्व कथमेना कथयिष्यामीति शोकजस्वेदम्, अमर्षण = तद्ध्रोकधारणस्य निय तुमक्षम, त = राम, दृष्टा = अवलोक्य, दुखाभिसन्तता = चेष्टालक्षितदुखजनितदुखेनाभिसन्तता ( सीता ) आह = उवाच, हे प्रभो = हे स्वामिन् ! इदानी = हर्षकाले, इद = वैवरण्यादिक दी स्थ्य, किं = कथम् ?

इन्दुमती—सीताजीने अत्यन्त शोकाकुञ्ज तथा परीनासे तर रामचन्द्रजीका उत्तरा हुआ फीका चेहराको देख अत्यन्त दुखस तत् होकर पूछा—हे प्रभो स्वामिन् ! यह क्या हुआ ? ( इस तरह स्ववत्सरपर आप क्यों घबङ्गाये, हुए हें ? )

अद्य वाहस्पत श्रीमान् युक्त पुष्येण राघव !

प्रोच्यते ब्राह्मणे प्राह्वै केन त्वमसि दुर्मना ॥ ९ ॥

अन्वय—हे राघव !, अद्य, श्रीमान्, वाहस्पत, पुष्येण ( युक्त ) ( इति ) प्राज्ञे ब्राह्मणे प्रोच्यते, ( तत् ) केन, त्व, दुर्मना, अति ।

सुधा—हे राघव = हे राम !, अद्य = इदानी, श्रीमान् = कर्मारम्भकर्तृणा सकलसमृद्धिप्रापक, वाहस्पत = वृहस्पतिदैवत अस्ति, पुष्येण = पुष्यनक्षत्रेण, युक्त = अभिषेकयोग्य, ( इति ) प्राज्ञे = तुदिमन्त्रि, ब्राह्मणे = विप्रै प्रोच्यते = कृच्यते, सर्वथा हर्षकालोऽयमित्याशय ( तत् ) केन = हेतुना, त्व, दुर्मना = हर्ष दिव्यायोदासीनचित्त, असि = भवसि ।

इन्दुमती—( सीताजीने कहा—) हे आर्यपुत्र राघव ! विद्वान् ब्राह्मणलोग ( गुरु वशिष्ठ ज्ञादि ) आजका दिन राज्याभिषेकके लिये बहुत अच्छा बता रहे हैं । क्योंकि आज लग्नमें सर्व समतिदायक श्रीमान् वृहस्पतिजी बैठे हैं तथा सर्व

सिद्धिकर पुण्य नक्षत्रका योग है किर आप ऐसे चिनित क्यों हैं प्रभो ? ।

न ते शतशलाकेन जलफेननिमेन च ।

आवृत्त घदन वल्गु छुत्रेणाऽभिविराजते ॥ १० ॥

अन्वय — शतशलाकेन, च, जलफेननिमेन, छुत्रेण, आवृत्त, वल्गु, ते, घदन, न, अभिविराजते ।

सुधा—शतशलाकेन=शतसूख्याका शलाका यहिमन् (छुत्रे) तेन तथोऽजेन, च=तथा, जलफेननिमेन=जले-सलिते य फेन द्विरुद्धीर 'हिएहीरोऽबिवक्त फेन' इत्यमर । तन्निमेन तत्सहस्रेन ( साहश्य च श्वेतत्वेनेत्यवधेयम् ) छुत्रेण=आतपत्रेण "छुत्र त्वातपत्रम्" इत्यमर । आवृत्तम्=आच्छादित, वल्गु=सु-दर, ते=तव, घदन=मुख, न अभिविराजते=नाभिशोभते अत्र कि वारण मिति वदेति भाव ।

इन्दुमती—(शशिप्रभव छुत्र और उभय पार्श्ववर्ती चामर ये तीन मूरथ राज-चिन्ह हैं । अत यथाक्रमसे पहले छुत्रके बारेमें ही सीताजीने पूछा—हे आर्यपुत्र ।) सौ कमानियोंका बना हुआ तथा जल-फनके समान श्वेत राज-छुत्र से आच्छादित आपका सुन्दर मुख विराजमान क्यों नहीं है ( आज आपके मस्तकपर तना हुआ राज-छुत्र नहीं देखती, इसका क्या कारण है ? ) ।

व्यजनाम्या च मुख्याम्या शतपत्रनिमेश्वरणम् ।

चन्द्रहसप्रकाशाम्या वीजयते न तवाननम् ॥ ११ ॥

अन्वय — चन्द्रहसप्रकाशाम्या, मुख्याम्या, च, व्यजनाम्या, शतपत्रनिमेश्वरण, तव, आनन, न, वीजयते ।

सुधा—चन्द्रहसप्रकाशाम्या=चन्द्र-रुदी, हस-मानसीका, तयो प्रका-शादिव प्रकाशो ययोहनाम्या तथोकाम्याम्, अतिवशनाम्यामित्यर्थ । मुख्याम्या=प्रधानाम्या चक्रत्तिमात्रवृत्तिम्यामित्यर्थ । व्यजनाम्या=चामराम्याम्, शतपत्रनिमेश्वरण=शतपत्र कमल, ('शतपत्र कमलमि'त्यमर) तद्रिभे-तरुदर्शो, ईशणे-नयने पस्य तद् तथोऽप्यम् । तप = भवत, आनन=मुख, न=नहि, वीजयते=पवनयुक्त विषयते, अत्राऽपि हेतु वदेत्याशय ।

इन्दुमती—(छुत्रे पश्चात् चामरके बारेमें सीताजीने पूछा—हे नाथ !) क्या कारण है कि आज कमलके सहश सु-दर २ नैनोंसे युक्त आपका सुन्दर मुखके उभय पार्श्वमें चन्द्रमा और हसके समान शुभ्र चामर नहीं ढोल रहे हैं ।

त्तिदेतु , कृष्णमेष्विरिप्रभ =कृष्ण -श्यामवर्णो यो नेष्व-घनः, तद्वचो यो  
गिरि =पर्वत , तस्य प्रमेव प्रभा-सादृश्य, यस्य स तयोऽक । केचिच्च-इष्ट  
मेष्वप्रम गिरिप्रभश्चेत्युभयसादृश्यमाहुस्तत्र, उभयोहृष्मानत्वे वैष्म्यापत्ते । एव  
गुणविशिष्टो हस्ती च =गजोऽपि, अप्रत =समुखात् , प्रयापे=गमने, ( तव )  
न लक्ष्यते=न दृश्यते तत्कस्य हेतोरिति भाव ।

**इन्दुमतो—**( सीताजीने पुन जलूसके बारेमें कहा— ) हे बीर ! प्रथम  
गज-चिन्होंसे युक्त वाले वादलके समान रङ्गवाला तथा पर्वतके समान विद्युत  
द्वायी आपके प्रयाण ( उत्तर-जलूस ) के आगे क्यों नहीं चलता ।

न च काञ्छनचित्र ते पश्यामि प्रियदर्शन ! ।

भद्रासन पुरस्कृत्य यातं बीर ! पुरस्सरम् ॥ १७ ॥

**अन्यय —**हे प्रियदर्शन ! बीर ! काञ्छनचित्र, ते, भद्रासन, पुरस्कृत्य, पुर-  
स्तर, यात, न च, पश्यामि ।

**सुधा—**हे प्रियदर्शन=प्रिय-मधुर, दर्शनम्-अवलोकन, यस्य, तत्समुद्दौ ।  
हे बीर ! काञ्छनचित्र=स्वर्णमयचित्रविशिष्ट, ते=तव, भद्रासन=मङ्गलहेतुभूमा  
सनविशेष, पुरस्कृत्य=हस्ताप्रे धृत्वा, पुरस्तर=अप्रग, यात=गच्छन्त, न च  
पश्यामि = नचावलोकयामि, तत्रापि को हेतुरित्याशय ।

**इन्दुमती—**( सीताजीने पूछा— ) हे प्रियदर्शन बीर ! सोनेका बना हुआ  
सुन्दर प्रशसित मद्रासन लेकर आगे २ चलने वाले भृत्योंको मैं ( आज क्यों )  
नहीं देख रही हू ।

अभिषेको यदा सज्ज किमिदानीमिद तव ।

अपूर्वो मुखवर्णश्च न प्रहृष्टश्च लक्ष्यते ॥ १८ ॥

**अन्यय —**यदा, तव, अभिषेक, सज्ज, इदानीम्, मुखवर्ण, च, अपूर्व,  
( दृश्यते ) प्रहृष्ट, च, न, लक्ष्यते, इद, किम् ?

**सुधा—**यदा=यस्मिन् काले, तव=मवत् , अभिषेक =ह्नान सज्ज =सयोजित  
इदानी=तस्मिन्द्वैतस्मिन् वत्तमानकाले, मुखवर्णश्च=वदनरागश्च, अपूर्व =कदा  
प्यननुभूत , ( दृश्यते ) प्रहृष्ट =युवराजपदप्राप्तिनन्यानन्दश्च, न लक्ष्यते =न  
दृश्यते, इद =यथावत्प्रसन्नाप्राप्य, कि=किमित्यर्थ । इत्यपि त्वरितमेव  
कारण बदेति भाव ।

**इन्दुमतो—**( अत्तमें सीताजीने कहा-हे आर्यपुत्र ! ) जय कि रात्मा

भिषेककी सभी तैयारिया हो चुकी हैं तब ( आपको प्रश्न रहना चाहिये किंतु ) आपके चेहरेका रङ्ग ऐसा अभूतपूर्व फौका क्यों दिखाई पड़ता है । युवराजपद-प्राप्ति जन्य आनन्दकी रैखनक दिखताहै नहीं पहनेका क्या कारण है ।

इतोव त्रिलयन्तीं ता प्रोवाच रघुनन्दन ।

सीते ! तत्रभवास्तात् प्रवाजयति मा वनम् ॥ १९ ॥

आशय — इनीव विनयन्ती, ता, रघुनन्दन, प्रोवाच, हे सीते ! तत्रभवान् तात्, मा, वन प्रवाजयति,

सुधा—सीतावच उसहरन् प्रश्नोत्तर दिवापयितु रामक्रिया वर्णयति इतो वेति । इतीव=अनेन प्रकारेण, विनयन्ती=दुखेन भाषमाणा, विविध पृच्छन्ती वा, ता = सीता, रघुनन्दन = श्रोराम, प्रोवाच = प्रोक्तवान् । तद्वनमेव प्रतिपादयति—हैसीते = जनकनदिनि । तत्रभवान् = पूज्य, “तत्रभवानत्रभवानिति शब्दो वृद्धे प्रयुज्यते पूज्ये” इति हलायुध । नात = पिता, मा = राम, वन = दरहड़काराय, प्रवाजयति=गन्तु प्रेरयति ।

इन्दुमतो—इसप्रकार सीताजीके दुख भरे वचनोंको सुनकर रामचन्द्रजीने कहा-हे सीते । पूज्य पिताजी ( तो ) मुझे वन मेज रहे हैं ।

कुले महति सम्भूते ! धर्मज्ञे ! धर्मचारिणि । ।

श्रणु जानकि ! येनेद क्रमेणाऽद्यागत मम ॥ २० ॥

आशय — हे महति कुले धर्मज्ञे ! हे धर्मज्ञ ! हे धर्मचारिणि ! हे जानकि ! येन, क्रमेण, इदम्, अथ, मम, आगत ( तत् ) श्रणु ।

सुधा—उक्तक्रियाऽर्थानेन प्रियाया अत्यन्तमोहो मा भूदिति भयाद् चिच्छाव्याधे विविधगुणकीर्तनेन सम्बोवयति-कुल इत्यादि । महति=प्रशस्ते, कुले=वरो सम्भूते=समुत्तने हे प्रशस्तकृत्यज्ञने । इत्यर्थ । धर्मज्ञे=धर्मे जानति या सा धर्मज्ञी तत्सम्बुद्धो । धर्मचारिणि=धर्मे चरति-अनुतिष्ठति, या सा धर्म चारिणी तत्सम्बुद्धो । हे जानकि = जनकसुने । येन क्रमेण = हेदुना, इदं = प्रवाननम्, अथ=अस्मिन्नहनि, मम=रामस्य, आगत=प्राप्तम्, उपस्थितमित्यर्थ । ( तत् ) श्रणु = आकर्षय ।

इन्दुमतो—( रामचन्द्रजी ने कहा- ) हे प्रशस्त ( राजषि ) कुलमें उत्तम धर्म जाननेवाली तथा धर्मचरण वरनेवाली जनकनदिनि । जिस कारणसे मुझे वनवासकी आशा मिली है, उसे सुनो—।

राजा सत्यप्रतिशेन पित्रा दशरथेन थे ।

कैकेयी मम मात्रे तु पुरा दत्तो महावरौ ॥ २१ ॥

अन्वय — सत्यप्रतिशेन, राजा, दशरथेन, मम, पित्रा, पुरा, कैकेयी, मात्रे, तु, वे, महावरौ दत्तो ।

सुधा— सत्यप्रतिशेन = सत्यप्रतिथुतेन, राजा = नरपतिना, दशरथेन=तना मप्रसिद्धेन, मम पित्रा=मज्जनकेन, पुरा=देवासुरखड्प्रामकाले, कैकेयी=एतज्ञाम्नै कनीयस्यै, मात्रे=जन्मयै, तु, वे = निश्चयेन, (१) महावरौ=वरद्वयमित्यर्थ, दत्तो=अपिंती, अत वरे महत्व त्वनिकार्यत्वमेवेति बोध्यम् ।

इन्दुमती— ( रामचन्द्रजीने कहा-हे सीते ! मेरे बनवासका कारण सुनो—) सत्यप्रतिश भे मेरे पिता महाराज दशरथने मेरी माता कैकेयीको पहले दो वर दिये थे ।

तयाऽय मम सज्जेऽस्मिन्नभिषेके नृपोद्यते ।

प्रचोदितः स समयो धर्मेण प्रतिनिजितः ॥ २२ ॥

अन्वय — नृपोद्यते, मम, अस्मिन्, अभिषेके, सज्जे, (सति) तया, अत, स, समय, प्रचोदित ( तेन राजा ) धर्मेण, प्रतिनिजित ।

सुधा— नृपोद्यते=नृपेण राजा दशरथेन, उद्यते प्रस्ताविते, मम=रामस्य, अस्मिन्=प्रस्तुते, अभिषेके=यौवराज्याभिषेकने, सज्जे=प्रसरके ( सति ) तया=लब्धवरया कैकेय्या, अत=इदानीं, स, समय = “त्वद्याचित दास्यामी” ति कृतयपय इत्यर्थ “समय शपथाचारकालसिद्धान्तसविद्” इत्यमर, । प्रचोदित = “पूर्वदत्त वरद्वय देही” ति प्रकर्षेण प्रेरित “आसीत्” ( तेन राजा ) धर्मेण= धर्ममार्गेण, प्रतिनिजित = स्वायत्तीकृत ।

इन्दुमती—(रामचन्द्रजीने कहा-हे सीते !) आज महाराजको मेरा राज्या भिषेक करनेमें उद्यत देख, कैकेयीने समय पाकर धर्मसे ( शपथद्वारा अथवा नट खटवाजीसे ) महाराजको वशमें कर लिया और बचन बद ( जो मागोगी दूगा )

( १ ) अत परम्परया चेद श्रूयते—पुरा किन देवातुरमङ्गामे देवपञ्चनाधित्य ‘राजा दशरथो शुभ्यमान आसीद् । तत्राऽप्नुरा देवाङ्गेतु दशरथस्योपरि स्वमादा वित्तेनु । तथाविर्य तमवलोक्य कैकेयी स्वयमेव दानवै सह शुद्ध्या तामार्यां विनाशय स्वपति रक्षितवनी । तउ प्रसन्नो दशरथस्तस्यै वरद्वय दत्तवान् । तत्र वैकेयी प्राह—नाथ ! सम्प्रति वरद्वयेन प्राथनीर्यं न किञ्चिदपि, अतो न्यासभूतमेव तिष्ठतु, स भाव दृष्ट्यास्तिवति ।

महाराजको अग्नी यानीका दोनों वरदान ( भरतको राज्याभिषेक और मुक्त ( राम ) को चौदह वर्षों का उनवास ) देनेको वहा ।

चतुर्दशि हि वर्षाणि वस्तव्यं दण्डके मया ।

पित्रा मे भरतश्चाऽपि यौवराज्ये नियोजित ॥

सोऽह स्वामागतो दण्डु प्रस्थितो पिजन वनम् ॥ २३ ॥

**अन्वय** —मया हि, चतुर्दशि वर्षाणि, दण्डके, वस्तव्यम्, (इति) मे, पित्रा, नियोजित, भरत, च, अग्नि, यौवराज्ये, नियोजित । (मया चार्षिति स नियोजित) पिजन, वन, प्रस्थित, स, अह, त्वा, दण्डुम्, आगत, (आस्मि) ।

**सुधा**—मया-रामेन, हि, चतुर्दशि वर्षाणि=चतुर्धिकदशाहयनानि, दण्ड =दण्डकाररथे, वस्तव्य =नियोजितव्यम् ( इति ) मे =मह्य, पित्रा =जनवेन, नियोजित =नियुक्तीङ्गत, भरत =कैर्णयोमुतश्चाऽपि, यौवराज्ये=युवराजनदे नियोजित चपतिश्चापित ( मया चार्षिति स नियोजित च्येष्टाहा विना तस्य तत्प्राप्त्यसम्भवादिति भाव ) । पिजन =जनरहित, विशिष्टजनसहित वा, वन=महारथ्य प्रस्थित, स =पित्राहस, अह=राम, त्वा=भवती, दण्डुम्=अवलोक्यितु तत्त्वतस्तु-उपदेश्चुमित्यर्थ । आगत =प्राप्त, अस्मीनि शेष ।

**इन्दुमती**—( रामचन्द्रजीने वहा-हे सीते ! कैरेयोक्ता इस तरहके वरदान मागने पर— ) सत्यप्रतिशं पिताजीने ( उन दोनों बरोंके अनुष्ठार ) मुक्तको चौदह वर्ष तक दण्डकारण्यमें रहना चाहिये ऐसी योजनाकी है और भरतको युवराज पदपर नियोजित किया है । इसनिये हे सीते । पिताकी आशा पाकर मैं निर्जन वनमें जानेके लिये प्रस्तुत होकर तुम्हे देखनेके लिये ( तथा उपदेश देनेके लिये ) यहा आया हूँ ।

भरतस्य समीपे तु नाऽह कर्य कदाचन ॥ २४ ॥

**अन्वय** —तु, भरतस्य, समीपे, कदाचन, अह, न, कर्य ।

**सुधा**—अथ सीताया एहेऽवस्थितौ भरतादिना सुखप्राप्त्यर्थं तज्जनकञ्जुदि-रूपदिश्यते-भरतस्येति । यद्वा-सीताहृदयमागत्वा बुद्ध्युपदेशद्वारा प्रणयकोमुखादर्थानि—भरतस्येति । तु=किंतु ( हे सीते । यदा तत्प्रणामविदानाय सविधे-भरत आगमिष्यति तदा भरतस्य=कैरेयोमुतस्य ममानुजस्य, समीपे=सत्रिधी, कदाचन=कर्यमरि, ( त्वया ) अह, न कर्य =न शाश्वतीय, अथवा प्राप्तैश्वर्य-

त्वाद्रुचित परगुणकीचन न सहिष्यत इत्यतो मद्गुणकीचन न विशेषमित्याशय ।

इन्दुमती—(रामचन्द्रजाने कहा—हे प्रिये ! देखना) कभी भी अब राजा भरतके सामने मेरी प्रशंसा मत करना (क्यों कि—) ।

ऋद्धियुक्ता हि पुरुषा न सहन्ते परस्तवम् ।

तस्मात् ते गुणा कथ्या भरतस्याऽग्रतो भम ॥ २५ ॥

अन्वय—हि, ऋद्धियुक्ता, पुरुषा, परस्तव, न सहन्ते, तस्मात्, ते, भम, गुणा, भरतस्य, अप्रत, न कथ्या ।

सुधा—मद्गुणकीर्तन सत्सविषे कय न कर्त्तव्यमित्यत्र हेतुमाह—ऋद्धि युक्ता इति । हि=यत, ऋद्धियुक्ता = प्रासैश्वर्या, पुरुषा = नरा, परस्तव = स्वातिरिक्त जनस्तुति, न सहन्ते = सोङ्ग समर्था न भवन्ति, एव महता स्वभाव एव येन प्रतिपक्षिण उत्कर्थं न सहन्त इत्याशय । तस्मात् = हेतो, ते=प्रसिद्धा, भम, गुणा = प्रियवदत्वादय, भरतस्य = कैवल्योनुतस्य, अप्रत = समुखे, न कथ्या = न श्लाघनीया, न वर्णनीया इत्यर्थ ।

इन्दुमती—(हे प्रिये !) ऐश्वर्यवान् पुरुष दूसरोंकी स्तुति-प्रशंसा (अधिक बढ़ाई) सहन नहीं करते (क्यों ?—“प्रकृति खलु सा महीयस सहते नायस मुानति यथा”) इसलिये हे प्रिये ! अब तुम राजा भरतके सामने मेरा गुणानुवाद मत करना (अर्थात् भरतको अब देवर समझकर छोटा मत मानना प्रत्युत चक्रवर्ती राजा समझकर तद्योग्य उसका सत्कार करना) ।

तापि त्वं तेन भर्त्तव्या विशेषेण कदाचन ।

अनुकूलतया शक्य समीपे तस्य वर्चितुम् ॥ २६ ॥

अन्वय—तेन, त्वं, कदाचन, अपि, विशेषेण, न भर्त्तव्या, (तथा) तस्य, समीपे, अनुकूलतया, वर्तितु, शक्यम् ।

सुधा—तेन = पूर्योक्तेन हेतुना, त्वं = भवती, कदाचन = कस्मिन्नपि समये, विशेषेण = सर्वविशिष्टत्वेन रूपेण, न भर्त्तव्या = न भरणीया, व-धुसाधारण्येन भरणीया इत्यर्थ । अशनादिभरण लक्ष्मणशत्रुघ्नपत्नीम्या विशेषेण नाभिलय शीयमिति भाव । (तथा) तस्य = भरतस्य, समीपे = निकटे, अनुकूलतया = अप्रतिकूलतया, वर्चितु = स्पातु, शक्य = योग्य त्वयेति शेष ।

इन्दुमती—(रामचन्द्रजीने कहा—हे सीते !) अगर तुम मेरे कहने मुताविक

नहीं रहोगी तो भरत विशेष रूपसे (वही भाभी या राज वहू खमभकर) तेरा भरण-  
पोषण नहीं करेगा । तस्मात् हे सीते । भरतके सामने तुमको अनुकूल होकर ही  
रहना चाहिये (१) ( भरतके सामने प्रतिकूल वचन (मेरी प्रशंसा) मत बोजना ) ।

तस्मै दत्त नृपतिना यौवराज्य सनातनम् ।

स प्रसाद्यस्तवया सीते ! नृपतिष्ठ विशेषत ॥ २७ ॥

अन्वय — नृपतिना तस्मै, सनातन, यौवराज्य, दत्तम्, च ( तस्मात् )  
हे सीते । स, नृपति, विशेषत, त्वया, प्रसाद् ।

सुधा—तदनुकूलाचरणे हेतुमुपपादयन्नाह—तस्मै इति । नृपतिना = राजा  
दशरथेन, तस्मै = भरताय, सनातन = पितृपारपर्यक्षमादागत, यौवराज्य =  
युवराजपद, दत्तम् = तत्पदेऽभिपिक्तमित्यथ, च = तस्मात्, हे सीते = जनका  
त्मजे ।, नृपति = राजा, स = भरत, विशेषत = विशेषण, त्वया = भवत्या,  
प्रसाद् = सत्करणीय ।

इन्दुमतो—( रामचन्द्रजीने कहा—हे सीते । अब इस राज्यकी महा-  
रानी बननेकी हैसियत तुमसे नहीं रही क्यों कि—) महाराजने खुकूलके  
परपरागत रूपसे भरतको युवराजपद दिया है ( कैकेयीके कहनेसे आवेशमें  
आकर गुडिया चरकार रही बनाया है ) अत हे सीते । अब तुम्हारे लिये वह  
राजा भरत विशेष खुश करने थोग्य है ( उसके सामने मेरी प्रशंसा तम करना ) ।

अह चापि प्रतिशा ता गुरो समनुपालयन् ।

बनमद्यैव यास्यामि स्थिरा भव मनस्त्वनि ॥ २८ ॥

अन्वय — अहम्, अपि, गुरो, ता प्रतिशा, च, समनुपालयन्, अद्य,  
एव, बन, यास्यामि ( अत ) हे मनस्त्वनि । ( त्व ) स्थिरा भव ।

सुधा—अहमि, गुरो = पितृदशरपत्य, ता = पूर्वप्रतिश्रुता, प्रतिशा कैकेयी  
प्रनि “तुम्य वरद्रव्य दास्यामि” इत्यात्मिका, समनुपालयन् = सम्यक्या पालन  
कुर्वन्, अद्यैव = अस्मिन्द्वन्द्वैव, बन = दण्डकारण्य, यास्यामि = गणिष्यामि  
( अत ) हे मनस्त्वनि = दृढमनस्त्वनि । ( त्व ) स्थिरा भव = मद्दिशोगहेतुशन  
वस्तिपति न प्राप्नुहीत्यर्थ ।

(१) जोट — पाठक यह न समझें कि रामचन्द्रजी इन वक्तियोंसे भ्रातृ—न्नेदमें । भविष्यास  
प्रकट कर रहे हैं । यह राजनीति है । अबवा रामचन्द्रजी अपनी उद्दय-पूर्ति के लिये  
सीताजीको बनाए साप लेजानेका स्वांग रख रहे हैं ।

इन्दुमती—(रामचन्द्रजीने कहा—हे सीते ! भरत राजा करार दिया गया और ) मैं भी पिताकी आहा-पालन करनेवे जिये आज ही वन जारहा हूँ। अत हे मनस्विनि सीते ! तुम स्थिरचित्त होस्त रहो ( घबड़ाओ मत ) ।

याते च मयि कल्याणि ! वन मुनिनिषेवितम् ।

प्रतोपवासपरया भवितव्य त्वयाऽनधे ! ॥ २६ ॥

अन्वयः—हे कल्याणि ! मुनिनिषेवित, वन, मयि, याते च, (वति) हे अनधे ! प्रतोपवासपरया, त्वया, भवितव्यम् ।

सुधा—हे कल्याणि = मङ्गलस्वरूपे !, मुनिनिषेवित = तमस्त्वनसेवित, वन = दण्डकारण्य, मयि = रामे, याते च = गते च, (वति) हे अनधे = निष्पापे !, व्रतम् = एकादश्यादि, उपवास “उपाहृतस्य दोषेभ्यो यस्तु वासो शुणै सह। उपवास स विशेष सर्वभोगविवर्जित ॥” इत्युक्तनक्षण, तथा च प्रतोपवास परया = प्रतोपवासत्तरया, त्वया = भवत्या, भवितव्यम् = भाव्यम् ।

इन्दुमती—(रामचन्द्रजीने पुन कहा—) हे अनधे ( पापरहिते ) कल्याणि साते ! मुनिवेपवारण कर मेरे वन चले जानेके बाद तुम्हे प्रतोपवास करना चाहिये ( अर्थात् विलासताको त्याग देना चाहिये क्योंकि—“हास्य परण्हे पान त्यजेत् प्रोपित मर्तुंका ) ।

कल्यमुत्थाय देवाना कृत्या पूजा यथाविधि ।

वन्दितन्यो दशरथ पिता मम जनेश्वर ॥ ३० ॥

अन्वयः—हे साते ! कल्यम्, उत्थाय, यथाविधि, देवाना, पूजा, कृत्या, जनेश्वर मम, पिता, दशरथ, ( त्वया ) वन्दितव्य ।

सुधा—( हे सीते ! ) कल्य = प्रात काले “प्रच्छूषोऽश्रुत्य कल्यम्” इत्य मर । उत्थाय = शृण्यातोऽवर्तीर्य यथाविधि = शास्त्रमनतिकम्य, देवाना = दिवा-दीना, पूजाम् = अचाँ, कृत्या = सम्भाच्य, जनेश्वर = नरेश्वर, मम, पिता = अस्मज्जनको दशरथ, ( त्वया ) वन्दितव्य = प्रणम्य ।

इन्दुमती—(रामचन्द्रजीने कहा—हे सीते ! मेरे वन चले जानेके बाद ) नि य प्रात सवेरे उठना और नित्यकर्म करके पहले ( अपने वशपूज्य त्यादि ) देव ताओंका यथाविधि पूजन करना । तत्पश्चात् मेरे पिता महाराज दशरथजीकी वदना करना ।

माता च मम कौशल्या बृद्धा सन्तापकशिता ।

धर्ममेश्व्रत गृह्या त्वच सम्मानमर्हति ॥ ३१ ॥

अन्यय — सन्तापकशिता, मम, बृद्धा, माता, कौशल्या, च, धर्मम्, एव, अप्रत, हृत्वा, त्वच, सम्मानम्, अर्हति ।

सुधा— सन्तापर्हिता = सन्तापेन-मद्दियोगजेन खेदेन, कशिता-अतिरी डिता, मम, बृद्धा-शानवयोन्यामधिना, माता-जननी, कौशल्या, च = अपि, धर्मम् एव अप्रत हृवा=धर्ममेव मुख्य पल बुद्धौ कृत्वेत्यर्थ । त्वचः= वत्स-काशात्, सम्मान = सत्कृतिम्, अर्हति = प्राप्तु शकोति । यहा = मध्यतिशय प्रेषणा वन गातु प्रहृत्ताऽपि पतिशुश्रूपणव्यधर्ममेव अप्रत कृत्वा वर्तमानेनि मातुविशेषणमित्यवधेयम् ।

इन्दुमतो—( रामचन्द्रजीने कहा-है सोते । ) मेरे विद्योगसे अति लीठित मेरी बृद्धा माता कौशल्याजी भी धर्मत दुष्प्रसे सम्मान पाने योग्य हैं (पिनाजीकी बन्दना करनेके पश्चात् इनकी बन्दना करना भी अपना धर्म समझना )

चन्द्रितव्याक्ष ते नित्य या शेषा मम मातर ।

खेदप्रणयसम्भोगे समा हि मम मातर ॥ ३२ ॥

अन्यय — या, शेषा, मम, मातर, ( ता सबा अपि ) ते, नित्य, बन्दितव्या, च, हि, मम, खेदप्रणयसम्भोगे, मातर, समा,

सुधा— स्वमातुर्बद्वादिक विधायान्यासामपि तत्कर्त्तव्यमित्युनिशति-चन्द्रितव्याक्षेति । या, शेषा = कौशल्यातिरिक्ता, मम, मातर = कैकेयीप्रभू तथो मम विमातर, ( ता सबा अपि ) ते = वया नित्य = प्रतिदिन, बदिन-व्या = प्रणम्या, चकारात् सम्मानादिकमपि कर्त्तव्या, हि = यह, मम, खेद-प्रणयसम्भोगे = खेद — अतिप्रीति, प्रणय — अतिसौहार्द, मोग — पानन, ते, समा = दुल्या, मपि स्नेहादित्रयमविशेषण कुर्वन्त अतस्ता ( कैकेयाद्या ) कौशल्यातुत्पत्तया प्रणम्या इति भाव ।

इन्दुमतो—( रामचन्द्रजीने कहा-है सोते । ) कौशल्याके अतिरिक्त ( कैकेयी, मुमित्रा ) जो मेरी विमातायें हैं उनका भी नित्यसत्कार करना क्योंकि उन्होंने भी सहनेह सुहृद्वावसे मेरा सम्भोग ( पालन-पोषण ) किया है अत एव सुभक्ते उनकी प्रीति और सौहार्द वैसा ही है जैसा माता कौशल्याका है ।

भ्रातृपुत्रसमी चापि द्रष्टव्यौ च विशेषत । ।

त्वया भरतशङ्कूमौ प्राणं प्रियतरौ मम ॥ ३३ ॥

अन्वय — त्वया, च, मम, प्राणैः, अपि, प्रियतरौ, भरतशङ्कूमौ, च, विशेषत, भ्रातृपुत्रसमी, द्रष्टव्यौ ॥

सुधा— त्वया=भवत्या, च, मम, प्राणैः=प्राणेभ्योऽपि, प्रियतरौ=अत्यन्त प्रियौ, भरतशङ्कूमौ=तत्त्वामश्नुज्ञौ, च, विशेषतः=स 'विशिष्टत्वेन रूपेण, भ्रातृपुत्रसमी=भ्राता पुत्रेण च तुल्यौ, त्वत्तो ज्येष्ठो भरतोऽतस्तर्त भ्रातृवत्, शत्रुघ्नस्य त्वत्त कनिष्ठ इति त पुत्रवदित्याशय । द्रष्टव्यौ=श्रवलोकनीयौ ।

इन्दुमती—( रामचन्द्रजीने पिर कहा—हे सीते । ) अपने प्राणोंसे भी तद कर प्रिय जो मेरे भाई भरत और शत्रुघ्नजो हैं उनको तुम भाई और पुत्रकी तरह समझना आर्यात् भरतजी तुमसे बड़े हैं अत उनको भाईकी तरह और शत्रुघ्नजी छोटे हैं अत उनको पुत्रवत् मानना ।

विप्रिय च न कर्तव्य भरतस्य कदाचन ।

स हि राजा च वैदेहि । देशस्य च कुलस्य च ॥ ३४ ॥

अन्वय — हे वैदेहि । कदाचन, भरतस्य, विप्रिय, न च कर्तव्यम्, हि, स च, देशस्य, च, कुलस्य, च, राजा च ( अस्ति ) ।

सुधा— हे वैदेहि =जनकामजे ।, कदाचन=कस्मिन्नपि समये, भरतस्य=ममानुजस्य, विप्रिय = विश्वद, न च कर्तव्य=न च विधातव्य, हि=यत, स च=भरत, देशस्य=भारतवर्षस्य, च =पुनः, कुलस्य=खुकुलस्य, राजा च=पाल करत्वेन राजघटशब्द, ( अस्ति ) च इवार्थेऽत्र ।

इन्दुमती—( अंतमें रामचन्द्रजीने कहा—) हे वैदेहि (१) सीते । भरतका विश्वद आचरण कभी मत करना क्यों कि आव वे समस्त आर्योवर्त के स्वामी हैं तथा खुकुलके भी राजा ( नायक ) हैं ।

आराधिता हि शीलेन प्रयत्नैश्चोपसेपिता ।

राजान् सङ्प्रसीदन्ति प्रकृष्यन्ति विपर्यये ॥ ३५ ॥

( १ ) बहीं पर वैदेही कहनेका तात्पर्य यह है कि तुम अपने पिता मिथिलेश महाराज जनकके भरोसे पर भी भरतका विश्वद आचरण (मिथिला और अशोध्याको लडानेका पद्मदण्ड) मत करना क्योंकि तुम्हारे पिता विदेह ( राजपिं ) हैं वे सत्य प्रनिश महाराज दशरथके विश्वद नहीं खड़ होंगे प्रथम बनके सरथ— पालनका समाचार सुनकर खुश ही होंगे ।

अन्वय —हि, राजान्, शीलेन, आराधिता, प्रयत्नैश्च, उरसेविता, सप्र-  
सीदन्ति, विपर्यये, प्रकुप्यन्ति ।

**सुधा—**सम्प्रति छीतासमीपवतिञ्नानप्युपदिशनाद-आराधिता इति ।  
दि=यत्, राजान्=नृपतय्, शीलेन=तदनुकूलस्वभावेन, आराधिता=  
स्वाभिलपितधर्मगलवत्वसिद्धि प्राप्ता, प्रयत्नै=तदरेक्षितसाधकव्यापारै, उरसे-  
विता=तदव्यापारजनितानन्द प्राप्ता, सम्प्रसीदन्ति=सम्यक्तया प्रसन्ना भवन्ति,  
विपर्यये=शीलाद्यभावे, प्रकुप्यन्ति=कोषधुक्षा भवन्ति । तस्माद्रावप्रसन्नाप्य  
सुखार्थिभिरनुकूलाचरणेन भाव्यमित्याशय ।

**इन्दुमती—**(रामचान्द्रजीने कहा-है सीते ।) कुटिलताको त्यागकर विनम्र  
भावसे सेवा करनेवर तथा तत्त्वादक प्रयत्न पूर्वक उरसेवनसे ही राजालोग प्रस  
न्न होते हैं और इसके विपरीत करनेमें वे कुद्द होजाते हैं ( अत यजा भरतके  
प्रतिकूल वार्य मत करना ) ।

**ओरसानवि पुत्रान् दि त्यजन्त्यहितकारिण ।**

**समर्थान् सम्प्रगृहन्ति जनानपि नराधिपा ॥ ३६ ॥**

अन्वय —हि, नराधिपा, अहितकारिण, औरसान्, अपि, पुत्रान्, त्यजन्ति,  
समर्थान्, जनान्, अपि, सप्रगृहन्ति ।

**सुधा—**अथ राजधर्ममुपदिशति-औरसानिति । दि=यत्, नराधिपा =  
राजान्, अहितकारिण = हित-प्रिय, कुर्वन्ति ये ते हितकारिणस्ते न भवतीनि  
तथोक्तान् राजनिहितारणानित्यर्थ । औरसान्-अपि “सस्कृताया तु भार्याया स्व  
यमुत्पादयेत्तु यम् । तमोरस विदानीयान् पुत्र प्रथमकल्पितम् ॥” इत्युक्तलक्षणा  
नात्मजानपि, पुत्रान् = मुतान्, त्यजन्ति = मुद्दन्ति, समर्थान् = अनुकूलकारिण,  
जनान् = सम्बादलेशहीनानन्ति, सम्प्रगृहन्ति = स्वीकुर्वन्ति । तस्माद्राजविर्प्रिय  
कथमपि नातुष्टेयमिति भाव ।

**इन्दुमती—**(रामचान्द्रजीने कहा-है सीते ।) राजालोग अनिष्ट करने  
वाले औरउ ( अपनी विवाहिता छीसे उत्तरज ) पुत्रोंको भी त्याग देते हैं और  
हित करनेवाले अन्य ( सम्बन्धीसे भिन्न ) साधारण लगोंको अपना लेते हैं  
( अत राजा भरतका अहित तुम कभी मत करना ) ।

**सा त्व वसेद्व कलयाणि ! राज्ञ समनुघत्तिनी ।**

**भरतस्य रता धर्मे सत्यवतपरायणा ॥ ३७ ॥**

अन्यय—हे कल्याणि ! सत्यव्रतपरायणा, धर्म, रता, भरतस्य, समनुवर्तिनी, सा, त्वम्, इह, राजा, ( समीपे ) वस ।

सुधा—हे कल्याणि मङ्गलस्वरूपे ! सत्यव्रतपरायणा = अमोघव्रततत्परा, धर्म = स्वाम्याशापालने, रता = तत्परा भरतस्य = ममानुच्छव्य कैकेयीनन्दनस्य, समनुवर्तिना = अनुकूला, सा, त्वम्, इह = अयोध्याया, राजा = दशरथस्य ( समीपे ) वस = वास कुरु ।

इन्दुमती—( रामचंद्रजीने कहा—इसलिये— ) हे कल्याणि ! तुम राजा भरतकी आशाके अनुकूल आचरण करती हुई सत्यव्रत परायणा होकर यहीं ( अयोध्या राजधानीमें ) रहो ।

अह गमिष्यामि महावन प्रिये ! तथा हि वस्तव्यमिदैव भासिनि !  
यथा व्यलीक कुरुपे न कस्यचित्तथा तथा कार्यमिद वचो मम ॥३८॥  
इत्यार्थे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे पद्मविंश उर्ग ।

अन्यय — हे प्रिये ! अह, महावन, गमिष्यामि, ( अत ) तथा, हि, इह, एव, वस्तव्य, हे भासिनि ( त्व ) यथा, कस्यचित्, व्यलीक, न, कुरुपे, तथा, इद, मम, वच, तथा, ( सदैव ) कार्यम् ।

सुधा—ननु तद्विनाऽमप्यत्र न स्थास्यामि किन्तु तथा सहैव वन गमि व्याभीत्यत आह—अहमिति । हे प्रिये=वल्लभे ।, अह, महावन = दण्डकारण, गमिष्यामि=ब्रजिष्यामि, वने महत्व तदगमनायोग्यत्वेन । ( अत ), तथा=भवत्या, हि, इह एव = अयोध्यायामेव, वस्तव्य = निवसितव्यम् । हे वन्तरमाह—यथेति । हे भासिनि = सौदर्यवति, ( त्व ) यथा = येन प्रकारेण, कस्यचित् = मतिश्रादे, व्यलीकम् = अप्रिय, न कुरुपे = न विदधासि, तथा = तेन प्रकारेण, इद, मम, वच = उक्ति, तथा = भवत्या ( सदैव ) कार्य = कर्तव्यम् । यद्वा—यथा कस्य चिदमद्वचस व्यलीकम् = अनृतत्व न कुरुपे तथेदमपि मे वचः, कार्यम् = अनुष्ठेयमित्यर्थ । एवज्ञ तद्रमने मतिश्रादीनामत्यन्तखेदो भविष्यतीति तद्रमन नोचितमित्याशय ।

इति श्रीवाल्मीकीयरामायणेऽयोध्याकाण्डे “सुधा” टीकाया पद्मविंश उर्ग ।

इन्दुमती—( अन्तमें पुन रामचंद्रजीने कहा— ) हे प्रिये सीते ! मैं महावन ( दण्डकारण्य ) जाऊ हू । तुमको यहीं ( अयोध्यामें ही ) रहना चाहिये ।

हे भाषिनि ! तुमको मेरी इष पूर्वोक्त शिदाको धारण करना चाहिये और किसीका अप्रिय नहीं करना चाहिये । ( तभी तुम मेरे परोक्षमे सुन्वसे यहा रह सकोगी ) ।

इस प्रकार इन्दुमतीटीकामे अयोध्याशारड़का २६ वा सर्ग समाप्त हुआ ।

**सप्तविशः मर्गः ।**

**पतिव्रता सीता**

एवमुका तु वैदेही प्रियार्हा प्रियवादिनी ।

प्रणयादेव सकुदा भर्तारमिदमपवोत् ॥ १ ॥

अन्यथ —प्रियार्हा, प्रियवादिनी, वैदेही, एवम्, उक्ता, तु, प्रणयात्, एव, सकुदा, भर्तारम्, इदम्, अववीत् ।

सुधा—एव रामकर्त्तव्य सामायघर्मानुषानमुपपाद्य प्रथ सीतानुष्टेय पाति व्रत्यघर्ममुपपादयितु समासेनोपक्षिपति-एवमित्यादि । प्रियार्हा = अप्रियवादिन्यपि प्रियसभाषणार्हा, प्रियवादिनी = मधुरभाषणी, वैदेही = सीता, एव = “त्वया हि वस्तव्यमिहैव भाषिनि” इत्यादिप्रकारेण, उक्ता = अप्रियमभिहिता, तु, प्रणयात् = स्नेहादेव हेतो, न तु वैरात्, सकुदा = कथ मम भिनवासमादिशतीत्यमर्थवनी, भर्तार = स्वाभिनम्, इद = वद्यमाणवचनम्, अववीत् = उक्तवती ।

इन्दुमती—रामचन्द्रजारे एव ( तुम अयोध्यामे भरतकी द्वितैर्पिणी बनकर रहो इत्यादि ) रुपेण जब प्रिय वचन बोलनेवालो अत एव समीका प्रिय अपनी प्राणेश्वरी सीताजीसे कहा, तब सीताजी प्रणयपूर्वक ( उपरसे कोघ प्रकट करती हुई नम्रतापूर्वक ) रामजीसे कहने लगी— ।

किमिद भाषसे राम ! वाक्य लघुतया ध्रुवम् ।

त्वया यदपदास्य मे धुत्या नरवगेत्सम ॥ २ ॥

अन्यथ —हे नरवोत्तम ! राम ! त्वया, लघुतया, ध्रुव, यद्, वाक्य, शुद्धा, मे, अपदास्य, ( तद्वाक्य त्व ) भाषसे, इद, किम् ।

सुधा—हे नरवोत्तम = नरवरो नरधेष्ठस्त्राङ्गद्युत्तम भेष, तद्वाक्यद्वारा हो राम ! त्वया = श्रीमता, मवन सशाश्वदिरक्षर्य । लघुतया=मधि ज्ञुश्वानम्ब नेन, ध्रुव=निभितम् अत्यन्तनि सारमित्यर्थ । यद्, वाक्य=वचन, शुद्धा = आकृत्य, मे = मम लिया अनि, अपदास्यम् = अर्तशयितो हाथो भवति ( तद्वाक्य त्व ) भाषसे=प्रवीषि, इद किम् = अपमपूर्व, प्रकार इति पूर्वे न हृष्ट्वा इति

महदाश्वर्यमित्यर्थ ।

इन्दुमतो—( सीताजीने कहा— ) हे आर्यपुत्र ! राम ! आप कैसी छोटी बातें करते हैं ? हे महाराज कुमार ! आपने जो कुछ कहा है वह सुनकर मुझे इसी ग्राहकी है । ( नरश्रेष्ठ चक्रवर्ती महाराज दण्डरथके पुत्र होकर आपको ऐसी शिक्षा हमें नहीं देनी चाहिये ) ।

बीराणा रापुत्राणा शस्त्रविदुषा नृप ! ।

मनर्हमयशस्य च न श्रोतव्य त्वयेरितम् ॥ ३ ॥

अन्वय—हे नृप ! त्वया ( यत् ) इरित ( तत् ) शस्त्रविदुषा, बीराणा, रापुत्राणाम्, अनर्हम्, अयशस्य, च, ( अत् ) न, भ्रोतव्यम् ।

सुधा—हे नृप=राजन् १, त्वया=धीमता, ( यत् ) इरित=विधित ( तत् ) शस्त्रविदुषा=शस्त्राणि-लौहनिर्मितव्यवृगादीनि, शस्त्राणि आयुधानि, विद्वित ये ते तयोक्तास्तेषा तथोक्तानाम् “शस्त्रे लौहाश्वयो द्वीवम्” “आयुध तु प्रहरण शस्त्रमस्त्रम्” इत्यमर । बीराणा=क्षात्रतेज सप्तज्ञाना रापुत्राणा=क्षत्रियकुमारा णाम्, अनर्हम्=अयोध्यम्, अयशस्य च=अकीर्तिकरञ्च यशोनिवत्तं कमिति तात्यम् । न श्रोतव्य=श्रोतुमयोग्यमित्यथ , मयेति शेष ।

इन्दुमतो—( सीताजीने व्यगमरे शब्दोंमें पुन कहा— ) हे राजन् । ( १ ) आपने जो ( मुझे भातकी खुशामद सीखनेको ) कहा है वह शस्त्रविद्याओंमें निःशा ( आपके ऐसे ) बीर क्षत्रिय योद्धाओंके लिये अयोध्य है ( बोलने योग्य नहीं है ) और अकीर्तिकर ( कलकास्पद ) है इसलिये मेरे ( राज-कन्या तथा बीर-पत्नी सीताके ) लिये भी मुनने ( मानने ) योग्य नहीं है ।

आर्यपुत्र ! पिता माता भ्राता पुत्रस्तथा स्तुषा ।

स्वानि पुण्यानि भुजाना स्व स्व भाग्यभुपासते ॥ ४ ॥

अन्वय.—हे आर्यपुत्र ! पिता, माता, भ्राता, पुत्र, तथा, स्तुषा, स्वानि, पुण्यानि, भुजाना, स्व, स्व, भाग्यम्, उपासते ।

सुधा—मम वाक्यस्य कथ परिहासास्पदत्वमित्यत आह—आर्यपुत्रेति । हे आर्यपुत्र=महाकुलप्रसूत । पिता=जनक, माता=जननी, भ्राता=सोदर्यादि, पुत्र=आमज, तथा, स्तुषा=वधू, ‘समा स्तुषा जमीवधू’ इत्यमर । स्वानि=निजानि, पुण्यानि=युक्तानि, एतचोपलक्षणमधर्मस्थाऽपि तथाच पुण्या

( १ ) 'राजन्' कहनेका तात्पर्य यह है कि मैं भरतको राजा नहीं मानती हूँ ।

नीत्यस्य कर्मकलानीत्यर्थ , भुजाना = अनुभवन् सन्त , स्व स्व = स्वस्यैव फल-  
त्रद, भाग्य = शुभाशुभ कम, उपासते = उपजीवन्ति, न पुत्रादिकृत तत्र तेषा  
सहाधिकारामावात् । “भाग्य कर्म शुभाशुभम्” इत्यमर ।

इन्दुमती—( सीताजीने पुन कहा--हे आपपुत्र ! आपने अयोध्यामें मुके  
रहनेको भी सम्भवित नहीं कहा है । अगर आपको बनजानेके लिये महाराजकी  
आशा मिली है तो मुके भी उनकी आशा पाचन करना चाहिये क्योंकि-- )  
हे आर्यपुत्र ! मिता, माता, माई, पुत्र और पुत्र वर्ग ये सब अपने अपने कर्म  
फलको भोगते हुए अपने भाग्यके भरोसे रहते हैं । ( किन्तु-- )

भर्तुर्भाग्य तु नार्येका प्राप्नोति पुरुषर्वम् ।

अतश्चैवादमादिषा वने वस्तव्यमित्यपि ॥ ५ ॥

अन्वय---हे १२४८म् । एका, नारी, तु, भर्तु, भाग्य, प्राप्नोति, अन,  
अहम्, अपि, वने, वस्तव्यम्, इति, आदिष, एव ।

सुधा—पित्रादय पूर्वोक्ता सर्वेऽपि स्वकायकमस्त्वान्यनुभवन्ति भर्तुर्भ-  
शारीरम् ॥ त्री तु भर्तृहृतमाग्यकलमेवानुभवतीति दशवति-भर्तुरिति । हे पुरु-  
षर्वभ = पुरुषश्रेष्ठ । एका = वेवल नारी = भार्या, तु, भर्तु भाग्य = भर्तुष्टितं  
शुभाशुभ कर्मकल, प्राप्नोति = लभते, ( दण्डत्यो सहाधिकारात् ) अत =  
भर्तृहृतकर्मकलभोक्त्रोदादेतो, अहमपि, वने = दण्डकारण्ये, वस्तव्य = निव-  
सितव्यम्, इति, आदिषा = आश्रमा, एव, तथाच तव वनवासादेशेनैव त्वति  
तूम्या सर्वकर्मणि सहाधिकारान्ममाप्यदेश सिद्ध एवेति भाव । एव वित्रादा  
शपनमन्तरा इमा कप सह नेध्यामीति उकाचो भवता न विदेय इत्याशय ।

इन्दुमती—हे पुरुषश्रेष्ठ (मर्यादापुरुषोत्तम) ! वेवल अर्धाङ्गिनी होनेके का-  
रण छी ही ऐसी होती है जो अपने पतिके भाग्यका फल भोगती है । अत ( आ-  
पको आज्ञा मिलनेसे ) मुझे भी महाराजकी आज्ञा वन जानेकी मिल चुका ।

न पिता नारमज्जो नारमा न माता न सखोजन ।

इदं प्रेत्य च नारीणा पतिरेको गति गदा ॥ ६ ॥

अन्वय—हे स्वामिन ! नारीणाम्, इह, प्रेत्य, च पिता, न, गति, आरमज  
न, (गति) (तथा) आरमा न, (गति) माता चाऽपि न, (गति) सखीजन, न, (गति)  
( किन्तु ) सदा, एक, पति ( एव ) गति । ०

सुधा—एव स्वगमने भर्तृसमानभाग्यत्वं देतुरित्युपनाय, तदेकगति

कत्वमपि स्वगमने हेतुरित्युपपादयति--नेति । हे स्वामिन् । नारीणा=छीणाम्  
 इह=अस्मिन्होके, प्रेत्य=परलोके च, पिता=जन्मदाता, न गति =नाश्रय, आत्मज=तनयोऽपि, न ( गति ) ( तथा ) आत्मा=स्वकीयमाश्रयत्वं, न ( गति ) माता=जननी ( चाऽपि ) न ( गति ) ( तथा ) सखीजन=सहचरीजनक्ष, न ( गति ) ( किंतु ) सदा=सर्वस्मिन् काले, एक=मुख्य, पति =भर्ता ( एव ) गति=श्राधार । “एको गति” रित्यत्र सबनामामुद्देश्यविदेयान्यतरलिङ्गत्वेन पुस्तवम् । तथा च भवता सह ममाऽपि गमन सञ्चितमैवेति भाव ।

इन्दुमतो—( सीताजीने कहा-- ) हे आयपुत्र ! खीके लिये इस लोकमें क्या ! मरनेके बाद परलोकमें भा पतिको होड़कर पिता, पुत्र, भाई-बन्धु, माता और सखीजन कोइ भी काम नहीं आता । वेवन पति ही उसका आश्रय-स्थान ( सद्वितिप्राप्त करानेवाला ) है ( अत आपके साथ मेरा बनजाना अनुचित नहीं होगा )

यदि त्वं प्रस्थितो दुर्गं वनमध्यैव राघव !

अप्रतस्ते गमिष्यामि सृद्धन्ती कुशकण्टकान् ॥ ७ ॥

अन्वय—हे राघव ! यदि, त्वम्, अथैव, दुर्गं, वन, प्रस्थित, ( तदा ) ते, अप्रत, कुशकण्टकान्, मृद्धन्ती, ( अहमपि ) गमिष्यामि ।

सुधा—कलिताथमाह-यदीति । हे राघव=राम ! यदि=चेत्, त्वं=भवान्, अथैव=अस्मिन्हन्येव, दुर्गं=गहन, वन=दण्डकारण्य, प्रस्थित=गन्तु निर्गत, ( तदा ) ते=तव, अप्रत=समुखात्, कुशकण्टकान्=कुशा=दर्भा, कण्टका—कुद्रशत्रव, कुशाश्च कण्टकाश्चेति कुशकण्टकास्तान् तथोक्तान् । मृद्धन्ती=पद्मया मर्दयन्ती सृद्धुर्बन्तीत्यर्थं, ( अहमपि ) गमिष्यामि=ब्रजि ष्यामि । तथा च तवाप्रतो मम गमने कुशकण्टकादिना तव क्लेशो न भविष्यतीति भाव, एतेन गमने स्वविलम्बाभावो व्यञ्जित ।

इन्दुमतो—( सीताजीने कहा—हे आर्यपुत्र ! वनमें आपको मैं कष्ट नहीं दूरी, प्रत्युत सुन्व पहुचाऊगी ) हे राघव ! यदि आन ही आप उस दुगम दण्ड कारण्य वामे जा रहे हों तो ( चलिये ) मैं आपके ब्राह्मणे २ कुश-काटोको पैरोंसे कुचलती हुइ कुश-कण्टकाकीर्ण मार्गको निष्कटक करती हुइ चलूगी ।

ईर्ष्या रोष वहिष्कृत्य भुक्षेषोपमिवोदकम् ।

नय मा वीर ! विश्रद्ध्य पाप मयि न विद्यते ॥ ८ ॥

अन्वय-- हे वीर ! ईर्ष्या, रोष, भुक्षरोषम्, उदकम्, इष, वहिष्कृत्य,

विश्वव ( सन् ) मा, नय, ( यत् ) पाप, मयि, न, विद्यते ।

सुधा—हे वीर=क्षत्रिय सम्मन । ईर्ष्या=क्षिया वनगमनसाइल कथमि  
त्सानिरुग, रोथम्=“अश्रैत सुखमास्त्वे”ति भ्योक्तापि स्वयमनुगमिष्या-  
मीति वृत्तिंति रोप त, वहिष्कृत्य=त्यक्त्वा नि शेष निरस्त्वेर्यं । विश्वव =  
विश्वल नि शङ्क भन् इत्यथ । भुक्तशेष = शास्त्रनिपिद्धत्योऽमुच्छुष्टम् , उद-  
क = जलमिव, माम्=आत्मपत्नी, नय=वन प्रापयेत्यर्थं , (यत् ) पाप = स्वागप्र-  
योजक दुष्कृत, मयि=नव भार्याया, न विद्यते = नास्ति । वीरेति सम्बोधने  
नैनामेकाकां कान्तार कथ नयेयमिति सदेहो न कर्तव्य इति सूचितम् । यद्वा-  
ईर्ष्या रोपद्व वहिष्कृत्य विश्ववो मा नय । ननु भुक्तमोगया त्वया बने कि प्रयो-  
जनमित्यत् आह—भुक्तशेषमिति । तथाच यथा दुध्प्रापगानीयवनगांगा पीतशेष  
कमण्डलुगतमुदकमवश्य नेतव्यमेव, तथाऽइमपि त्वया नेतव्यैवेत्याशय ।

इन्दुमतो—(सीताजीने पुन कहा—हे नाय ! ) उच्छुष्ट जलकी तरह (जैसे  
महस्थनमें सहर करने वाना मुसाफिर अपने पात्रत्व जनका पान करनेर लसे  
उच्छुष्ट सगरकर फेंक नहीं देता, प्रथम सावधानीसे अपने साथमें रखकर चनता  
है, उक्ती तरह ) ईर्ष्या और रोपको त्यागकर नि शङ्क होकर अपने साथमें मुझे  
लेते चनिये । हे वीर ! मेरेमें बोई ऐसा पाप नहीं है ( जो मुझे बन नहीं लेजा  
नेका कारण हा ) ।

प्रासादाद्यैविमानेर्पौ वैहायसगतेन वा ।

सर्वविद्यागता भर्त्य पादच्छाया विशिष्यने ॥ ६ ॥

अन्तय --प्रासादाद्यै वा विमानै , वा, वैहायसगतेन, सवावस्थागता,  
भत्तु' , पादच्छाया, विशिष्यते ।

सुधा—अत्र प्रासादवास परित्यज्य किमर्थं बनवासममिलप्रसात्यत आह  
प्रासादाद्यैरिति । सर्वव पञ्चभ्यर्थे तूलीया । तथा च प्रासादापै=सार्वभौमवासो  
त्तमप्रासादस्थितिभ्य, वा=अथवा, विमानै=स्वलोकादिस्थिनविमानेभ्य, वा  
वैहायसगतेन=अणिमादैभूर्युचिद्विसम्बनोचिताकाशसम्बिंघमनाद्वा, सर्पा  
वस्थाभु=दुरवस्थापन्नास्वपि आयता=प्रासा, भत्तु'=स्वामिन, पादच्छाया=  
पादसेवा, विशिष्यते=अतिरिच्यते अन्तिक भवतीत्यर्थ । सकलभर्तृधर्मरहितस्यापि  
भत्तु': सर्वपरित्यागेन पादसेवनमेव जीणा समुचितमिति भावः ।

इन्दुमतो—( सीताजीने कहा—हे नाय ! ) राजाओंके ऊँची अहातियोगे  
पू रा० घ०

बास करनेसे तथा स्वर्गके पुष्पविमानों पर चलनेसे तथा आठों प्रकारके श्रिय मादि ऐश्वर्योंकी प्राप्तिसे जो सुख मिलता है, उससे कही अधिः सुख स्त्रीओं पतिकी सेवा करनेसे प्राप्त होता है।

**अनुशिष्टास्मि मात्रा च पित्रा च विविधाश्रयम् ।**

**नास्मि सम्प्रति वक्तव्या वर्तितव्य यथा मया ॥ १० ॥**

**अन्वय—**यथा, मया, वर्तितव्य ( तथा ) विविधाभय, पित्रा, च, मात्रा च, अनुशिष्टास्मि, ( अत ) सम्प्रति, न, वक्तव्या, अस्मि ।

**सुधा—**उरदेशानुसारादपि मयानुगन्तव्यैवेति दर्शयति—भनुशिष्टेति यथा = येन प्रकारेण, मया=सीतया, वर्तितव्य=भर्तुंविषये स्थातव्य, ( तथा ) विविधाश्रय = विविधप्रकारम् अनेकदृष्टान्तविशिष्टमित्यर्थ, पित्रा = जनकेन, च = पुन, मात्रा=जनन्या च, अनुशिष्टास्मि=उपदिष्टऽह शिक्षिताहमित्यर्थ अस्मीत्य इमर्थकमव्ययम् । ( अत ) सम्प्रति=इदानीं, ( भवता ) न वक्तव्या अस्मि=पतिसे वाविषये नोपदेष्टव्यास्मि । एव तव सेवायामेव यथावृत्तितव्यमित्याशय ।

**इन्दुमतो—**( सीताजीने पुन कहा-हे नाय ! पति—सेवाका क्या महत्व है और वह किस विषिसे करनी चाहिये इसको मैं अच्छी तरहसे जानती हूँ क्यों कि— ) मेरी माता और पिता राजर्षि मिथिलेश महाराज जनकने अनेक प्रकारका दृष्टात दे देकर पति—सेवाकी विधि समझा दी है । अत अब इस विषयमें मुझे अधिक चतुरानेकी आवश्यकता नहीं ( मैं आपके साथ बन अवश्य चलूँगी ) ।

**अह दुर्ग गमिष्यामि वन पुरुषवजितम् ।**

**नानामृगगणाकीर्ण शार्दूलवृक्षसेवितम् ॥ ११ ॥**

**अन्वय—**अह, नानामृगगणाकीर्ण, शार्दूलवृक्षसेवित, दुर्ग, वन, पुरुषवजित ( यथास्याचय ) गमिष्यामि ।

**सुधा—**उपदेशफल प्रतिपादयति—अहमिति । अह, नानामृगगणाकीर्ण=नानामृगगण—विविधप्रकारहरिणाना, गणै—समूहे, आकीर्ण—व्याप्त, “मृग पशौ कुरञ्जे च / करिनक्षत्रभेदयो” इति विश्व, शार्दूलवृक्षसेवित=शार्दूला-व्याघ्रा, वृक्षा —इदा मृगा तेः सेवितम्—आभित “शार्दूलदीपिनौ व्याघ्रे” इति, कोक ईदामृगो वृक्ष ” इति चामर । दुर्ग=गहन, वन=दण्डकारण्य, पुरुषवजित=भूत्यादिरहित ( यथास्याचय, कियाविशेषणमिदम् ) अह, गमिष्यामि=विद्यामि ।

इन्दुमतो—(सीताजीने कहा—हे नाथ !) मैं अब यह ही आपके साथ वन जाऊंगी, चाहे वह बन नाना प्रधारके चित्र विचित्र वनेजे पशुओंने व्याप्त और व्याप्र एवं वृक्ष (हुराङ) आदि भयानक व धानक जन्मुओंसे सेवित तथा पुर्वचित्र (निर्जन) अत एव दुर्गम वन क्यों न हो । (इसकी मुक्ते परवाइ नहीं है) ।

सुख वने निवत्स्यामि यथैव भवने पितु ।

अचिन्तयन्ती श्रीहोक्ताश्चित्यन्तो पतिवतम् ॥ १२ ॥

अन्तय—पितु, भवने, यथा, ( तथा ) एव, त्रीन्, लोकान्, अचिन्तयन्ती ( केवल ) पतिवत, चिन्तयन्ती, ( तथा सह ) वने, सुखे, निवत्स्यामि ।

सुधा—तथा सह वनश्च से ब्लेपज्ञेशयहाऽपि नेत्याह—सुखमिति ।  
पितु = जनकस्य, भवने=एहे, यथा=येन प्रकारेण, ( सुवर्पूर्वक तिष्ठामि तथा ) एव, त्रीन् लोकान् = श्रीनोक्त्याचिरन्यमपि, अचिन्तयन्ती = अपणयन्तो, पतिवत=पतिविषयक व्रत पति-मेवाळा गम्भित्यर्थ । चिन्तयन्ती=पायस्तो ( तथा सह ) वने=दण्डकारणे, सुख=सुवर्पूर्वक (यथास्थात्तथा) निवत्स्यामि=स्थाप्यामि ।

इन्दुमतो—( सीताजीने कहा—हे स्वामिन् ! ) मैं जैसे अपने गिता के घरमें मुख्यमें रहती थी वैसे हा वनमें बड़ो खुणीसे रहूँगी । ( हे नाथ ! ) वनमें सुके केवल पति-सेवाकी ही विन्ता रहेगी । पति-मेवाळके सामने मैं तीनों लोकों के मुख-प्राप्तिको तुच्छ समझती हूँ । उनमें उस मुखकी कामना भी नहीं करूँगी ।

शुश्रूषमाणा ते नित्य नियता व्रह्मचारिणो ।

सह रस्ये तथा वीर ! वनेषु मधुगन्धिषु ॥ १३ ॥

अन्तय—हे वीर !, मधुगच्छु, वनेषु नित्य, (त्वा) शुश्रूषमाणा, नियता, व्रह्मचारिणी, ( सती ) तथा, सह रस्ये ।

सुधा—हे वीर = ज्ञानेन सम्बन्ध ।, मधुगन्धिषु = पुरुषसमुरभिषु “मधुमय मधु चीद्र मधु पुरुष विदु” इत्यनेकार्थ । वनेषु = अरण्येषु, नित्य=प्रति-दिन,(त्वा)शुश्रूषमाणा=सेवामाना, नियता=तदुपदिष्टनियमयुक्ता, व्रह्मचारिणी = नियतेनिद्रिया कामभोगत्विर्विदेत्यर्थ, ( सती ) तथा = भवता, सह=साक, रस्ये=विहरिष्ये, अपूर्वदर्शनकुटुंबा भविष्यामीत्यर्थ । अनेन वनगमनविषयक उत्साहो दर्शित ।

इन्दुमतो—( सीताजीने कहा— ) हे वीर वृत्तिकुमार ! मैं वनमें आदेशानुसार प्रति-दिन नियमरूपक विषय-वार्ताओंसे निर्ल झोकर

उन मधुर गाष्युक दण्डकारण्य आदि महावनोंमें किचलगी ।

त्वं हि कर्तुं वने शको राम ! सम्परिपालनम् ।

अन्यस्यापि जनस्येह किं पुनमम मानद ! ॥ १४ ॥

आन्यय —हे राम ! हि, त्वम्, इह वने, (यदि) अन्यस्य, अपि, जनस्य, सपरिपालन, कर्तुं, शक, (तर्हि) हे मानन्द ! मम, पुन किम् ? ।

सुधा—हे राम = स्वामिन् ! हि=यत, त्वं=भवात्, इह=अस्मिन्, वने=महारण्ये (यदि) अन्यस्य=त्वघर्मरहितस्यापि, जनस्य=जीवसमुदायस्य, सपरिपालन=सरदण्ण, कर्तुं=विवातु, शक=समर्थ (तर्हि) हे मानन्द=समानपद, मम=तवानुगमित्या सीताया, पुन किं=किं वक्तव्यम् ? उक्तलजीवसरदण्णसमर्थस्य तव ममापि सवक्षण्य स्थादेवेति भाव ।

इन्दुमती—(सीताजीने कहा—) हे मानन्द (मनोरथको सिद्ध करने वाले) राम ! यहाँ पर मुझे यह शक्ता ही नहीं होती कि—जब आप वनमें दूसरोंका भरण-पोशण करनेमें समर्थ हैं, तब किर आप मेरी (अपनी पत्नीकी) रक्षा नहीं कर सकेंगे ।

साह त्वया गमिष्यामि वनमय न सशय ।

नाह शक्या महाभाग ! निवर्त्यितुमुद्यता ॥ १५ ॥

आन्यय —सा, अहम्, अद्य, त्वया, (सह) वन, गमिष्यामि, (अत्र) सशय, न, हे महाभाग ! उद्यता, अह, (त्वया) निवर्त्यितु, न, शक्या ।

सुधा—ममानुगमननिवृत्तिगती भवता न विधेय यवामदाती आह-सेति ! सा, अह=सीता, अद्य=अस्मिन्दहनि, त्वया=भवता, (सह) वन=दण्डकारण्य, गमिष्यामि=प्रजिष्यामि, (अत्र) सशय=सदेह न=नहि, विधेयस्तिस्तु सदेहस्त्वया न विधेय इत्याशय । हे महाभाग =

“आरभ्योत्पत्तिमामृत्ये क्लङ्को यस्य नो भवेत् ।

स्याच्चैवानुपमाकीर्ति स महाभाग उच्यते ।”

इत्युक्तनक्षण ।, उद्यता=उद्युक्ता उद्योग कुर्वन्तीत्यर्थ, वन गन्तुमिति शेष आह (त्वया) निवर्त्यितु=त्वद्वक्तिरूपत्वेन न्यायप्राप्तानुगमनत्वात् प्रत्यावर्त्त्यितु, न शक्या=न योग्या ।

इन्दुमती—(सीताजीने पुन कहा—) हे महाभाग ! मैं आज अवश्य आपके साप वन जाऊँगी । अब कोई भी कारण मेरे यहा रहनेका नहीं है,

१ ) आप मेरी बन यात्रा को रोक नहीं सकते ।

फतमूलाशना नित्यं भग्निष्यामि न सहयः ।

न ते दुख करिष्यामि निवसन्तो तथा सह ॥

आग्रहतरते गमिष्यामि मोद्ये मुक्तपति त्वयि ॥ १६ ॥

अन्वय — नित्य, पतमूलाशना, भग्निष्यामि, ( अत्र ) सहय, न, ( तथा ) आग्रह, गमिष्यामि, त्वयि, मुक्तपति, मोद्ये, ( एव ) तथा, सह, निवसन्ती, दुख, न, करिष्यामि ।

सुधा—ननु तदुद्देश्यकाणानादिप्रथ्यैन मम कर्त्तय स्वादितम आए-  
शमूले यादि । नित्य=भृतिरिन, दलमूलाशना=द्वार्जितस्तमूलभोजना, भग्नि-  
ष्यामि, ( अत्र ) सहय=सहदै, न=नहि, ( तथा ) ते=गमनविहितस्त तत्र,  
द्रठ=सम्मुच्छात्, गमिष्यामि=विक्रिष्यामि, त्वयि=भद्रति, मुक्तपति=त्वादित्वति  
ति, मोद्ये=आत्स्थ्यामि, ( एव ) तथा=पवता, सह=साक, निवसन्ती=वास  
ग्रहणती, ते=तत्र, दुखम्=अग्रनयनात्मयर्थनस्य, न उक्तिष्यामि=नौत्तराद्य-  
यामि । यद्या उक्तिष्यात्मया सह सर्वदा निवसन्ती दुष्मनमकाषीति, तथा  
एव कर्त्तिमन्त्रित समये दुख न हत्यती एवमग्रेऽपि न करिष्यामीत्यात्मय ।

इन्दुमतो—( सीतानने कहा—मैं बनमे क्या काढ़ूँगी इष्टकी चिन्ता आप  
न करे हे नाय । ) आप सहय मत कीनिये प्रसुत दिखात करे, आपके साथ  
बनमे आपकी तरह हार्द मैं रहूँगी । आपके मोजन करनेहैं पश्चात मैं मो निच  
फल-मूल ही मोजन करूँगी और आपको उठके लिये । कष नहीं दूरी ।

इच्छामि सरित शैलाल पत्त्वलानि सरासि च ।

द्रष्टु सर्वत्र निर्भासा तथा नायेन धीमत्रा ॥ १७ ॥

अन्वय — धीमता, नायेन, तथा ( उहिताद ) सरित, शैलाल, पत्त्वलानि,  
सरासि, च सर्वत्र, निर्भासा, द्रष्टुम्, इच्छामि ।

सुधा—धीमता=दृष्टिमता, नायेन=स्वामिना, तथा=भरता ( उहिताद्द )  
सरित = यत्र, शैलाल=सर्वतान्, पत्त्वलानि=अल्पउत्तराति, सरासि=महातडामात्य  
“अय नक्षी भरित्” । “पद्महोऽप्तवननाशुप्” हस्यम । “करो नीतद-  
दातामो” इति कोश । लघवत्र = सर्वस्यन, निर्भासा=निर्भासा मनोहृतेत्यय ।  
द्रष्टुम्=अवनोद्यितुम्, इच्छामि=अभिनयामि । पत्त्वलानीत्यार्दत्ता, डीननम् ।

इन्दुमतो—( सीताजीने कहा—मैं आपको बनमे अपने भरण-वौपसण

कष्ट नहीं दूरी ) केवल यही चाहती हूँ कि-हे नाथ ! मैं आपके ऐसे बुद्धिमान् प्राणनाथके साथ भय रहित होकर बनमें सर्वत्र धूमती हुई बनके नदियोंको बड़ेर ढंचे विशाल पर्वतोंको, झीलोंको और महात्राङ्गोंको देखू ।

**हसकारणडवाकीर्णा पद्मिना साधु पुण्पिता ।**

**इच्छेय सुखिनो द्रष्टु त्वया वीरेण सगता ॥ १८ ॥**

**अन्वय — वीरेण, त्वय, सगता, सुखिनो ( अह ) हसकारणडवाकीर्णा, साधु, पुण्पिता, पद्मिनी, द्रष्टुम्, इच्छेयम् ।**

**सुधा—वीरेण = क्षात्रतेज समज्ज्ञेन, शरैरेत्यर्थ । त्वया=भवता, सगता=सयुता, सुखिनी=प्रभोदवती, ( अह ) हसका षडवाकीर्णा=हसा—मानसौकर, कारणडवा—जलकुकुटा हसाथ कारणडवाश्च हसकारणडवर्त्तै आकीर्णा-व्यासा, “हसास्तु श्वेतगृहतश्चकाङ्गा मानसौकर ” इति “मद्गुः कारणडव प्लव ” इति चामर । साधु=सम्यक्, पुण्पिता=विकसिता, पद्मिनी=कमलिनी, द्रष्टुम्=अवलोक्यितुम्, इच्छेयम्=अभिलेयम् ।**

**इन्दुमती—( पुनर्थ सीताजीने कहा- हे नाथ ! ) में चाहती हूँ कि आपके ऐसे वीर क्षत्रिय कुमारके साथ सुखपूर्वक ( निर्भीक होकर ) बनके—हस तथा काण्डवों ( जलमुगों ) से सेवित तथा सुन्दर विकसित कमलिनियोंसे युक्त बनके सुन्दर तड़ागोंको देखूँ ।**

**अभिषेक करिष्यामि तासु नित्यमनुवता ।**

**सह तथा विशालाक्ष ! रस्ये परमनन्दिनी ॥ १९ ॥**

**अन्वय — हे विशालाक्ष ! तासु, नित्यम्, अनुवता, ( अहम् ) अभिषेक, करिष्यामि, ( तथा ) परमनन्दिनी ( सही ) त्वया, सह, रस्ये ।**

**सुधा—हे विशालाक्ष=विशाले—दीर्घे, अक्षिणी—लोचने यस्य स विशालाक्षस्तत्समुद्दी । तासु=पद्मिनीषु, नित्य=प्रतिदिनम्, अनुवता=ब्रह्मचर्या दिव्यतपालनतत्त्वा, ( अहम् ) अभिषेक=स्नान, करिष्यामि=विशास्यामि, ( तथा ) परमनन्दिनी=परमानन्दयुक्ता, ( सही ) त्वया=भवता, सह रस्ये=विहरिष्ये, तत्रापूर्वावलोकनेन सतुष्टा भविष्यामीत्यर्थ ।**

**इन्दुमती—( सीताजीने कहा- ) हे विशालाक्ष ! बनके उन ( हस-का रणडवाकीर्ण तथा कमलिनियोंसे सुशोभित ) तड़ागोंमें ब्रतनियम तहार होकर ( जल कीड़ाकी भावना त्यागकर ) आपके साथ स्नान करूँगी और परमानन्दिनी**

किर बन-विहारका सुख प्राप्त कर्सगी ।

एव वर्षसहस्राणि शतं वापि त्वया सह ।

व्यतिक्रम न वेत्स्यामि स्वर्गोऽपि हि न मे मत ॥ २० ॥

अन्वय — एव, व्यतिक्रम, वर्षसहस्राणि, वा, शतम्, अपि, त्वया, सह, ( बसन्ती ), न, वेत्स्यामि, हि, स्वर्गः, अपि, मे, न मत ।

सुधा—एवम् = एतादृशरमणप्रकारेण, व्यतिक्रम = बनवासदु ख वर्ष-  
सहस्राणि = सहस्रवर्षपर्यन्त, वा = अथवा, शतम् = शतवर्षमपि, त्वया = भवता,  
सह, ( बसन्ती ) न वेत्स्यामि = न शास्यामि, किन्तु द्वयमिव चतुर्दशवर्षसुमय  
नेष्यामीत्याशय । तत्र इति दशयति—स्वर्ग इति । हि = यत् स्वर्ग = सुख-  
विरोपोऽपि, मे = मम सीताया, न मत = नाभिलिपित, त्वया विनेति शेष ।

इन्दुमती—( सीताजीने कह— ) हे नाथ ! इष्ट प्रकार आपके साथ ( बनमें  
रमण करती हुई चौदह वर्ष के कीन कहे ) सी या इजार वर्ष भी क्यों न वीत  
जाय पर बनवासका कष्ट हमें नहीं मालुम होगा । हे नाथ ! आपके बिना मैं  
स्वर्गमुखकी भी अभिसाधा नहीं करही ।

स्वर्गोऽपि च विना वासो भविता यदि राघव !

त्वया विना नरव्याघ ! नाह तदपि रोचये ॥ २१ ॥

अन्वय.—हे राघव ! यदि, स्वर्ग, अपि, त्वया, विना, वास, भविता,  
( तदा ) हे नरव्याघ ! तदपि त्वया विना, अह, न, रोचये ।

सुधा—‘स्वर्गोऽपि हि न मे मत इयुक्त तदेव स्वरूपति—स्वर्गोऽपीति ।  
हे राघव=राम ! यदि = चेत्, स्वर्गोऽपि = सुरलोकेऽपि, त्वया = भवता,  
विना, वास = विष्टि, भविता = सम्भवेदित्यर्थ, ( तदा ) हे नरव्याघ=नरभोगु ।  
तदपि = तत्सुखमपि, त्वया = भवता विना, अह न रोचये=अह न कामये । यत्र  
यैन प्रकारेण भवान् स्यास्यति अदमपि तत्र तेन प्रकारेण स्यास्यामि ततोऽपि  
सुखमकिञ्चित्करमेदेत्याशय । त्वयेत्येकमपि पदमर्थसम्बन्धायोभयत्रापि योजनीयम् ।

इन्दुमती—( सीताजीने त्वये वारेमें पुन कहा— ) हे राघव ! हे नरधेष्ठ !  
यदि आपके बिना मुझे स्वर्गमें रहना पड़े, तो मुझे वह भी पसन्द नहीं होगा ।

अह गमिष्यामि बन सुदुर्गम, मृगायुत वानरबारणैयुतम् ।

वने निवत्स्यामि यथा पितुश्चैह, तत्रैव पादात्मुपगृह्य समता ॥ २२ ॥

अन्वय — ( हे राघव ! ) मृगायुत, वानरबारणै, सुर, सुदुर्गम,

अह, गमिष्यामि, ( तथा ) यथा, पितुः, यहे ( तथा ) पादी, उपर्याह, वर,  
समता, एव, वने, निवत्स्यामि ।

**सुधा—अथोपदहरति—आहमिति । ( हे राघव ! ) मृगायुत=मूर्गे—  
हरिणै, आ—समन्ताव, युत=युक्त वानरवारणै =वानरा-कपय, वारणा—  
हस्तिन, वानराम वारणाश्चेति वानरवारणा तैस्तथोचै, युत=सयुतम्, सुट  
र्गम=कातरगमनानहैं, वन=दण्डकारयम्, अह गमिष्यामि,=अह व्रजिष्यामि,  
( तथा ) यथा=येन प्रकारेण, पितु =जनकस्य, यहे=भवने ( सुखपूर्वक  
मास तथा ) पादी=भवद्वरणौ, उपर्याह=यद्दीत्या, तब समतैव =भवत्समद  
विषयोभूतैव, भवदाशावर्तिन्येवेति यावत्, वने निवत्स्यामि=वने वसिष्यामि,  
अत्र वनपदस्य पुनरुपादानादपरोऽप्योऽपि प्रतीयते । तथादि—मृगायुत=मृगरूपवारि  
मारीचयुत, वानरवारणै =कपिश्रेष्ठै सुवीवादिभि, युत=युक्त, सुदुर्गमं, वनमह  
गमिष्यामि, तथा तवैव पादाङुपर्याह, समता=सयता, तितुर्युद्द इव, वने=अशोक  
वनेऽपि निवत्स्यामि । तथा च वने मारीचमृगप्रसङ्गेनावयोर्विंयोगे “त्वं मया विना  
कथ इथातु शक्ताऽसी” एव न चिन्ननीयमित्यभिग्राय ।**

**इदुमती—**( अन्तमें सीताजीने कहा—हे नाथ ! ) मैं तो आपके साथ  
ही उस महान् दुर्गम दण्डकारय वनमें चलूँगी, जो हरिणोंसे युक्त और बदरों  
तथा हायियोंसे ऐवित है । हे नाथ ! जैसे मैं अपने पिता मिथिलेशु जनकके  
धरमें सुखसे रहती थी, उसी प्रकार वनमें आपकी चरण-सेवा करती हुई सुख  
पूर्वक रहूँगी ।

**अनन्यभागामनुरक्तचेतस, त्वया वियुक्ता मरणाय निश्चिताम् ।**

**नयस्व मा साधु कुरुष्व याचना, न ते मयातो गुरुता भविष्यति ॥३॥**

**अनन्य—**अनन्यमावाम्, अनुरक्तचेतस, त्वया, वियुक्ता, मरणाय निश्चि-  
ताम्, मा, नयस्व, मया ( कृता ) याचना, साधु, कुरुष्व, अत , ते, गुरुता, न,  
भविष्यति ।

**सुधा—अनन्यमावाम्=नास्ति, अन्य —त्वदतिरिक्तविषयक , भाव -स्त्वेऽ,  
यस्या सा ता तथोकाम्, अनुरक्तचेतस =त्वदिष्यकपरमानुरागयुक्तनित्ताम् ,  
( अत एव ) त्वया वियुक्ता=त्वदिष्योगयुक्ता, ‘त्वद्व्यक्तिमालश्य’ इति शेष । मर-  
णाय=प्राप्तस्यामाय, निश्चिता=कृतनिश्चय, मा=स्वप्राणवल्लभा, नयस्व=  
प्राप्य, वनमिति शेष , मया=सीताया, ( कृता ) याचना=मामिता वनानुगमनप्रा-  
येना, साधु =चरितायो, कुरुष्व =उपादय, अत =अनुगमनाद्, ते =तव,**

गुरुता = भार , (यदा) अगुरुता-लघुता, न भविष्यति=न भविता । अपरायौऽपि  
स्या—अनन्यमावामनुरक्तचेतस = रावणगृहीतामपि त्यग्येवासक्षद्वया, खया  
वियुक्ता, ( वेण्युद्ग्रथनेन ) मरणाय निश्चिता, इनुमत्सदेशादिप्रेषणेन-नयस्वेति,  
याचना = सुरकृतरावणवधप्रार्थना, साधु कुरुष्वेति शेष पूर्ववत् ।

इन्दुमतो—( सीताजीने कहा—हे नाथ ! ) आपको छोड़कर मैं किसी  
दूररेको जानती ही नहा, मेरा चित्त सदा आपहीमें अनुरक्त रहता है । अत  
हे नाथ ! यदि आपसे बिछोइ हुआ ( अमने साथ बन नहा ते गये ) तो  
निश्चय ही मरनेके लिये मैं तैयार हूँ । हे नाथ ! मेरी प्रार्थना स्वीकार कीजिये  
और आपने साथ मुझे भी बन लेते चलिये । मेरे लेजानेसे आपको कछु भी  
भार नहीं होगा ।

तथा मुगाणामपि धर्मवत्सला, न च स्म सीता नृवरो क्षितोष्टति ।  
उवाच चैना यदु सञ्चिवर्त्तने, यने निवासस्य च दु खिता प्रति ॥२४॥  
इत्यादेश श्रीमद्रामायणे बालमीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे सतांदिश सर्गं ।

अन्य — धर्मवत्सला, तथा, मुगाणाम्, अपि, सीता, नृवर, न च  
निनीषतिस्म, च, एना, सत्रियत्वेन, बने, निवासस्य, दु खिता, प्रति च, बहु, उवाच ।

सुधा—धर्मवत्सला = धर्मयुक्तवात्तल्यविशिष्टा, तपा = तेन प्रकारेण, मुगा-  
णाम् अपि, अभिद्वानामपि, सीता = जनकनन्दिनी, नृवर = नरधेष्ठ, न च  
निनीषति स्य = न च नेत्रुमिच्छुति स्म, च = तथा, एना = सीता, सत्रियत्वेने = बन  
गमनप्रवृत्तिनिवृत्यर्थ, बने निवासस्य = बनवासस्य, दु खिता = तत्त्वनिष्ठदुख  
प्रति च, बहु = अनेकविधि ( यथास्वात्तथा क्रियाविशेषणमिदम् ) उवाच = उक्तवान् ।  
इति श्रीबालमीकीयरामायणेऽयोध्याकाण्डे “सुधा” टीकाया सतांदिश सर्गं ।

इन्दुमती—पति-धर्ममे स्नेह रखने वाली सती सीताजीके इसप्रकार  
प्रार्थना पूर्वक कहने पर भी पुरुषधेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी सीताजीको अमने साथ  
बन लेजानेके लिये राजी नहीं हुए, प्रस्तुत सीताजाकी बनगमन प्रवृत्तिको दूर  
करनेके लिये बनवासके अनेक कष्टोऽन वर्णन करने लगे ।

इस प्रकार इन्दुमती टीकामें अयोध्याकाण्डका सतांदिश सर्गं उमात हुआ

अष्टाविंशतिः सर्गः

**पातिव्रता सीता**

स एव मुवतीं सीता धर्मज्ञो धर्मवत्सलः ।

न नेतु कुरुते बुद्धि वने दु खानि विन्तयन् ॥ १ ॥

अन्वय—धर्मवत्सल = धर्मप्रिय, वान्ताङ्केरातहिष्णुरिति वेचित, धर्मज = धर्मवेत्ता, स = राम, वने दु खानि = वनवासदु खानि, विन्तयन् = विचारयन् (सन्) एवम् = उक्तप्रकारेण, मुवती = कमयन्ती, सीती = स्वधर्मपत्नी, नेतु = वन प्रापयितु, बुद्धि = निश्चय, न कुरुते = न विधत्त ।

सुधा—‘वने निवासस्य च दु खितामि’ युक्तमेव स्पष्टीकुर्वन्नाह—स एव मिति । धर्मवत्सल = धर्मप्रिय, वान्ताङ्केरातहिष्णुरिति वेचित, धर्मज = धर्मवेत्ता, स = राम, वने दु खानि = वनवासदु खानि, विन्तयन् = विचारयन् (सन्) एवम् = उक्तप्रकारेण, मुवती = कमयन्ती, सीती = स्वधर्मपत्नी, नेतु = वन प्रापयितु, बुद्धि = निश्चय, न कुरुते = न विधत्त ।

इन्दुमती—(प्रथमार महावि वाल्मीकिजी कहते हैं कि) एव प्रकारेण सीताजीके अनुनय-विनय पूर्वक प्रार्थना करने पर भी धर्ममें स्लहू रखने वाले धर्मज्ञ श्रावण व द्रग्नी वनके कष्टोंका स्मरण कर सीताजीको वन लोजानेका विचार नहीं करने लगी ।

सान्त्वयित्वा ततस्ता तु वाष्पदूषितलोचनाम् ।

निवर्त्तनार्थं धर्मात्मा, वाष्पयमेतदुवाच इ ॥ २ ॥

अन्वय.—तत्, तु, धर्मात्मा, वाष्पदूषितलोचना, वा, सान्त्वयित्वा, इ, निवर्त्तनार्थं, एतद्, वाक्यम्, उवाच ।

सुधा—तत् = तदनन्तर, तु, धर्मात्मा = धर्मशील राम, वाष्पदूषितलोचना = वाष्पयेण-अथधुजलेन, दूषिते-व्यासे, लोचने नयने यस्याः सा वाष्पदूषितलोचना ता तथोच । ता = सीता, सान्त्वयित्वा = प्रणयपत्रोभिराक्षास्य, इ = तत्, निवर्त्तनार्थं = निवृत्तिरूपप्रयोजनार्थम्, एतद् वाक्य = वद्यमाणवचनम्, उवाच = उच्चार ।

इन्दुमती—तत् (वन नहीं लजानेका विचार समझनेसे) रातो हुई अपनी प्राणेश्वरी सीताको धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजीने पुन समझाया और सीताजीको वन नहीं जानेका कारण इस प्रकार कहने लगे—।

सीते ! महाकुलोत्तासि धर्मं च निरता सदा ।

इहाचरस्व धर्मं त्वयथा मे मनसः सुखम् ॥ ३ ॥

अन्धय—हे सीते ! (त्य) महाकुलीना, असि, च, सदा, मे, घर्मे निरता, (असि, तथा सति) यथा, मनस, सुख (स्यात्, तथा) त्वम्, इह, घर्मशाचरस्व ।

सुधा—तद्वाक्यमेवाह—सीते इति । हे सीते = जनकात्मजे । (त्व) महा-कुलीना = प्रशास्तवणीया, असि = भवसि, च = तथा, सदा = सर्वंहिमन् काले, मे = मम, घर्मे = घर्मानुषाने, निरता = तत्परा, (असि, तथा सति) यथा = येन प्रकारेण, मनस = चित्तस्य, सुखम् = आनन्द (स्यात्, तथा) त्वम्, इह = अयोध्यायामेव, घर्मम्, आचरस्व = विघ्नस्व । एवज्ञ मदाशतमतित्रादिचेष्टो कृते मे मनस सुख स्यादतस्तदया भवेत्यथा त्वया समादनीयमित्याशय ।

इन्दुमती—(रामचन्द्रजीने कहा—) हे सीते ! तुम महाकुलीना हो (अर्थात् जगत्प्रसिद्ध महाराज मिथिलेण जनककी सुन्ती तथा सूर्यबधी महाराज दशरथकी कुल-वधु हो और सदा घर्म-गालनमें तप्तर रहती हो) अत यह— (अन्त पुरमें पर्दोके भीतर) रहकर ही तुम अपना घर्म-गालन करो जिससे मेरा मन शुरू हो ।

सीते ! यथा त्वा बद्यामि तथा कार्यं त्याऽप्तेषु ।

वने दोया दि वहवो घसतस्तान्निपोघ मे ॥ ४ ॥'

अन्धय—हे सीते ! त्यथा, यथा, कार्यं, तथा, त्वा, बद्यमि, दि, हे अबल !, वने, वसत, वहव, दोया, (सन्ति) तान्, मे, निपोघ ।

सुधा—हे सीते = जनकात्मजे ;, त्यथा = भवत्या, यथा = येन प्रकारेण, कार्यं = कर्त्तव्य, तथा = तेन प्रकारेण, त्वा = भवती बद्यमि = कथयामि उपदि शामीत्यर्थ । दि = यत, हे अबले = नास्ति वर्तम्—आत्मवन यस्या सा अबला, तरसम्बुद्धी । वने, वसत = निवसत, वहव = अनेके, दोया = आपत्य, (सन्ति) तान् = दोपान्, मे = मत्त, निपोघ = नानीहि । एवज्ञ यतो वन वहुदोपान्-त्वमसो मदुरुमवश्यमेव विधेयमिति भाव ।

इन्दुमती—(रामचन्द्रजीने कहा—) हे सीते ! मैं ज्ञेषा कहता हूँ वैषा ही तुमको करना चाहिये । हे अबले (बलरहिते ! अर्थात् तुम जो हो) वनवासमें अनेक प्रकारके कष्ट होते हैं । मैं उन कष्टोंको बतलाता हूँ तुम सुनो— ।

सीते ! विमुच्यतामेषा वनवासवृत्ता मति ।

वहुदोयं दि कान्तार वनमित्यभिधीयते ॥ ५ ॥

अन्वय — हे सीते ! एषा, वनवासकृता, मति, विमुच्यताम्, हि, वन, बहुदोपम्, का तारम्, इति, अभिधीयते ।

सुधा—हे सीते=जनकात्मजे ! एषा=मत्समीपे वोधिता, वनवासकृता=वनवासनिश्चिता, मति=बुद्धि, विमुच्यता=परिव्रज्यताम्, हि=यत, वनम्=अरण्य, बहुदोपम्=अहिकरणकादिवृत्तिरवादनेकदोपविशिष्टम्, का तार=गहनत्वाद्वृष्टिरैश “महारण्ये दुगपये कान्तार पुनरुत्तकम्” इयमर । इति एवम्, अभिधीयते=कथ्यते अभिशेरिति शेष ।

इन्दुमती—(रामचन्द्रजीने कहा—) हे सीते ! तुम अपना वन जानेका विचार छोड़दो क्योंकि वनवासमें अनेक तरहके कष्ट होते हैं इसी लिये शाखारोने दृढ़कारण्य आदि महावनोंका नाम ‘कान्तार’ रखा है (जो वन चोर, काट, च्याप्र आदि उपद्रव युक्त दुर्गम हो उसे ‘कान्तार’ कहते हैं) ।

**हितुद्वया खलु वचो मयैतदभिधीयते ।**

**सदा सुख न जानामि दुखमेव सदा वनम् ॥ ६ ॥**

अन्वय — सदा, सुख, वन, न जानामि (किन्तु) उदा, दुखमेव, (जानामि अत ) हितुद्वया, मया, एतद् वच, अभिधीयते ।

सुधा—उदा=उवंकाल, सुख=सुखज्ञनक, वनम्=अरण्य, न जानामि=न निश्चिनोमि (किन्तु) उदा=एवंदा, दुखमेव=झेशमेव, खलु=निथयेन, (जानामि, अत ) हितुद्वया=त्वद्विषयक्रीतिवृद्धया न तु त्वद्वरणादिझेशीनेत्यथ, मया=त्वद्वितकारिणा, एतद्=वनगमननिरोधक, वच=वचनम्, अभिधीयते=कथ्यते ।

इन्दुमती—(रामचन्द्रजीने कहा—हे प्रिये !) मैं (पुन २) तेरे कल्याणके लिये ही ऐसा कहता हूँ । (तुम विश्वास करो) वनमें कभी किसी प्रकारका सुख नहीं है वस्तुत उदा दुख ही दुख है ।

**गिरिनिर्भरसम्भूता गिरिकन्दरवासिनाम् ।**

**सिंहाना निनदा दुखा श्रोतु दुखमतो वनम् ॥ ७ ॥**

अन्वय — गिरिकन्दरवासिना, सिंहाना, गिरिनिर्भरसम्भूता, निनदा, श्रोतु (यतो) दुखा, अत, वन, दुखम् ।

सुधा—महावने विद्यमानानि दुखान्येवाह—गिरिनिर्भरेत्यादिना । गिरिकन्दरवासिना=गिरिकन्दरा-पर्वतनिर्देव, तत्र वासिना-निवसनयीलाना, पर्व-

तकन्दरासु कृतनिलयानामित्यर्थ । रिहाना=पूर्णद्राष्टा, गिरिनिर्भरसमूता=गिरिनिर्भर—गिरिनद्य ( तस्या निनदैः ) समूता = प्रवृद्धा पवतनदीशब्दव-दिता इत्यर्थ, निनदा = शब्दा “शब्दे निनादनिनद” इत्यमर, । श्रोतुम्=आकर्षणिक ( यतो ) दुखा = क्लेशदायका, अत = अस्माद्देतो, वन = महारण्य, दुर = क्लेशजनकम्, अस्तीति शेष ।

**इन्दुमती—**( रामचन्द्रजीने कहा—हे सीते ! बनमें बड़ा कष्ट है क्योंकि— ) पर्वतोंकी चोटीसे गिरता हुआ फरनोंकी गड़—गड़ाइट सुननमें तथा पर्वतोंके गुफा ओंपे रहने वाले सिंहोंका भयहुर शब्द सुननमें बड़ा कष्ट होता है । इसलिये है प्रिये । बन बड़ा कष्टप्रद है ।

कीड़मानाश्च विश्वः प्रा. मत्ता शून्ये तथा मृगाः ।

दृष्टा समभिवर्तन्ते सीते ! दुखमतो वनम् ॥ ८ ॥

अन्वय —हे सीते । शून्ये, विश्वव्या, ( सत्त ) कीड़माना, तथा, मत्ता, मृगाश्च, ( मनुष्यान् ) दृष्टा, ( यत ) समभिवर्तन्ते, अत, वन, दुखम् ।

**सुधा—**हे सीते=जनकारमजे । शून्ये=निमानुदे प्रदेश, विश्वव्या=विश्वस्ता, निश्चिन्ता इत्यर्थ ( उत् ) कीड़माना = खेलन्त, तथा, मत्ता = मदेनाकान्ति, मृगा = हरिणा, अग्रवा पश्च, ( मनुष्यान् ) दृष्टा = अद्विक्षय, ( यत ) समभिवर्तन्ते = अपूर्वदर्शनादन्तु समुच्चमायान्ति, अत = अस्मात् कारणात्, वन = महारण्य, दुख = क्लेशजनकम्, अस्तीति शेष ।

**इन्दुमती—**( रामचन्द्रजीने पुन कहा—) हे सीते । निर्जनवनमें नि शक होकर विचरण करनेवाले ददमार्य वन पर्गु ( गाँगवाले दरनामृग आदि ) मनुष्य-को देलते ही भारडालने के लिये समुख दौड़ते हैं अत वन बड़ा कष्टप्रद है ।

सप्राहा: सरितश्चैव पद्मवत्यस्तु दुस्तरा ।

मसैरपि गजैनित्यमतो दुखतर वनम् ॥ ९ ॥

अन्वय —सरित, सप्राहा, च, पद्मवत्य, मसै, अपि, गजै, ( मुका ) ( यत ) दुस्तरा, अत अपि, वन, दु, नित्य दुखतरम्, एव ।

**सुधा—**एति = नद्य, सप्राहा = सनका, ‘प्रादोऽवरहो नकस्तु’ इत्यमर, च = तथा, पद्मवत्य = बहुकदमयुक्ता, मसै = दानवारिणीकटै, गजै = हस्तिभि ( मुका यत ) दुस्तरा = तरितुमयक्या, अत अपि = अस्मादेतोरपि, वन = महारण्य, दु, नित्य = प्रतिदिन, दु खतर = अतिदुखजनकम् ।

**इन्दुमती—**( रामचन्द्रजीने कहा—हे सीते । और सुनो— ) वनकी

निदियोंमें मगर धड़ियाल रहते हैं और नदियोंके प्रदेश इतने दलदल होते हैं कि नित्य उनको पार करना कठिन है (अर्थात् हउ कारण्डवाकीणं और पश्चिमी सुपुष्पिना होनेपर भी वे नदिया नित्य स्नान करने चोग्य नहीं हैं) और वहे २ मत्त ज़ज़ली हाथीके लिये भी वे नदियों दुस्तर हैं। (अथवा वहे वहे मत्त हाथी उस बनमें घूमाकरते हैं) अत है सीते ! बन अत्यन्त कष्टप्रद है।

**लताकण्टकसर्णा, कृकवाकूपनादिता ।**

**निरपाश्च तुदु खाश्च मार्गा दुखमतो वनम् ॥ १० ॥**

**अन्वय —**( यतस्तत्र ) लताकण्टकसर्णा, कृकवाकूपनादिता, निरपा, च, सुदु खा, मार्गा ( सन्ति ) अत, च, बन, दु खम् ।

**सुधा—**ननु यत्र गिरिनिशरादयो न सतितेनैव पथा गमिष्यामीत्यत आह—  
लताकण्टकेत्यादि । ( यतस्तथा ) लताकण्टकसर्णा =लता—पदाकर्षिएय  
ब्रतत्य, कण्टका—पादवेषका, लताश्च कण्टकाश्चेति लताकण्टकात्तै सर्णीणां  
व्याप्ता, कृकवाकूपनादिता =कृकवाकव—बनकुक्कुटा तै उपनादिता—तज्जा  
दयुका इत्यर्थ । निरपा=निर्गंतजना, च=तथा, सुदु खा =अतिदुखेतत्र,  
मार्गा =वन्या पन्थान, ( सन्ति ) अतश्च =अस्मादपि हेतो, बन=महारथ,  
दु ख=क्लेशजनकम्, अस्तीति शेष ।

**इन्दुमती—**( रामवाद्रजीने पुन कहा—है सीते ! और ) दैरोमें लिप्ट  
जाने वाली लताओं तथा चूमने वाले बैंटोंसे बनोंके मार्ग बीहड़ रहते हैं, एवं  
बनमुगोंका शब्द होता रहता है तथा मार्गोंमें पीनेको जल भी नहीं मिलता ।  
इह तरह बनके मार्ग वहे दुखदायी होते हैं अत बन बढ़ाही दुखप्रद है ।

**सुध्यते पर्णशश्यासु स्वय भाग्नासु भूतळे ।**

**रात्रिषु थ्रमखिनेन तस्मादु खतर वनम् ॥ ११ ॥**

**अन्वय —**रात्रिषु थ्रमखिनेन ( बनवासिना जनेन यस्मात् ) भूतले स्वय, भग्नासु, पर्णशश्यासु, सुध्यते, तस्माद्, बन, दु खतरम् ।

**सुधा—**रात्रिषु=निशासु, न वहत्सु, थ्रमखिनेन=पलमूलाद्याद्वरण्डमक्ले  
शितेन ( बनवासिना जनेन यस्मात् ), भूतले=पृथिव्याम् एव न तु पर्यह्ने,  
स्वय=जीण्ठया स्वयमेव, भग्नासु=पतितासु, पर्णशश्यासु=पर्णमयनल्पेषु न  
तु मृदुत्तलास्तरणेऽप्तित्यर्थ, सुध्यते=शश्यते, एवश्च तवापि स थ्रमतदेव थयन-  
अडपि स्यादिस्याशय । तस्माद्=हेतो, बन=महारथ, दु खतरम्=अत्यन्त-  
क्लेशदायकम्, अस्तीति शेष ।

इन्दुमती—( रामचन्द्रजीने कहा—हे सीते ! इस तरहके दुर्गम मार्गको पार करनेके बाद— ) रातमें थके हुए वनवासियोंको जमीनमें अपने आप दखल कर गिरी हुदै परियाँ बिछाकर उनपर लोना पड़ता है । अत वनबड़ा कष्ट-प्रद है ।

अहोरात्र च सन्तोष कर्त्तव्यो नियतात्मना ।

फलैर्वृक्षाप्रपतितैः सीते ! दुखमतो वनम् ॥ १२ ॥

आन्वय.—हे सीते ! नियतात्मना, वृक्षाप्रपतितैः, अहोरात्र, च, सन्तोष, ( यत ) कर्त्तव्य, अत वन, दुखम् ।

सुधा—हे सीते = जनकात्मजे ! नियतात्मना = यतमनस्केन, ( वनवासिना जनेन ) वृक्षाप्रपतितैः = वृक्षेभ्य स्वयमेव पृथिव्या भन्नै, अहोरात्र = साय प्रातश सन्तोष = भोजनतृप्ति, ( यत ) कर्त्तव्य = पिषेय, अत = अस्मादेतो वन = महारथ, दुख = दुखजनस्म, अस्तीति शेयः ।

इन्दुमती—( रामचन्द्रजीने कहा— ) हे सीते ! वनवासियोंको सभी अन्य भोज्य पदार्थोंकी अभिलाषा त्यागकर साय प्रात वृक्षोंसे गिरे हुए फल खाकर ही सन्तोष करना पड़ता है । अत वन बड़ा कष्टप्रद है ।

उपग्रासश्च कर्त्तव्यो यथाप्राणेन मैथिलि । ।

जटाभारश्च फर्त्तव्यो वहक्लाम्परधारिणा ॥ १३ ॥

देवताना पितृणा च कर्त्तव्य विधिपूर्वकम् ।

प्राप्तानामतिथीना च नित्यश्च प्रतिपूजनम् ॥ १४ ॥

कार्यखिरभिषेकश्च काले काले च नित्यश्च ।

यरता नियमेनेव तस्माद्दुखतर वनम् ॥ १५ ॥

आन्वय—हे मैथिलि ! वहक्लाम्परधारिणा, ( जनेन ) यथाप्राणेन, उपग्रास, कर्त्तव्य, च, जटाभार, च, कर्त्तव्य, ( तथा ) देवताना, पितृणो, च प्राप्तानाम्, ( च ) अतिथीना, विधिपूर्वक, प्रतिपूजन, च कर्त्तव्य, वाले, वाले, च, नियमेन, एव, चरता, नित्यश्च, त्रि, अभिषेक, च, ( यत ) कार्य, तस्मात्, वन, हुखतरम् ।

सुधा—हे मैथिलि=मिथिलेशमुते ।, वहक्लाम्परधारिणा = वृक्षावावलपरि चायिना ( जनेन ) यथाप्राणेन = यथाशक्त्यनुसारेण, उपग्रास = वयोग्य भोजनविहर ह इति तात्त्वयम् । कर्त्तव्य = पिषेय, च = तथा, जटाभार — जटायाः सटाया, भार — घारण च कर्त्तव्य, सत्कारामावाङ्मारविधानम् । ( तथा )

देवाना = विष्वादीना, पितृणा = पितृनोऽवाचिना, च = तथा, प्राप्तानी = यथाक्षयं बिचक्षणागतानाम्, अतिधीनाम् = अस्यागताना, विष्विष्वर्वक = ब्रह्मचदविदि तविधिना, प्रतिपूजन = प्रत्यचन, च, कर्त्तव्य = विषेयम्, काले काले च = प्राप्त मर्म्माहृषायाहेषित्यर्थ, नियमेन एव = यमादिनैव, चरता = समययापने कुर्वन्ता जनाना, नित्यश = प्रतिदिनं, त्रि = क्रियाम्, अभिदेश = स्वान, कार्य = क्रिया व्यम्। तथा च तप्रादाशास्त्रं दु खमित्याशय ।

इमन्दुती—( रामचन्द्रबीने कहा— ) है मीमिलि सीते । वनमें यथा शक्ति उपवास भी करना पड़ता है (हृदोसे गिरे हुए फल भी समय २ पर नहीं मिलते) तथा नदा धारण करना पड़ता है और बछड़ी जाह बहुक्त ( वृक्षकी छात ) पहनना पड़ता है । ( है सीते । इतप्रकार मुनिषेष धारण कर ) यहा देवताओं, मित्रों, और समयमर आये हुए अतिधियोका विष्विष्वर्वक नियपूजन करना पड़ता है तथा सप्तम—नियमसे रहकर समय दिताते हुए विशाळ स्वान बरना पड़ता है । अत एव वन बहुतही कष्टप्रद है ।

उपहारव्यं कर्त्तव्यं कुसुमै स्वयमाहृतै ।

नार्यण विधिना वेदा सीते । दु खमतो वनम् ॥ १६ ॥

अन्वय—है सीते । स्त्र्यम्, आहृतै, कुसुमै, आर्येण, विधिना, वेदाम् उपहार, च, कर्त्तव्य, अत, वन, दु खम् ।

सुधा—है सीते=जनकास्मजे ! स्वयम्भूत, आहृतै=आनीतै, कुसुमै = पुष्पै आर्येण=वेदविदितेन, विधिना=क्रमेण, उपहार=पूजा, च कर्त्तव्य = विषेष, अत = अस्मादेतो, वन=वनवास, दु ख=दुखनक्षम्, अस्ताति शेष ।

इम्दुमती—( रामचन्द्रबीने कहा— ) है सीते । वनमें अपने हायसे भूल तोड़कर वेद विहित विषिसे बेदीकी पूजा करनी पड़ती है अत वनमें बढ़ा कष्ट है ।

यथालङ्घेन कर्त्तव्य सन्तोपस्तेन मैथिलि ॥

यताहारेवनवरै सीते । दु खमतो वनम् ॥ १७ ॥

अन्वय—है मैथिलि । यथालङ्घेन, तेन, यताहारै, वनवरै, सन्तोष, कर्त्तव्य, अत, है सीते ।, वन, दु खम् ।

सुधा—है मैथिलि=विदेहसुते ।, यथालङ्घेन=यथाकाल प्रातेन, देनक्षत्र-पूलादिना, यताहारै = नियमितमोजने, वनवरै = क्रियादिभि, कर्त्तव्य =

वियेष , अत = अस्मादेतो , हे सीते = जनकात्मजे । , वन = महारण्यम् ,  
दुःख = बलेशजनकम् , अस्तीति शेष ।

इन्दुमती—( रामचंद्रजीने पुन कहा— ) हे मैथिलि । वनवासीको जित  
समय जितना जो कुछ भोजनके लिये मिलता है उतने ही से उसे सन्तोष करना  
पड़ता है । अत हे सीते ! वन वडा कष्टप्रद है ।

मतीय वातस्तिमिर बुभुक्षा चास्ति नित्यश ।

भयानि च महान्त्यश ततो दुखतर वनम् ॥ १८ ॥

अन्वय —अत्र, अतीव, वात, ( तथा ) तिमिर, च, ( राश्रिषु अतीव,  
अस्ति ) बुभुक्षा, च ( अनीव ) अस्ति, नित्यश, महान्ति, भयानि च, ( अनीव,  
सन्ति ) तत, वन, दुखतरम् ।

सुधा—अत्र=महावने, अतीव=बहुल , वात = वायु , ( तथा ) तिपरम् अन्व-  
कारश ( राश्रिषु अतीव अस्ति ) बुभुक्षा=जिघत्सा, च, ( अतीव ) अस्ति=वर्त्तते, नित्य  
श=प्रतिदिन, महान्ति=विपुलतानि, भयानि=पूर्वोक्तत्रासाः, ( अतीव, सन्ति ) ततः=  
तस्मादेतो , वन = महारण्य, दुखतर = पूर्वोक्तदुखसमेलनादतिशयेन दुखतर ।

इन्दुमती—( पुनश्च रामचंद्रजीने कहा— ) हे सीते ! वनमें वायुका वडा  
प्रकोप रहता है, जोरोकी भयकर आँधी आती रहती है, भयावह घोर अपकार  
छाजाता है तथा और भी अनेक प्रकारके भयके कारण उपतिथित रहते हैं परं  
वनमें भूख-प्यास भी अधिक लगती है । अत वन वडा कष्टप्रद है ।

सरीसुपाश वद्यो वद्युरुपाश भामिनि ! ।

चरन्ति पथि ते दर्पात्ततो दुखतर वनम् ॥ १९ ॥

अन्वय —हे भामिनि !, वद्य, वद्युरुपा, ते, सरीसुपा, च, दर्पात्,  
पथि, चरन्ति ततश्च, वन, दुखतरम् ।

सुधा—हे भामिनि = विलासवति !, वद्य = अनेके, वद्युरुपा = दृश्यतारीरा ,  
ते = प्रसिद्धा , सरीसुपाश = गिरिसर्पाश, स्थननिधाविरप्य वा, दर्पात् = “मम  
घातक इश्चन न विद्यत” इत्यद्वारात् , पथि=मार्गे, चरन्ति=भ्रमन्ति, तत =  
तस्मादपि हेतो वन=महारण्य, दुखतरम्=अतिशयेन दुखवत् ‘अस्तीति’ शेष ।

इन्दुमती—( रामचंद्रजीने कहा— ) हे भामिनि ( विलासिनि ) सीते !  
वनमें अनेक प्रकारके पहाड़ी अजगड आदि भयकर सर्प वडे दर्पके साथ फुकार  
करते हुए घूमा करते हैं । अत वन वडा कष्टप्रद है । -

नदीनिलयना सर्पा नदीकुटिलगामिनः ।

तिष्ठस्त्यावृत्य पन्थानमतो दुखतरं वनम् ॥ २० ॥

अन्वय—नदीनिलयना, ( अत एव ) नदीकुटिलगामिन, सर्पा, पन्था नम्, आवृत्य, तिष्ठन्ति, अत, वन, दुखतरम् ।

सुधा—नदीनिलयना=नदी-सरिदेव, निलयन=शास्त्रान् येषा ते तथोक्ता, ( भव एव ) नदीकुटिलगामिन=नदीवत् कुटिलगमनशीला, सर्पा=मुजङ्गा, पन्थान=मांगम्, आवृत्य=परिवृत्य, तिष्ठन्ति=उपविशन्ति, अत=आस्मादेतो, वन=महारथ्य, दुखतरम्=अतिशयेन क्लेशवत् ।

इन्दुमती—( रामचन्द्रजीने पुन कहा-हे सीते । ) वनकी नदियों रहने वाले सर्प, जो कि नदीकी ही तरह टेढ़ी-मेढ़ी चालसे चला करते हैं, रात्ता रोककर सामने खड़े हो जाते हैं । अत हे सीते । वन बड़ा कष्टप्रद है ।

पतझा वृक्षिका कीटा दशारथ मशकै सह ।

बाधन्ते नित्यमवले ! सर्वे दुखमतो वनम् ॥ २१ ॥

अन्वय—हे अबले ।, नित्य, पतझा, वृक्षिका, कीटा, मशकै, सह, दशारथ, बाधन्ते, अत, सर्वे, वन, दुखम् ।

सुधा—हे अबले=कातरे ।, नित्य=प्रतिदिन, पतझा=शलभादय, वृक्षिका=अलय “भलिदुणी दु शृश्चके” इत्यमर । कीटा=हृषय, मशकै=दंदन्दशूकै, सह=साधै, दशारथ=वनमक्षिकारथ, बाधन्ते=पीड़यन्ति, अत=आस्मा देतो, सर्व=निस्तिल, वन=महारथ्य, दुख=क्लेशजननकम् । अत्राऽवलेतिपदो पादानेन तजिवारणासामर्थ्ये व्यञ्जयते ।

इन्दुमती—( रामचन्द्रजीने कहा- ) हे अबले । ( भीर ) वनमें फतिंगे, भौंरि, कीड़े-मकोड़े, मधुमक्षिया, मच्छर आदि नित्य पीड़ा देते हैं अत हे सीते । वन बड़ा कष्टप्रद है ।

हुमा कण्टकितश्चैव कुशा काशारथ भामिनि । ।

घने व्याकुलशाखाग्रास्तेन दुखमतो वनम् ॥ २२ ॥

अन्वय—हे भामिनि ।, घने, व्याकुलशाखाग्रा, कण्टकिन, हुमा, ( सन्ति' ) च, ते, कुशा, काशारथ, न ( सन्तीति न किन्तु सन्ति ) एव, अत, वन दुखम् ।

सुधा—हे भामिनि=विलासवति ।, घने=महारथ्ये, व्याकुलशाखाग्रा =

स्याकुला—परस्परसकीणेन व्यापा, शाखापा—हवन्याग्रा ये ते तथोका, कण्ठकिन =वहुकण्ठकवन्त, द्रुमा =हृदा, ( सन्ति ) च=तथा, ते=प्रसिद्धा, कुशा =बहिंप, वाशाभ =इन्दुगच्छाश्च “अथो काशमन्त्रियाम् । इन्दुगच्छा पीटमल ” इत्यमर । ( इत्युक्ता ) न ( सत्त्वीति न किन्तु सन्ति ) एव, अत = ग्रस्माद्येतो वन =महारथ, दुख =क्लेशजनकम् ।

**इन्दुमती—**(रामचन्द्रजीने कहा—) हे भासिनि । चूभने वाले कौटीसे युक्त तथा विलङ्घे हुए शाखावाले सघन कृहीरे तथा कुशा, वाश आदिसे समस्त वन बीदड़ ड्यात रहता हे अत हे भासिनि (विजासिनि) । वन बडा ही कष्टप्रद है ।

कायक्लेशाश्च वहवो भयानि विविधानि च ।

अरण्यवासे वसतो दुखमेव ततो वनम् ॥ २३ ॥

**अन्वय**--अरण्यवासे, वसत, वहव, कायक्लेशा, च, विविधानि, भयानि, च, ( भवति ) तत, वन, दुखमेव ।

**सुधा—**अरण्यवासे=काननरूपवासस्थाने, वसत=निवास, वहव=अनेके, कायक्लेशा =वतोपग्रासादितु खानि, च=तथा विविधानि=नानाप्रकाराणि, भयानि =पूर्वोक्तासाभ, ( भवन्ति ) तत =तस्मादेतो, वनव्यमहारथ, दुख मेव=क्लेशजनकमेव ।

**इन्दुमती—**(रामचन्द्रजीने कहा—हे विलासिनि ।) इस प्रकार वनमें शारीरिक अनेक क्लेश होते हैं तथा विविध प्रकारके मय उत्पन्न हुआ करते हैं । अत हे सीते । वन बडा कष्टप्रद है ।

कोषलोभौ विमोक्ष्यौ कर्त्तव्या तपसे मति ।

न भेतव्य च भेतव्ये दुर्दा नित्यमतो वनम् ॥ २४ ॥

**अन्वय**--( वने हि ) क्रोधलोभौ, विमोक्ष्यौ, ( भवत ) तपसे, मति, कर्त्तव्या, ( भवति ) च, भेतव्ये, भेतव्य, न ( कर्त्तव्य, भवति ) अत, नित्य, वन, दुखम् ।

**सुधा—**( वने हि ) कोषलोभौ = कोष -किञ्चिदपि जातेऽपरावेऽसहिष्णुत्व, लोभ —घनाधागमे वहुधा जायमानेऽपि पुन पुनर्दर्शमानोऽभिनाश, क्रोधश्च लोभश्चेति तौ तथोक्तौ, विमोक्ष्यौ = परित्यक्त्यौ ( भवत ) तपसे = तपश्चर्याया, मति = बुद्धि, कर्त्तव्या = विषेधा, ( भवति ) च=तथा, भेतव्ये=मयहे-दुमतोक्तसर्वादौ तत्सन्धिवित्यर्थ । भेतव्य = मय, न, ( कर्त्तव्य भवति ) अत =

अस्माद् वेतो , नित्य = प्रतिदिन, वन = महारण्य, दुख = क्लेशजनकम् ।

इन्दुमती—( रामचन्द्रजीने कहा— ) हे सीते । ( और सुनो ) वनमें क्षोभ तथा लोभको त्यागकर तपमें मनको लगाना पड़ता है और ढरने योग्य वस्तुओंसे भी डरना नहीं होता । अत वन बदा कष्टप्रद है ।

तदलं ते वन गत्वा चेम नहि वन तव ।

विमृशन्निव पश्यामि वहुदोषकर वनम् ॥ २५ ॥

अन्वय —तद् , ते वन, गत्वा, अल, हि, तव, वन, चेम, न, ( अस्ति इति अह ), विमृशन् , ( इहस्थोऽरि ) पश्यामि, इव ( अत ) वहुदोषकरम् , ( इति ववीमि )

सुधा—उपसहरनि-तदलमित्यादिना । तद् = तस्मात्कारणात् , ते वन=महारण्य, गत्वा = वजित्वा, अल = व्ययम् , हि = यत , तव = भवत्या , चेम = कल्याण, न ( अस्ति इति अह ) विमृशन् = तश्यदीपान् , विचारयन् , ( इहस्थोऽपि ) पश्यामि इव=अवलोक्यमीव, ( अत ) वहुदोषकरम् = अनेकारचिजनक, वन = महारण्यम् , ( इति ववीमि )

इन्दुमती—( अन्तमें रामचन्द्रजीने कहा—है सीते ! ) वनमें (उपर्युक्त बहुत ही कष्ट होते हैं ) अत तुम वनजानेकी अभिलाषा मत करो । वनमें तुम्हारा कल्याण नहीं होगा । मैं विचार कर ( सीता-हरण वृत्तान्त यादकर ) देखता हूँ तो मुझे वन बहुत ही कष्ट-प्रद मालुम पड़ता है ।

वन तु नेतु न कृता मतिर्या, वभूव रामेण तदा महात्मना ।

न तस्य सीता वचन चकार तं ततोऽवरोद्धाममिदं सुदु खिता॥२६॥

अन्वय —यदा, तु, महात्मना, यमेण, वन, नेतु, मति, न, इता, वभूव, तदा, तस्य, वचन, सीता, न चकार, तत , सुदु खिता, ( सती ) त, रामम् , इदम् , आव्रवीद ।

सुधा—यदा=यस्मिन् काले महात्मना=विद्यालहृदयेन, रामेण=स्वप्निना, वन = महारण्य, नेतु = प्रारथितु, मति = निष्पत्ति, न इता वभूव = न विहितेत्यर्थ , तदा=तस्मिन् काले, तस्य = रामस्य, वचन=वनगमननिषेधक्वाक्य, सीता=चैदेही, न चकार=न स्वीचकार, भवतैव न वाच्यमित्यनभिवाद तृष्णीभूय तस्यावित्यर्थ , तद्वचने विश्वास इत्यवतीत्याशय । तत =तदनन्तर, सुदु खिता=

स्वगमननिरोघनिक्षयेनातिदु खिता ( सीता ) त, राम = स्ववल्लभम्, इदम् = उत्तरलग्ने वद्यमाणवचनम्, अब्रवीत् = अबोचत् ।

इति आवाल्मीकीयरामायणेइयोध्याकाण्डे “सुषा” टीकायामष्टाविंश उर्गं ।

इन्दुमतो—( महर्षि वाल्मीकिजी कहते हैं कि ) इस प्रकार कहकर जब महात्मा भीरामचन्द्रजीने सीताजीको बन लेजानेका विचार नहीं किया तब सीता जी उनकी कही बातोको ( बनगमन निषेधक उपर्युक्त सभी कारणोंको ) न मान कर अति दुखिनी होकर कहने लगीं— ।

इस प्रकार इन्दुमती टीकामें अयोध्याकाण्डका अट्टाइतर्थों उर्गं समाप्त हुआ ।

### एकोनविंशः सर्गः ।

#### पतिव्रता सीता

एतत्तु वचनं श्रुत्वा सीता रामस्य दुखिता ।

प्रसक्ताऽश्रुमुखी मन्दमिदं, वचनमन्त् ॥ २ ॥

अन्वय—तु, एतद्, रामस्य, वचनं, श्रुत्वा, दुखिता, (अत एव) अधु मुखी, प्रसक्ता, सीता, मन्दम्, इदं, वचनम्, अप्रवात् ।

सुषा—अग्रिमप्रन्थसङ्गतिप्रदर्शनायानुपशेषमप्यर्थकथयाह-एतदिदि । ‘द’ इनि पादरूपार्थक । एतत्=विरहसूत्रक, रामस्य=स्ववल्लभस्य, वचनम्=वाक्यम्, श्रुत्वा=श्रावण्य, दुखिता=क्लेशिता, (अत एव) अधुमुखी=नयनविन्दुयुक्तानना, प्रसक्ता=पतिविप्रियकास्यनुगग्नुका, सीता=वैदेही, माद=शनै, इदं=वद्यमाण, वचन=वाक्यम्, अप्रवात=अबोचत् । पूर्वसर्गाते “इदं” मित्यभिहितेऽपि विशेषण-विशेषकथनार्थमिदपदस्य पुनरिहोगदानम् ।

इन्दुमती—( महर्षि वाल्मीकिजी कहते हैं— ) रामचान्द्रजीके इस प्रकारके (वनवासमें बड़ा कष्ट है अत तुम यहीं रहो) वचन सुनकर सीताजी बहुत दुखिनी हुईं, उनके नेत्रोंमें आदूउमड़ आये । वे अनुपर्ण मुखसे धीरे धीरे विनय पूर्वक ( पुन ) रामचन्द्रजीसे कहने लगीं— ।

ये त्वया कोत्तिता दोषा घने वस्तव्यता प्रति ।

गुणानित्येव तान्वदि तव स्नेहपुरस्कतान् ॥ २ ॥

अन्वय—घने, वस्तव्यता, प्रति त्वया, ये, दोषा, कोत्तिता, तान्, तव, स्नेहपुरस्कृतान्, गुणान्, इत्येव, विदि ।

**सुधा**—तद्वचनमेव प्रतिगादयति—ये त्वयेति । वने=महारण्ये, वस्तव्यता=वास, प्रति, त्वया = भवता, ये=पूर्वोक्ता, दीशा = आपत्तय, कीर्तिता = कथिता, तान् = दीशान्, तथ स्नेहपुरस्कृतान् = त्वनिष्ठप्रेमपुरस्कृतान्, गुणान् = हिन्दीकान्, इत्यैव विद्धि=इत्यैव जानीहि । प्रेयता भवता उह वर्चमालाण मम कलहसकोक्तिलालापचन्दनमलयरवनवदानन्ददायकान् ताज्ञानीहीत्यर्थ ।

**इन्दुमती**—( सीताजीने कहा—हे नाथ । ) वनवासके प्रति जिन २ दीक्षोका उल्लेख आपने किया है उन सभोंको गुण ही जानिये, क्योंकि वे सब आपके स्नेहके सामने मुक्ते गुणवत् प्रतीत हो रहे हैं ।

**मृगः** सिंहा गजाक्ष्यैव शार्दूला सरभास्तव्या ।

**चमरा:** सुमराक्ष्यैव ये चान्ये वनचारिण ॥ ३ ॥

अहष्टपूर्वरूपत्वात्सर्वे ते तव राघव ॥

रूप हृष्टाऽपसर्पेयुस्तव सर्वं हि विम्यति ॥ ४ ॥

**आन्वय.**—मृगा , सिंहा , च , गजा , तथा , शार्दूला , शरभा , चमरा , सुमरा , च , ये च अन्ये एव, वनचारिण , ते, सर्वे, हे राघव ।, अहष्टपूर्वरूपत्वात्, तव, रूप, दृष्टा, अपसर्पेयु , हि, सर्वे, तव, विम्यति ।

**सुधा**—मृगा = इरिणा , सिंहा = मृगेन्द्रा , च = पुन , गजा = इस्तिन , एव = अपि, एवकारोऽप्राऽप्यर्थको भाव एवमप्रेऽपि । तथा, शार्दूला = व्याघ्रा , शरभा = अहष्टपादवन्तो मृगविशेषा , चमरा = कृष्णसारसूगविशेषा , सुमरा = गवया , च = पुन , ये च अन्ये एव = एतदतिरिक्ता अपि, वनचारिण = वनपर्यटनकारिणो वराहादय , ते, सर्वे = निखिला , हे राघव = राम ।, अहष्टपूर्वरूपत्वात् = अहष्टम्-अनवलोकित, पूर्व-प्राक् , रूप-स्वरूप ये तेया भावस्तस्मात् अहष्टपूर्वरूपत्वात्, तव = भवत , रूप = स्वरूप, दृष्टा = अवलोकय, अपसर्पेयु = अपत्वेयु , पत्तायिता भवेयुत्तिर्थ , हि = यत , सर्वे=से पूर्वोक्ता , तव = त्वत्, विम्यति = त्रस्यन्ति त्वचो भय प्राप्नुवन्तीत्यर्थ ।

**इन्दुमती**—(सीताजीने कहा—) हे राम । मृग, सिंह, हाथी, व्याघ्र, शरभ ( आठ पैरोका जनुविशेष ), कृष्णसारसूग और सुमर ( नीलगाय ) तथा और भी जो वनमें विचरन करने वाले ( दु लदायी ) जीव जन्मते हैं वे सब भी आपके इस अपूर्व रूपको ( पहले पहल ) देखकर माग जाऊंगे क्यों कि वे सब आपसे ( बनुपष्टारियोंसे ) डरते हैं ।

त्वया च सह गन्तव्य मया गुरुजनाहया ।

त्वद्वियोगेन मे राम ! त्यक्तव्यमिद्व जीवितम् ॥ ५ ॥

अन्वय — हे राम ! गुरुजनाहया, त्वया, सह, मया, च, ( वन ) गन्तव्य, त्यक्तव्योगेन इह जीवित त्यक्तव्यम् ( भवेत् ) ।

सुधा— हे राम = स्वामिन् !, गुरुजनाहया = पित्रोराहया, त्वया = भवता, सह, मया च = सीतया च तव पत्न्या, ( वन ) गन्तव्य = प्रब्रजितव्यम्, जायाप ल्योरेकारथक्त्वात् त्वज्जिदेशेनैव ममाऽप्यादेशो जात इत्याशय । यद्धा—“इय सीता मम सुता छायेवाऽनुगता सदा” इति मत्तिनादाशयोक्तरीत्याऽपि त्वया सह मया गन्तव्यमित्यर्थं । त्वद्वियोगेन=भवद्विहरण, इह, जीवितम्=जीवन, त्यक्तव्य=परित्याज्यम्, ( भवेत् ) तस्मादवश्य नेतृत्वमित्यमिश्रायः ।

इन्दुमती—( सीताजीने कहा—) हे आर्यपुत्र राम ! मुझको विता-माता आदि गुरुजनोंकी आशा है कि मुझे आपके साथ चलना चाहिये ( सुख-दुःखमें बराबर आपके साथ रहना चाहिये ) । अत ऐ नाय ! यदि आप मुझको वन साथ नहीं ले चलेंगे तो मुझे आपके वियोगमें प्राणोंको त्याग देना पड़ेगा ।

नहि मा त्वत्समीपस्थामपि शक्नोति राघव ॥ ६ ॥

सुराणमीश्वर शक प्रघर्षयितुमोजसा ॥ ६ ॥

अन्वय — हे राघव ! त्वत्समीपस्था, मा सुराणाम्, ईश्वर, शक, अपि, ओजसा, प्रघर्षयितु, नहि, शक्नोति ।

सुधा— हे राघव = राम !, त्वत्समीपस्था = भवन्निकटवर्त्तिनो, मा = तव जाया, सुराणा = देवानाम्, ईश्वर = राजा, शक = ईद्र, अपि, ओजसा = स्वपराकमेण, प्रघर्षयितु = पराभवितु, नहि शक्नोति = नहि समर्थो मवितुमईति । यत्र सुराणिपस्थेय दशा तत्रान्वेष्या का गणनेत्याशय ।

इन्दुमतो—( सीताजीने कहा—) हे राघव ! आपके साथ रहनेपर ( वनके जानवरोंको कौन कहे ) देवताओंसे स्वामी इन्द्र भी अपने पराकरणसे मेरा कुछ विगाह नहीं तरसता ।

पति हीना तु या नारी न सा शङ्खति जीवितुम् ।

कामदेवचिघ राम ! त्वया मम निदर्शितम् ॥ ७ ॥

अन्वय — तु, या, नारी, पतिहीना, सा, जीवितु, न, शङ्खति, हे राम !, एवदिघ, त्वया, मम, काम, निदर्शितम् ।

**सुषा—** त्रैकिन्तु, या, नारी=छी, पतिहीना=पतिवियुक्ताः, सा=नारी, जीवितु=प्राणान् धारयित, न=नदि, शक्षयति=समर्थो भविष्यति, । इत्य कथ  
शातमत आह—काममिति । ऐ राम=राघव !, एवविषःपतिहीनाया जीवन  
मशक्यमित्येवरूप, त्वया=भवता, मम, कामम्=अत्यर्थ, निदशितम्=उपदि-  
ष्टम्, एव सति भरताऽनुकूलतया व्येद वस्तव्यमित्युपदेशोऽकिञ्चिकर इति  
त्वया सह याद्याम्येवेत्याशय । **यद्वा—** यद्यपि एवविष=उक्तप्रकारेण वनवा  
सदुख, काम, त्वया, मम, निदर्शित, तथापि, ताद्वावने, पतिहीना=स्वामीहीना  
नारी, न जीवितु शक्षयति न तु मादशी प्रवलभत्तृ'केति मम गमने न कापि विप्र  
तिरक्तिरिति भाव ।

**इन्दुमती—**(सीताजीने पुन कहा—) हे राम ! आपही ने तो मुझे यह उप  
देश दिया है कि—पतिब्रता छो पतिके बिना जीवित नहीं रहसकती ( किर क्या  
उमझ कर मुझे बनजानेको नहीं कहते ! ) ।

**अथापि च महाप्राङ्म । ब्राह्मणाना मया श्रुतम् ।**

**पुरा पितृगृहे सत्य वस्तव्य किल मे वने ॥ ८ ॥**

**अन्वय—**अथ, अपि, हे महाप्राण !, पुरा, पितृगृहे, च, मया, ब्राह्मणाना,  
मे, वने, वस्तव्य, किल, ( इति ) सत्य ( वच ) श्रुतम् ।

**सुधा—**स्ववनवासस्यावश्यकत्वं प्रदशयन्ती आह—अथेति । अप अपि=  
वनस्य सदोषत्वेऽपि, हे महाप्राण=महाबुद्धियालिन् !, पुरा=बाल्यावस्थाया,  
पितृगृहे=जनकगृहे, च, मया=सीतया, ब्राह्मणाना=ब्राह्मणेभ्यो उपोतिविदृष्टप ,  
मे=मया, वने=महारथे, वस्तव्य=निवहनीयम्, किल=निश्चयेन, ( इति )  
सत्य=तथ्य ( वच ) श्रुतम् = आकर्णितम् , अतोऽवश्यभावित्वान्मम वनवा  
स्य न दोषगणनेत्यभिप्राय ।

**इन्दुमती—**(सीताजीने कहा—) ऐ महाप्राण ! और पिता के घर रहते समय  
पहले ( वचपनमें ) ही उपीतिषो ब्राह्मणोसे मैं यह बात मुनी यी कि—मुझे बनमें  
निश्चय ही रहना पड़ेगा ( आप महाप्राण ( त्रिकालवित् ) हैं, सायद आपभी  
इस बातको जानते होंगे ) ।

**लक्षणिभ्यो द्विजातिभ्यः श्रुत्वाऽह वचन गृहे ।**

**घनवासकृतोत्साहा नित्यमेव महावल । ॥ ९ ॥**

**अन्वय—**हे महावल ! अह, लक्षणिभ्य , द्विजातिभ्य , (सकाशात्) गृहे,

वचन, श्रुत्वा, वनवासकृतोत्साहा, नित्यम्, एव, ( अस्मि ) ।

सुधा—उक्तमेवार्थं द्रढयति-लक्षणिभ्य इति । हे महाबन=अतुलप० राक्षस ], अह, लक्षणिभ्य =शुभाशुभमूरक्लक्षणशातुभ्य , द्विजातिभ्यः=विप्रेभ्य , ( सकाशात् ) गुहे=पितृभवने, वचन=वनवासबोधकवाक्य, श्रुत्वा=आकर्ष्य, वनवासकृतोत्साहा=वनवासजनिताध्यवसाया, “उत्साहोऽध्यवसाय रथात्” इत्यमर । नित्यम् एव=इत प्रागपि, ( अस्मि ) ।

इन्दुमती—( सीताजीने कहा- ) हे महाबनवार् और राघव । समुद्रिक शाख जाननेवाले ( उन विश्वस्त ) दैवज्ञ बाद्धणोंके मुखमें अपने निता के घरमें ही जब मैंने अपने वनवासकी बात सुनी थी तब ही मे ( उनकी बात सुनकर वचनमें ही, न कि आजसे ) वनजानेका मेरा उत्साह है ।

आदेशो वनवासस्य प्राप्तव्यं स मया किल ।

सा त्वया सह भर्त्राऽह यास्यामि प्रिय । नान्यथा ॥ १० ॥

अन्वय—स, वनवासस्य, आदेश, किल, मया, प्राप्तव्य, हे प्रिय । सा अह, भर्त्रा, त्वया, सह, ( वन ) यास्यामि, अन्यथा, न ।

हुधा—स =ब्राह्मणोक्त, वनवासस्य=वननिवासस्य, आदेश =क्षादेश, किल =निष्ठदेन, मया=सीतया, प्राप्तव्य =भवत्तत्त्वाणांगाङ्गव्य लज्जारुलि त्विनस्यापरित्याकृद्यत्वादित्याशय । हे प्रिय =वल्लभ । सा श्रह=दवमादिष्टाऽह, भर्त्रा=स्वामिना, त्वया =भवता, सह =साधे, ( वन ) यास्यामि=गमिष्यामि, अन्यथा=केवल स्वेच्छुया, न यास्यामीत्यर्थ, एतेन ब्राह्मणवचन भवता अन्यथा न विचेष्यमिति सूचितम् ।

इन्दुमती—(सीताजीने कहा- ) हे प्रिय आर्यपुत्र । वनवासका ( वह जाम-पत्र लिखित दैवशोका कहा ) आदेश मुझे प्राप्त करना ( भोगना ) पड़ेगा और उस तकदीरमें लिखा हुआ वनवासका भोग-करने वाली मैं आपके साथ वन चलूँगी । इसके विररीत नहीं हो सकता ( वह समय आगया है, आप मुझे वन नहीं लेजानेका विफल प्रयत्न मत कीजिये ) ।

कृतादेशा भविष्यामि गमिष्यामि त्वया सह ।

कालव्याऽय समुत्पन्ना सत्यगण् भवतु द्विज ॥ ११ ॥

अन्वय—( हे राघव । ) कृतादेशा ( अह ) भविष्यामि, ( अत एव ) त्वया, सह, ( वन ) गमिष्यामि, अय, कानन, समुत्पन्न, द्विज, स पशाप्, भवतु ।

**सुधा—**मर्यादापालकत्वेन भवदादेशोऽवश्य मविष्यतीत्यतआह कृतादेशेति।  
 ( दे राघव । ) कृतादेशा = कृत - दत्त, आदेश — आशा, यस्यै सा तयोका,  
 यद्धा-द्विजकृतपलादेशा ( अह ) मविष्यामि, ( अत एव ) त्वया=भवता, सह=साक, गमिष्यामि=यास्यामि, अय कालश्च=वनवासकालश्च, समुत्पन्न = सप्राप्त, द्विज,=फलादेषा ब्राह्मण, सत्यवाक्=यथार्थवादी, भवतु = अस्तु । “द्विज” इति जातावेकवचनम् । अत्र द्विजपदेन रावणोऽपि प्राप्त, तेन यद्युवेतदीपे तेनोर्क “लद्धमीनिमित्त त्वत्तो मे वधोऽस्तिव” ति तरसत्य भवत्वित्यपि गूढ सूचितमिति भद्रा ।

**इन्दुमती—**(सीताजीने कहा-हे प्रिय आर्यपुत्र ।) आपके साथ में वन जाऊ गी और कृतादेशा ( जैसा जाम-पत्र देखकर दैवज्ञोने कहा या वैसा-वनवासिनी ) में हो जाऊ गी । हे नाथ ! दैवश ब्राह्मण सत्यवादी हो ( उनका कहा भविष्य फल ठीक हो ) ऐसा यह समय अब आगया है ( आप मुझे वन नहीं जानेश वचन मत दीजिये । मैं आपसे आशा प्राप्त करके ही रहूगी )

वनवासे हि जानामि दुखानि वद्धुधा किल ।

प्राप्यन्ते नियत वीर ! पुरुषैरकृतात्मभिः ॥ १२ ॥

**अन्वयः—**वनवासे, वद्धुधा, दुखानि ( सन्ति इति ) किल, जानामि, हि, ( तथापि ) हे वीर । अकृतात्मभिः, पुरुषैः, ( तानि ) नियत, प्राप्यन्ते ।

**सुधा—**एव तास्त्विकमर्थमभिधाय सप्रति लोकानुसारेण बोधयन्ती आह-वनवास इति । ( अत्र हिरेवायें किलेति निष्पत्ये ) वनवासे = अरण्यवासे, वद्धुधा = नानाविधानि, दुखानि = कलेशा, ( सति इति ) किल = निष्पत्येन, जानामि हि = अवगच्छाभ्येव, ( तथापि ) हे वीर = पराक्रमशालिन् ।, अकृतात्मभिः = अजितेन्द्रिये, पुरुषैः = जरै, ( तानि ) नियत = निष्पत्य, प्राप्यन्ते = लभ्यन्ते, न दुभवा (मा) दृश्यैर्नैरिति भाव । अत्र पुरुषप्रकरणाभावेऽपि तदुक्तिस्त्वयाऽपि सा बुद्धिर्वनवासद्व खद्धा न निवर्त्तनीयेति सूचयितुम् ।

**इन्दुमती—**( सीताजीने कहा-हे वीर आर्यपुत्र ! आपने जो पहले कहा कि वनवासमें अमुक २ कष्ट होते हैं वह ) में जानती हूँ कि निष्पत्य ही वनवासमें नडे बड़े कष्ट होते हैं किन्तु मैं यह भी निष्पत्य जानती हूँ कि यह कष्ट वे हा पाते हैं जो कायर हैं ( न कि आपके ऐसे नितेन्द्रिय वीर पुरुष और न उनके साथ उनकी वीरपत्नी ) ।

कन्यया च पितुर्गेहे वनवास श्रुतो मया ।

भिक्षाएया शमदृत्ताया मम मातुरिहापत ॥ २३ ॥

अन्यय — पितु, रोहे, मम, मातु, अप्रत, शमदृत्ताया, भिक्षण्या, कन्यया, च, मया, वनवास ( भावो इति ) श्रुत ।

सुधा—“सिहावलीक्षन”न्यायेन स्वगमने प्रसाणान्तरमपि दर्शयनि—  
कन्ययेति । ( अब चक्कारोऽप्यर्थक ’ ‘हे’त्यस्याप्रिमश्नोरेऽन्यय ) पितु =  
मिथिलेश्वर्य, गेहे=भवने, मम, मातु =जनन्या, अप्रत =समक्षते, शमदृत्ताया =  
शमादितरम्नाया, भिक्षण्या =कापस्या, कन्यया =पुत्र्या, मया=सीरया वन-  
वास =अरण्यवास, ( भावी इति ) श्रुत =आकर्षित ‘शमदृत्ताया’ इत्यनेन  
तरकन्योऽपन्यथा न भवितेति च्छनितम् ।

इन्दुमती—( सीताजीने कहा—हे आर्यपुत्र ! मेरा वन जाना निष्पत्त  
है क्योंकि—) जब मैं वचनमें अपने विता महाराज मिथिलेशके घरमें रहती थी,  
तभी मैंने माताके सामने एक बाल ब्रह्मवारिणा साध्वी तपस्विनी कन्या के  
मुखसे भी अपने इस वनशास्त्री बात सुनी थी ।

प्रसादितश्च वै पूर्वे त्वं मे वहुतिथ प्रभो ॥

गमन वनवासस्य काढिद्वृत्त हि सह त्वया ॥ २४ ॥

अन्यय — हे प्रभो !, च, इह, पूर्वे, त्वं मे, वहुतिथ, वनवासस्य, गमन,  
( प्रति ) प्रसादित, व, ( अत ) हि, त्वया, सह ( गमन मे ) काढिद्वृत्तम् ।

सुधा—पूर्वकालिकोदन्त गमने सहायमाद—प्रसादित इति । “इह” इत्य-  
नुगदोऽप्यत्यभानेतव्यम्, एवकारप्ये वै इनि ( हि निष्पत्ते ) । हे प्रभो=स्वामिन् ।  
च=तथा, इह=अस्मिन् यहे, पूर्वे=पूर्वस्मिन् काल, त्वं=भवान्, मे=मया  
सौतथा, वहुतिथम्=अनेकवार, वनवासस्य=अरण्यवासस्य, गमन=नीतार्थ जाह्न  
वीतीरतपेवनादिगमन ( प्रति ) प्रसादितो वै =प्रायिन् एव, ( अत ) हि=निष्पत्तेन,  
त्वया=भवता, सह=एक, ( गमन मे ) काढिद्वृत्तम्=अभिनिष्पत्तम् ( इति जानीहि )

इन्दुमती—( सीताजीने पुनः कहा—मेरे वन गमनमें आमङ्ग प्रस्तुत वन-  
गमन असाधारण कारण नहीं है, प्रत्युत निमित्त मात्र है । क्योंकि—) हे प्रभो !  
इसके पहले भी कितने दिन वन-विहार करनेके लिये मैं आपसे बनजानेकी  
प्रार्थना कर चुकी हूँ । अत है स्वामिन् । आपके साथ बनजानेकी मेरी अभि-  
लामा ( नयी नहीं ) है ।

कृतक्षणाऽहं भद्रं ते गमनं प्रति राघव ! ।

वनवासस्य शूरस्य मम चर्या हि रोचते ॥ १५ ॥

**अन्वय.**—हे राघव !, ते, भद्रम्, ( अस्तु ) अह, गमन, प्रति, कृतक्षणा, ( अस्मि ) हि, वनवासस्य, शूरस्य, चर्या, मम, रोचते ।

**सुधा**—हे राघव = राम !, ते=तद्, भद्र=कल्याणम्, (अस्तु) अह, गमन = वनगमन, प्रति, कृतक्षणा=जातोऽसेवा 'अस्मि' "निव्यांगरस्थितौ । कालविशेषोऽस्तव्यो क्षणं" इत्यमर । हि = यत्, वनवासस्य = वने वासी यस्य तस्य तपोकास्य वननिवासिन इत्यर्थं । शूरस्य = वीरस्य, चर्या = शुश्रूषा, मम रोचने = मत्त्वा रोचने । यद्वा-तादृशास्य, तद्, चर्या-रक्षोवशादिरूपा, मम रोचते मस्तवन्धेनैव शोभते सप्तवत इत्यर्थं इति भद्राः ।

**इन्दुमती**—( सीताजीने कहा- ) हे राघव ! आपका वनगमन प्रति (से) (विश्वका) कल्याण हो । हे राघव ! मुझे भी यह ( जिसके लिये मैं पहले भी प्रार्थना करती थी वह ) समय प्राप्त हो गया है, मैं सदैर्घ्यं वनजानेको तैयार हूँ । हे राघव ! वन में आपके ऐसे अपने वीर पतिकी सेवा करना मुझे बहुत पसन्द है ।

शुद्धात्मन् । प्रेमभावाद्वि भविष्यामि विकल्पया ।

भर्त्तारमनुगच्छुती भर्ता हि मम दैवतम् ॥ १६ ॥

**अन्वय** —हे शुद्धात्मन् !, प्रेमभावात्, हि, भर्त्तारम्, अनुगच्छुती, विकल्पया, भविष्यामि, हि भर्ता, मम, दैवतम् ।

**सुधा**—अब “हि” शब्द प्रसिद्धी ज्ञेय । हे शुद्धात्मन्=स्वच्छान्त करण । प्रेमभावात्=ईध्यादिरहितस्नेहस्वभावात्, हि, भर्त्तार=स्वामिनम्, अनुगच्छुती=अनुयान्ती, विकल्पया=हतपाग, भविष्यामि, त्वया विनाश रथितो हि लोक कल्यण समावयिष्यतीति भाव । नचात्रैव रथित्वा कुनदेवतामाराप्य विशुद्धा भवेत्यन्नाह-भत्तेति । दि=यत्, भर्ता=पति, मम, दैवत=दैवता “वर्तते” इति शेय ।

**इन्दुमतो**—(सीताजीने कहा- ) हे शुद्धान्त करण प्रभो ! यह निष्पत्र है कि प्रेमभावसे (पातिव्रतधर्मानुकूल आचरणसे) आपका अनुगमन करती हुई ( मुख-दुखमें समान भावसे सेवा करती हुई ) मैं पाप रहित हो जाकर्णगी क्योंकि स्वामी ही मेरे ( खोके लिये ) देवता है ।

प्रेत्यभावेऽपि कल्याण संगमे मे सह त्यया ॥ १७ ॥

अन्वय —( हे शुद्धामन् । ), प्रेत्यभावेऽपि, त्यया, सह, मे, सगम, कल्याण, ( मविष्पति ) ।

सुधा—ननु विलक्षणो निरवचिक्षु-नसम्बन्ध किमर्थे प्रार्थ्यत इत्यत आह-  
प्रेत्येति । ( हे शुद्धात्यन् । ) प्रेत्यभावेऽपि=मृत्वा शरीरान्तरपरिग्रहेऽपि, त्यया=  
भवता, सह, मे=सगम, सगम =सयोग, कल्याण =शोभन, दिव्यसुखहेतुरित्यथ ।

इन्दुमतो—( सीताजीने पुन कहा—हे प्रभो । यदि हठ तरह उच्चीपनि-  
सेवा मैने की तो इसलोकमें ही क्या ।) मरनेके बाद परलोकमें भी आपके साथ  
मेरा पुन सुदूर मिलन होगा ( क्योंकि— ) ।

भृतिहि थूयते पुण्या ब्राह्मणाना यशस्विनाम् ।

इहलोके च पितृभिर्या ल्लो यस्य महामते ॥ १८ ॥

अङ्गिर्दत्ता स्वघर्मेण प्रेत्यभावेऽपि तस्य न्ना ॥ १८ ॥

अन्वय —हि, यशस्विना, ब्राह्मणाना, ( मुखात् ) पुण्या, भृति, थूयते ।  
हे महामते ।, यस्य, या, ल्ली, पितृभि, अङ्गि, स्वघर्मेण, दत्ता, सा, इहलोके,  
( तस्य सयोग लम्हते ) तस्य च, प्रेत्यभावे, अपि, ( सयोग लम्हते ) ।

सुधा—प्रेत्यसङ्गमसद्भावे प्रमाणमाह-श्रुतिहित्यादिना । अथ पितृ-  
भिरिति बहुवचन पितामहायपेक्षया । चो मित्रक्रम एवकारार्थे । हि=  
यत, यशस्विना=कीर्तिमता ब्राह्मणाना, विश्राणा, ( मुखात् ) पुण्या=  
सुकृतिज्ञनिका, भृति=उक्तार्थप्रतिपादक आग्नाय, थूयते=आकर्षयते । ता  
भृति पठति-इहेति । हे महामते=महाबुद्धिशालिन् ।, यस्य=पुरुषस्य यस्मै  
पुरुषादेत्यथ । या ल्ली=या काचा, पितृभि=पितृपितामहमात्रादिभि, अङ्गि=  
जलै, स्वघर्मेण=स्वस्वज्ञातीयकायादानघर्मेण, दत्ता=अर्पिता, सा=ज्ञी,  
इहलोके=अस्मिन् सप्तारे, ( तस्य सयोग लम्हते ) तस्य च=तस्यैव, प्रेत्यभावे  
अपि=परलोकेऽपि ( सयोग लम्हते ) ।

इन्दुमती—( सीताजीने कहा—) हे महामते । मैने यशस्वी ब्राह्मणोंके  
मुखसे यह पवित्र वाणी दूनी है कि—इहलोकमें स्व स्व वर्णवर्तुक्ल विवाह  
विधिसे द्वायमें जल लेकर मत्रोच्चारण करके पिता अपनी कन्याका दान जित  
पुरुषको देता है मरनेके बाद परलोकमें भी वही ज्ञी उस पुरुषकी पुन होती है।

एवमस्मात्स्वका नारीं सुवृत्ता हि पतिव्रताम् ।  
नाभिरोचयसे नेतु त्वं मा केनेह हेतुना ॥ १६ ॥

**अन्वय** — एव, हि, इह, पतिव्रता, सुवृत्ता, स्वका, नारी, मा, त्वम्, अस्मात्, नेतु, वैन, हेतुना, न, अभिरोचयसे ( त वद )

**सुधा**— एव = पूर्वोक्तथुतिस्वप्रबलप्रमाणउद्ग्रावेऽपि, हि, इह = सुरा, पतिव्रताम् = पतिवर्मपरायणाम्, सुवृत्ता = शोभनवृत्तान्तविष्णवनकर्त्ता, स्वका = स्वीया, नारीं = पत्नीं, मा = सीता, त्वम्, अस्मात् = श्रयोद्यानगरात्, यदा-अन्दिर्दीर्घात्, नेतु = वन प्रापयितु, केन, हेतुना = वारणेन, न अभिरोचयसे= नेच्छसि ( त वद ) ।

**इन्दुमती**—( सीताजीने कहा— ) हे महामते । लव ऐसा है ( परलोकमें भी पतिव्रता खी अपने पतिको नहीं छोड़ती ) तब अपनी सदाचारिणी पतिव्रता खी मुझ ( सीता ) को किस बारण आप अपने साथ ( वन ) ले जाना पश्चाद नहीं करते ।

भक्ता पतिव्रता दीना मा समा सुखदु खयोः ।

नेतुमर्हसि काकुत्स्थ ! समानसुखदुःखिनोम् ॥ २० ॥

**अन्वय** — हे काकुत्स्थ !, भक्ता, पतिव्रता दीना, सुखदु खयो, समा, समानसुखदु खिनी, मा ( वन ) नेतुम्, अर्हसि ।

**सुधा**— हे काकुत्स्थ=काकुत्स्थवशोऽव ।, भक्ता=तदप्रीत्यनुकूलव्यापार वती, पतिव्रताम्=पतिवर्मपरायणाम्, दीना=दयनीया, सुखदु खयो समा=प्रापयो सुखदु खयोरेकरूपा, समानसुखदु खिनी=तदुत्त्वसुखदु खा, मा, ( वन ) नेतु=प्रापयितुम्, अर्हसि = शक्नोति ।

**इन्दुमती**—( सीताजीने कहा—मुझमें कोई आवगुण नहीं है ) हे नाथ ! मैं आपमें भक्ति-अद्वा रखने वाली दयाका पात्र हूँ, आपके मुखसे सुखी एव अपके दुखसे दुखी रहने वाली पतिव्रता खी हूँ तथा ( यह भी नहीं है कि मैं वनका कष्ट वरदास्त नहीं करूँगी ) मेरे लिये सुख-दुख समान है । अत ऐ काकुत्स्थ ! मैं वन ले जाने योग्य हूँ ।

यदि मा दुःखितामेव वन नेतु न चेच्छसि ।

विपर्मिन्न जल वाऽहमास्थास्ये मृत्युकारणात् ॥ २१ ॥

अन्वय — एव, दुखिता, मा, यदि, वन, नेतु, न, च इच्छसि, ( तदा ) मृत्युकारणात्, विषम्, अग्नि, जन, वा, अहम्, आस्थास्ये ।

सुधा—एवम्=अनेन प्रकारेण, दुखिता=पोडिता, माम्=आत्मज्ञाया, यदि=चेत्, वन=महारथ, नेतु=प्रापयितु न च इच्छसि=नचाऽभिज्ञपसि ( तदा ) मृत्युकारणात्=मृत्युसद्यादु खेतो, विष=गरलम्, अग्नि=वहि, जल=सनिल वा, अहम्, आस्थास्ये=तत्तद् भद्रशादिनिश्चय करिष्ये । विषपक्ष-यादिजनितपीदया विरहक्तेशान्तपता भविनेत्याशय ।

इन्दुमती—( अन्तमें सीताज्ञीने कहा—हे नाम ! मुझमें कोई अवगुण नहीं है पिर भी—) यदि आप मुझ हु लिनी साताको अपने साथ बन नहीं ले । चलेंगे तो मुझे मृत्युके युग्मान कष्ट होगा, अत मैं विष खाकर या अग्निमें बलकर अपवा पानीमें ढूबकर प्राण दे दूगी ।

एव वहुविधत सा याचते गमन प्रति ।

नानुमेने महावाहुस्ता नेतु विजन वनम् ॥ २२ ॥

अन्वय — एव, वहुविध, त, गमन प्रति, सा, याचते, (किन्तु) महावाहु, विजन वन, ता, नेतु न, अनुमेने ।

सुधा—एवम्=उक्तप्रकारेण, वहुविधम्=अनेकप्रकार, ते=प्राणबलम्, गमन=वनगमन, प्रति, सा=सीता याचते=प्रार्थयति ( किन्तु ) महावाहु=आजानुवाहु राम, विजन=स्वप्नप्रभूनिरदक्षजनराहित, वन=महारथ, ता=सीता नेतु=प्रापयितु, न अनुमेने=न स्वीचकार ।

इन्दुमती—( महर्षि वा-मीक्षीकी कहते हैं— ) इस प्रकार सीताज्ञीने अपने साथ वन ले जानेके लिये श्रीरामचन्द्रजीसे बहुत प्राप्यना की परन्तु श्रीरामचन्द्रजी उनको उस निजन दण्डकारण्य वनमें ले जानेको राजी नहीं हुए ( अतएव सीताज्ञीके वचनोका कुछ भी उत्तर नहीं दे सके ) ।

एवमुक्ता तु सा चिन्ता मैथिली समुपागता ।

स्नापयन्तोष गामुष्णैरभूमिर्नयनच्युतै ॥ २३ ॥

अन्वय — एवम्, उक्ता, तु, चिन्ता, समुपागता, सा, मैथिली, नयनच्युतै, उष्णै, अशुभि, गो, स्नापयन्ती, इव, ( तस्यो ) ।

सुधा—एवम्=अनुमतिरोषकवाक्यम्, उक्ता=अभिहिता, तु, चिन्ता=मो सह नेष्ठति नवेति सदेह, समुपागता=प्राप्ता, सा=प्रिदिता, मैथिली=मिथि-

लेशमुता सीता, नयनच्युतै = लोचनस्थन्दितै, उभ्यै = तसै, अधुभि = जलै, गा = भुव, स्नापयन्ती इव=स्नान कारयन्ती इव ( तस्यौ ) ।

**इन्दुमती—**(बाल्मीकिजी पुन कहते हैं—) एव प्रकारेण श्रीरामचन्द्रजीके अनभिमत वचन कहनेपर (रामजी को असम्मन देखकर) सीताजी अत्यन्त चिन्तित हुई ( सिसक-सिसक कर रोने लगीं ) और अपनी आँखोंकी सतह अधुधारणे पृथिवीको तर करने लगीं ।

चिन्तयन्तीं तदा ता तु निवर्त्यितुमात्मवान् ।

कोधाविष्टा तु वैदेहीं काङ्कुतस्थो वद्वान्त्वयत् ॥ २४ ॥

इत्यादें श्रीमद्रामायणे बाल्मीकीय आदिकाव्योऽयोग्याकार्णे  
एकीनश्चित् सर्गं समाप्त ।

**मन्त्रय—आत्मवान्**, काङ्कुतस्थ, तदा, कोधाविष्टा, चिन्तयन्तीं, ता, वैदेहीं, तु, निवर्त्यितु, बहु, असान्त्वयत् ।

**सुधा—आत्मवान्**(१)=धैर्यवान्, “आत्मा जीवे घृती देहे स्वभावे पर मात्मनि” इत्यमर । काङ्कुतस्थ=राष्ट्रव, तदा=तस्मिन् काले, कोधाविष्टा=प्रणयकोपयुक्ता, चिन्तयन्तीं=उद्यगमनोपाय विचारयन्तीं, ता, वैदेहीं=जनका तमजा, तु, निवर्त्यितु=कोप दूरीकर्तुं वनगमनाय मनः प्रत्यावर्त्यितु वा, बहु=अनेकप्रकार ( यथा स्यात्तथा ) असान्त्वयत्=सान्त्ववचनान्यव्रवीदित्यर्थं ।

इति श्री बाल्मीकीयरामायणे अयोग्याकार्णे “सुधा”

टीकायामेकोनश्चित् सर्गं समाप्त ।

**इन्दुमती—**जब रामचन्द्रजीने देखा कि सीताजी बहुत चिन्तित हो गयी हैं तथा मारे कोषके उनके श्वोठ लाल लाल हो गये हैं तब उन्होंने सीताजीको बहुत समझाया, जिससे वे उनके साथ बन न जायें ।

इस प्रकार इन्दुमती टीकामें अयोग्याकाण्डका उन्तीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

(१) यच्चाप्नोति यदादत्ते यच्चाति विषयानिह ।

यच्चास्य सततो भावस्तस्मादात्मेति कथ्यते ॥

## प्रिंशः सर्गः पतिव्रता सीता

सान्तव्यमाना तु रामेण मैथिलो जनकात्मजा ।

बनवासनिमित्तार्थं भर्त्तार्पिदमन्त्रोत ॥ १ ॥

अन्वय — रामेण, सा त्यमाना, तु, जनकात्मजा, मैथिली, बनवासनिमित्ता र्थम्, भर्त्तार्प, इदम्, ( बचनम् ) अब्रवीत् ।

सुधा—सीताहृत्वं वर्णयितुमुपक्रमते—सान्तव्यमानेति । अत्राप्यर्थं तिति । रामेण = स्ववल्लभेन, सान्तव्यमाना तु = विविधवचेभिराश्वास्यमानाऽपि, जनका त्मजा = मैथिलेशमुता, मैथिली = सीता, बनवासनिमित्तार्थं = बनवासहैत्यनुमतिलिङ्गर्थं, भर्त्तार्प = स्वामिनम्, इद = बनव्यमाण ( बचनम् ) अब्रवीत् = अब्रोचत् । जनकात्मनेति विशेषण स्वभूतोचिताचारदाढ्याय ।

इन्दुमती—( महर्षि वाल्मीकिजी कहते हैं कि मारे क्रोधके लालरे औंठ किये देते कर भी ) जब श्रीरामचन्द्रजी भद्राराज जनककी वन्या ( आदि शकि ) मैथिली सीताजीकी ( पुन ) सात्वना देने लगे ( तलेपर नमक छिड़को लगे ) तब ( सीताजीकी क्रोधाग्नि और भी भभक उठी ) वे अपने पति श्रीरामचन्द्रजीको अपने साथ बन ले चलनेके लिये ( पुन '२ ) कहने लगी ।

सा तसुचमसविद्वा सीता विपुलवक्षसम् ।

प्रणयाचाभिमानार्थं परिचिक्षेप राघवम् ॥ २ ॥

अन्वय — उत्तमसविद्वा, सा, सीता, विपुलवक्षस, त, राघव, प्रणयात्, च, अभिमानार्थ, च, परिचिक्षेप ।

सुधा—बचनस्य विशेषस्वरूप प्रनिपादयन्नाह—सेति । उत्तमसविद्वा = वि रहदेहुकात्युद्ग प्राता, सा = जगत्प्रविदा, सीता = मैथिली, विपुलवक्षस = विपुल स्थूल वक्ष उरो यस्य त तथोक्तपीत्तरोर स्थलमित्यर्थं, त = जगत्प्रसिद्ध, राघव = राम, प्रणयात् = स्नेहात्, च = पुन, अभिमानाच्च = अहमस्यानन्येति मा त्यक्तु मयमसमर्थ इत्यद्वाराच, परिचिक्षेप = सोमदासवचनमुच्चारयामात् निनिन्देत्यर्थं ।

इन्दुमती—( वाल्मीकिजी कहते हैं कि पुन इस वारकी प्रार्थनाओं अस्वीकार करते देख ) सीताजी उद्दिग्म होकर मारे क्रोधके कापती हुई विशाल वक्ष - स्थल बाले मदापराक्रमी श्रीरामचन्द्रजीको ( अपनत्यवुद्धया निदर होकर ) फ्रेम और

अभिमानके साथ उपहास पूर्ण शब्दोंमें कहने लगीं (उनकी लिखी उड़ाने लगीं)।  
किं त्वा मन्यत वैदेह पिता मे मिथिलाधिप ।

राम ! जामातरं प्राप्य खिय पुरुषविग्रहम् ॥ ३ ॥

अन्यय—हे राम !, वैदेह, मिथिलाधिप, मे, पिता, पुरुषविग्रह, खिय, जामातर, त्वा, प्राप्य, किम्, अमन्यत ।

सुधा—हे राम = सीन्दर्यमानेष परिभ्रामक राघव !, वैदेह = विदेह कुलोत्तम “कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादय” इति कर्मप्रधानतया वदा चिदपि पत्नीविरहमसहमान इत्यर्थ, मिथिलाधिप = मिथिलाजनपदस्य सम्यप्रक्षक, मे = मम, पिता = जनक, पुरुषविग्रह = वहि पुरुषवेष, खियम् = अन्त स्त्रीत्व भाव, जामातर = दुहितु पति, “जामाता दुहितु पति” इत्यमर, त्वा = त्वा, प्राप्य = लब्ध्वा, किम्, अमन्यत = अवबुध्यत ? तब तत्व न शातवानित्यर्थ । मा परित्यज्य वन गत त्वा यदि पिता मे शृणुयात्तदा त्वां स्येव काचित्पुरुषवेष धृत्वा मत्कन्यासुन्येम इत्यवश्य तत्य हृदि स्यात् किन्तु पूर्वं यदेव निष्ठित स्या तत मां तुम्ह न प्रयच्छेदित्याशय । एतेन पितृभ्रम सूचित । त्वेति त्वामित्यर्थेऽर्थ ।

इन्दुमती—( सीताजीने कहा— ) हे राम ! यदि मेरे पिता मिथिलेष राजविं महाराज जनक यह जानते कि, आप स्वरूप मात्रके पुरुष हैं और किया आपकी स्त्री-सी ( डरपोक ) है तो कभी भी वे आपको अपना दामाद ( मेरे भाग्य विधाता ) नहीं बनाते ( अर्थात् पुन र अतो दुखतर बनम् ) कहर कर सुके बन नहीं लेजाना आप जैसे बीर बोद्धाको शोभा नहीं देता ) ।

अनृत वत् ? लोकोऽयमहानाद्यदि वद्यति ।

तेजो नास्ति पर रामे तपतीव दिवाकरे ॥ ४ ॥

अन्यय—यदि ( मा त्यक्त्वा भवान् बनगमनभार ) वद्यति ( तदा ) वत ! अय, लोक, ( यत् ) रामे, पर, तेज, अस्ति, ( तत् ) तपति, दिवा करे, नास्तीव ( इति ) अश्वानाद्, अनृतम्, वद्यति ।

सुधा—न केवल मणितुरेव भ्रम, एव भवद्वाक्यशब्दणे सर्वेषां आन्तिःस्फुटीभविष्यतीति प्रतिपादयती आह—अनृतमिति । यदि=चेत् ( मा त्यक्त्वा भवान् बनगमनभार ) वद्यति=प्राप्यति ( तदा ) वतेति खेदे “खेदानुकम्भा सन्तोषविस्मयामन्त्रणे वत्” इत्यमर । अय लोक = सप्तारिजन,

( यत् ) रामे, परम् = उत्कृष्ट, तेज = दीपि प्रभावो वा “तेजः प्रभावो दीपी च” इत्यमर । अहित ( तद् ) तरति = किरणे प्रकाशमाने, दिवाकरे = सूर्ये, नास्तीव = न विद्यत इव, ( इति यद् तद् ) श्रक्षागाद् = अबोधाद्, अनृतम् = अस्त्वय, वह्यति = वदिध्यति । एताहक पराक्रमयुक्तोऽपि यदि मा विद्याय भवान् गमिष्यति तद्विषये एताप्तदशा तेजः तपति सूर्ये नास्तीवेति मिष्यैवलोक कथयिष्यतीति भाव । “वक्षयती” तिवद् वह्य प्रापणे, वच परिभाषणे, इत्यनयो रूपम्, एकत्र लृद् अपराङ्मानयतनत्यादेवविवक्षा ।

इन्दुमती—( सीताजीने पुन बहा—हे राम । यदि वनमें आप मेरी रक्षा नहीं कर सकते तो निश्चय ) आप निश्चेत्त शुद्ध हैं, किर मी यदि सहार आपको सूर्यके समान अत्यन्त तेजस्वी (अर्थवा रामके समान सूर्यमें भी तेज नहीं है यहा तक जो) कहता है तो खेद है कि वह अशान वश मिथ्या कहता है ।

किं हि कृत्वा विषण्णस्त्वं कुतो वा भयमस्ति ते ।

यत्परित्यक्तुकामस्त्वं मामनन्यपरायणम् ॥ ५ ॥

अन्वय—त्व, कि, हि, कृत्वा, विषण्ण, वा, ते, कुत, भयम्, अहित, यत्, अनन्यपरायणा, मा, त्व, परित्यक्तुकाम, ‘असि’ ।

सुधा—ननु गमनाभावकारणं स्वयैवाभिषाय लोको बोद्धव्य इत्यत आह—किमिति । त्व, कि हि कृत्वा = त्व कि मनसि विचार्य, विषण्ण = लिङ्गं, “अप्यकार्यशत कृत्वा भत्तव्या मनुव्रवीत” इयुक्तावश्यमरणीयविषये विशाद प्राप्तिनोचितेति भाव । वा = अर्थवा, ते = तव कालाभिनवदृशकोघस्येत्पर्य, कुत = करमात्, भय = त्रास, अहित = विद्यते, यत् = यस्मात् कारणात्, अनन्यपरायणा = नास्ति अन्य त्वदतिरिक्त, परायण = गतियस्या सा ता तथोऽसा, मा, = प्राणबलभा, परिक्तुकाम = परित्यागेच्छुक, “असि” इति शेष । तथा च परित्यागे कारणमहमेव न वेद्यतिलोकान् कथं बोधयिष्यामीति भाव ।

इन्दुमती—( सीताजीने बहा—हे राम । ) क्या विचार कर ( मैने आपका क्या किया ( विगाढ़ा ) है जो आप उदास हो रहे हैं अपवा किससे ( राजा भरतसे तो नहीं ) आप डर रहे हैं जो सुझ जैसी अपनी अनन्य भक्ता प्यारी पक्नीको यहा छोड़कर, घन जाना चाहते हैं ।

द्युमरसेनसुत वीर सत्यवन्तमनुव्रताम् ।

सापित्रोमिव मा विद्धि त्वमात्मवशवत्तिनोम् ॥ ६ ॥

**अन्वय** — युमत्सेनसुत, वीर, सत्यवन्तम्, अनुवता, सावित्रीम्, इव, मान् त्वम्, आत्मवशवच्चिनी, विद्धि ।

**सुधा**—नाऽह परित्यागयोऽयेति बोधयन्ती आह—युमदिति । युमत्सेन सुत = युमत्सेनपुत्र, वीर = पराक्रमवात्, सत्यवन्तम् = “सत्यवान्” इति नामा नम्, अनुवता = तदशवच्चिनी, सावित्रीम् = अश्ववतिपुत्रीम्, इव, मा=सीताम्, त्वम्, आत्मवशवच्चिनी=स्ववशवत्तिनी, विद्धि=जानीहि । तथा च सावित्री यथा पति विना न जिजीविषुरासीत्याऽहमपीत्यवश्य मामपि नयेति भाव ।

**इन्दुमती**—(हे राम !) युमत्सेनके पुत्र वीर सत्यवान् का अनुवर्जन करने वाली सती सावित्रीकी तरह मुझे भी आप अपने वशमें समर्हिये ( अर्यात् जैव सावित्री अपने पतिवे पीछे २ बन गयी थी वैसे मैं भी आपके पीछे २ बन चलूणी ) अथवा यदि एक साधारण—सा राजा युमत्सेनका पुत्र सत्यवान् अपनी खींको बन लेजानेमें समर्थ हुआ तो महापराक्रमी सूर्यवशी महाराज दशरथने पुत्र होकर आप वशमें मेरी (सीताकी) रक्षा नहीं कर सकते ? विकार है आपको ।

न त्वह मनसाऽन्यं द्रष्टाऽस्मि त्वदतेऽनघ ! ।

त्वया राघव ! गच्छेय यथान्या कुलपासनी ॥ ७ ॥

**अन्वय** —हे अनघ !, यथा, अन्या, कुलपासनी, अन्य, ( पश्यति, तथा ) मनसा, अपि, त्वद्, श्रुते, अयम्, अह, न द्रष्टा, अस्मि, ( अत ) द्व, हे राघव !, त्वया, ( वन ) गच्छेयम् ।

**सुधा**—हे अनघ = निष्ठान !, यथा = येन प्रकारेण, अन्या कुलपासिनी = अ या कुलठा खी, अन्य = परपुरुष ( पश्यति ) रमण्यायेति शेष, ( तथा ) मनसा अपि = हृदयेनाऽपि कि पुन शरीरचेष्या, त्वद् त्रृते = त्वदिना, अन्य = परपुरुष, न द्रष्टा अस्मि = नाऽबलोकिताऽस्मि, ( अत ) तु = निश्चयेन, [ हे राघव = राम ], त्वया = भवता, सह ( वन ) गच्छेय = गच्छेयम् ।

**इन्दुमती**—हे राघव ! जैसी कुलठा खी परपुरुषत होती है वैसी ही मुझे मत समझिये । हे अनघ ! ( निष्ठाप ) मैंने आपको छोड़कर पर पुरुषको देखनेकी कल्पना भी मनमें कभी नहीं की अत मैं ( सीता ) आपके साथ ही ( वन ) चलूणी ( पर पुरुष (मरत) के पास मुझे मत छोड़िये ) ।

त्वय तु भायो कौमारों चिरमध्यिता सतोम् ।

शैलूप इव मा राम ! परेभ्यो दातुमिच्छुसि ॥ ८ ॥

अन्य — हे राम ! चिरम्, अस्युपिता, कौमारी, भायाँ, ( तथा ) सती, मा शैलूप, इव, परेभ्य, स्वय, दातुम्, तु, इच्छुसि ।

सुधा—एव दृढपातिन्यप्रदर्शनेऽपि बनगमनाऽननुमतिमेव शात्वा पुनरा सिगति—इत्यमिति । अत तु किमर्थे । हे राम=राघव !, चिर=वह कालम्, अस्युपिता=स्वसमीपवत्तिनी, कौमारी=कुमारभावापना, भायाँ=पत्नी, ( तथा ) सती=सार्वी पतिवतामित्यर्थ, मा=सीता, शैलूप इव=जायाजीवा इव, नटा इत्यर्थ “शैलालिनम्तु शैलूपा जायाजीवा कृष्णश्चिन” इत्यमर । परेभ्य=स्वातिरिक्तेभ्य, भरतादिभ्य इत्यर्थ । स्वयम्=आत्मनैव, दातु=उत्सन्निधी रूपापयितुम्, तु = किमर्थमिच्छनि = वाञ्छुसि ।

इन्दुमती—हे राम ! कौमारावस्था ( १० वर्षकी वास्यावस्था ) में ही विवाहित होकर चिर दिनोंमें आपके पासमें रहनेवाली अपनी सती भायाँ ( मुक्त सीता ) को नटकी तरह अपनेमें भिन्न दुरुप ( भरत ) के पास छोड़ना आप क्यों चाहते हैं ? ।

यस्य पृथ्य च राघात्य यस्य चार्थेऽपद्यत्यसे ।

त्व तस्य भव यश्यश्च विधेयश्च सदाऽनव ॥ ६ ॥

अन्य — हे राम ! यस्य, पृथ्य, च, ( माम् ) आत्य, यस्य, च, अर्थे, ( माम् ) अवश्यसे, हे अनव ।, सदा, तस्य, त्व, वश्य, च, विधेय, च, भव ।

सुधा—पूर्व “तस्मै दत्त नृपतिना” इत्यादिना भरतानुकूल्येन स्थितिशक्ता सम्प्रति तत्परिहारमाद—यस्येति । हे राम=रघुकुलमणे ।, यस्य=भरतस्य, पृथ्य=हित, च, ( माम् ) आत्य=प्रतीयि, यस्य=भरतस्य, च अर्थे = प्रयोजनार्थ ( माम् ) अवश्यसे=निवारयति । यद्वा—यस्य चार्थे=अभिपेक्ष्यप्रयोजननिमित्त, अवश्य से=निगृहीतोऽसि, ए अनव=निष्पाप ।, सदा=प्रवस्तिमन् वाले तस्य=भरतस्य, त्व, चश्य = अनुकूल, च = पुन, विधेय = प्रेष्यश्च, भव, नाह तदनुकूला तदिधेया चेह वसिष्यामोत्यभिग्राय । यद्वा—“माना च मम कौशल्या” इत्यादिना मातर शुभ्रप्रसवेति यदुक्त तत्परिहारमनि-यस्यति । यस्य=मातृजनस्य, पृथ्यमि त्यादि पूखवदेव व्यारयेयम्, तथा चाह तु त्वामनुयास्यामीति तदाशय । अथवा यस्य = मद्रूपजनस्य पृथ्य चात्य, एतावत्यत यस्य चार्थे अवश्यसे=क्रिश्यसि तस्य = जनस्य, त्व वश्यो विधेयश्च भव त्यमेव मद्वचन शृणित्यर्थ ।

इन्दुमती—हे निष्पाप राम ! जिसका हित आप चाहते हैं और जिसके

कारण मुझे बन नहीं ले जाना चाहते अथवा जिसके कारण आपके राज्य, भित्तिमें बाधा पड़ी है उम ( भरत ) के वशमें और उसका आहाकारी आप ही बनें । मैं ( सीता ) उसके वशमें होना अथवा उसकी दासी बनकर रहना नहीं चाहती ।

स मामनादाय बन न त्वं प्रस्थितुमर्हसि ।

तपो वा यदि घातरण्य स्वर्गो वा स्यात्त्वया सह ॥ १० ॥

अन्वय — ( हे राम ! ) स , त्वं, माम् , अनादाय बन, प्रस्थितु, न, अहं  
सि, यदि, तप , वा, अरण्य, वा, स्वर्ग , वा, स्यात् , ( तदि ) त्वया, सह, भवतु ।

सुधा—( हे राम ! ) स = प्रसिद्ध , त्वं, मा=प्राणवस्त्रमाम् , अनादाय=अगृहीत्वा, बन = महारण्य, प्रस्थितु = गन्तु न अहंसि = न शकोषि, तत्र हेतु-  
माद—तपो वेत्यादि । यदि=चेत् , तप = पञ्चान्यादिसाधन चाद्रायणादिक,  
वा = अथवा, अरण्य = महाबन, वा = अथवा, स्वर्ग = देवलोक , स्यात् =  
भवेत् , ( तदि ) त्वया=भवता, सह=सामू ( एव भवतु ) ।

इन्दुमती—( सीताजीने कहा—हे नाथ ! ) जिस ( भरत ) के कारण आपका  
बनवास हुआ है उसीके आधित ) मुझे छोड़कर आप बन ले जाय यह उचित  
नहीं है ( और न मैं ऐसा मान सकती हूँ अत हे नाथ ! ) आपको अपने साथ  
ही मुझे बन ले जाना चाहिये । क्योंकि चाहे आप बनमें—तपस्या करें ( चित्त-इच्छा  
निरोधकर योग—माध्यन करें ), चाहे बन-वास करें ( भिल और विरातकी तरह  
रहें ), चाहे स्वर्ग—वास करें ( वहां पर भी राजकीय सुखसे रहें ) मुझे आपके  
साथ ही रहना उचित है ।

न च मे भविता तत्र कश्चित्पथि परिश्रम ।

पृष्ठतस्तत्र गच्छुन्त्या विहारशयनेऽधिवच ॥ ११ ॥

अन्वय — तत्र, पथि, तव, पृष्ठत , गच्छुन्त्या , विहारशयनेषु, इव, मे,  
कश्चित् , परिश्रम , न च, भविता ।

सुधा—तत्र पथि = यहिमन्महाबनमार्ग, तव=भवत , पृष्ठत = पश्चाद्वागात् ,  
गच्छु त्या = या त्या , विहारशयनेषु = विहार -परिक्रम उद्यानसज्जार इति यावद्  
“विहारस्तु परिक्रम ” इत्यमर । तत्र शयनेषु-स्वापेषु इव, मे = मम सीताया ,  
कश्चित् = कोऽपि, परिश्रम = खेद , न च = नहि, भविता = भविष्यति ।

इन्दुमती—( सीताजीने कहा—हे नाथ ! ) मुझे बन जाते समय मागमें  
कुछ भी परिश्रम नहीं होगा । प्रत्युत आपके पीछे २ चलनेमें मुझे ऐसा सुख प्रतीत

होणा जैसा कि याग-वर्गीचोमें आपके साथ घूमने किरनेसे या आपके साथ शनय करनेसे प्राप्त होता है ।

कुशकाशयरेषोका ये च कण्टकिनो द्रुमा ।

तूलाजिनसमस्पर्शी मार्गं मम सह त्वया ॥ १२ ॥

अन्वय —मार्गं, त्वया, सह, मम, ये, कुशकाशयरेषीका, च, कण्टकिन, द्रुमा (स्यु ते) तूलाजिनसमस्पर्शी (भवेषु) ।

सुधा—२८ सर्गस्थ ‘द्रुमा कण्टकिनश्चैव कुशकाशय भामिनि’॥  
इत्यस्योत्तरमाह—कुशकाशयति । मार्गं=पथि, त्वया=भवता, सह=साक, मम=ठीताया, ये, कुशकाशयरेषीकाभ्यःकुशा—वर्हिप, काणा-पोटगना, “अषो काशमन्त्रियाम् । इन्दुगन्धा पोटगत” इत्यमर । शुण-गुद्रा “सरहरी” इति लोके प्रसिद्धा, “गुन्द्रस्तेजनक गर” इत्यमर । इसीका वृक्षविशेषा, कुशाभ्य, शराभ्य, इषीकाश्चेति ते तथोक्ताभ्य, कण्टकिन =कण्टकवन्ते, द्रुमा =वृक्षा, (स्यु ते) तूलाजिनसमस्पर्शी =तूल-तूलराशि, अजिन-कोमल कदलयादिमृगविशेष चर्म, “कदलीकन्दलीचीनचमूरुप्रियका अषि । समूहश्चेति हरिणा अमी अजिन-योनय” इत्यमर । तूलाजिनयो सम =तुल्य स्तरो येषा ते तथोक्ता (भवेषु) ।

इन्दुमती—(अद्वाहसवा सर्गमें रामचान्द्रजीने कहा या—“द्रुमा कण्टकि नश्चैव कुशकाशय भामिनि” इसीका उत्तर ठीताजी देती है—) हे नाय ! कुश, काश, सरगत, मूँज तथा और भी जो अन्य कटीले चुद हैं वे सब बन जाते समय रास्तेमें मुक्ते दौड़ और मृग-चम की तरह सुधस्तर्शी जान पड़ेंगे ।

महागतसमुद्रत गन्मामपकरिष्यति ।

रजो रमण । तस्मन्ये पराधर्यमित्र चन्दनम् ॥ १३ ॥

अन्वय —हे रमण !, महागतसमुद्रत, यद्, रज, मार्ग, अपकरिष्यति, तद्, पराधर्य, चन्दनम्, इव, मन्ये ।

सुधा—‘अतीव वातस्तिमिरम्’ इति यदुक्त तदुत्तरयति-महेति । हे रमण=वज्रम !, महावातसमुद्रत=महावायूर्खित यद्, रज =धूलि, मार्ग=त्वरत्वचा रिषीम्, अपकरिष्यति=अङ्गोरे पतनन क्लुपोकरिष्यति व्याप्त्यतीति यावत्, तद्=रज, पराधर्य=ध्रेष्ठ, चन्दनमित्र=मलयजम् इव, वासित च-दनचूणमिवेत्य शय । मन्ये=जाने ।

इन्दुमती—(“अतीव वातस्तिमिरम्” सर्ग २८ अंगोक १८ का उत्तर ठीताजी

देती हैं—) हे राम ! वनमें आँधीसे उड़कर जो धूल मेरे शरीरपर पड़ेगी, उसे मैं उत्तम चादन के समान समझूँगी ।

**शाद्वलेषु यदा शिष्ये वनान्तर्वं नगोचरा ।**

**कुथास्तरणयुक्तेषु (१) किं स्यात्सुखतर तत् ॥ १४ ॥**

**अन्वय—** यदा, वनगोचरा, (अ६) वनान्त, शाद्वलेषु, शिष्ये, (तदा) कुथास्तरणयुक्तेषु, (पर्यहेषु सुसात्या मम) तत, किं, सुखतर, स्यात् ।

**सुधा—** “मुप्यते पर्णशश्यासु” इत्यस्योचरमाह—शाद्वलेष्विति । यदा=यस्मिन्समये, वनगोचरा=वग्रामा (अह) वनान्त=वनमध्ये, शाद्वलेषु=द्वीपादियुक्तभूमिषु, वालतृणवत्प्रदेशेष्वित्यर्थ, शिष्ये=त्वया सह स्वपिद्यामीत्यर्थ, (तदा) कुथास्तरणयुक्तेषु=विलक्षणचित्रकम्पलरूपास्तरणविशिष्टेषु (पर्यहेषु त्वया सह पूर्वे सुसात्या अपि मम) तत=शाद्वलशश्यनात्, किं सुखतर स्यात्=किमधिक सुख स्थाप किमपीत्यर्थ ।

**इन्दुमती—** (‘मुप्यते पर्णशश्यासु’ सर्ग २८ श्लोक १० का उत्तर सीताजी देती है—) हे नाथ ! वनमें जाकर जब मैं इरो २ घासकी शश्यापर सोजँगी रथ मुके पलगपर बिछे हुए मुलायम गलीचेपर सोनेके जैसा आत्यन्त सुख प्राप्त होगा।

**पत्र मूल फल यत्त्वमर्तप वा यदि वा यहु ।**

**दास्यसे स्वयमाहस्तय तन्मेऽमृतरसोपमम् ॥ १५ ॥**

**अन्वय—** त्व, पत्र, मूल पत्त, वा, अल्प, यदि, वा, वहु, स्वयम्, आहस्तय, यद्, दास्यसे, तत्, अमृतरसोपमम् ।

**सुधा—** त्व, पत्र=पर्ण, मूल=कन्द, पत्तम् आम्रादि वा, अन्प=स्वरूप, यदि वा=अथवा, वहु=अचिन्त, स्वयम्, आहस्तय=आनोय, यद् दास्यसे=यदर्पयि ध्यसि, तत्=पत्रादिकम्, अमृतरसोपम=पीथूपरसतुल्य “भवेत्” इति शेष ।

**इन्दुमती—** (“यदा लब्धेन सन्तोष” सर्ग २८ श्लोक १३ का उत्तर सीताजी देती है—) हे नाथ ! वनमें भोजनके लिये कन्द मूल, पत्त या पत्र जो कुछ योड़ा या बहुत आप स्वयं ला दिया करेंगे वही मुझे अमृतके ऐसा स्वादिष्ट जान पड़ेगा।

(१) “अखी कुश कुथो दर्भ” अमर। एवं—“कुथास्तरणयुक्तेषु शाद्वलेषु” अर्थाद—हे नाथ ! वनमें जाकर इरो २ घासपर कुश बिलाकर जब मैं सोजँगी तब उसमे बड़कर सुख मुझे कहीं नहीं प्राप्त होगा ।

न मातुर्न पितुस्तत्र स्मरिष्यामि न वेशमन ।

आर्तवान्युपभुजाना पुष्पाणि च फलानि च ॥ १६ ॥

अन्वय —तत्र, आर्तवानि, पुष्पाणि, फलानि, च, उगमुजाना, (अह) न, मातु, न, पितु, न, वेशमन, स्मरिष्यामि ।

सुधा—तत्र=बने, आर्तवानि=तत्तद्वत्तनानि, पुष्पाणि=कुमुमानि, फलनि=आम्रादीनि च उपभुजाना=मक्ष ती, (अह) न, मातु=जनना, न, पितु=जनन, न, वेशमन=पवन, स्मरिष्यामि=वित्तविष्यामि । मातुरित्यादि कर्मण शेषत्वविवक्षया अधीगर्थेत पष्टी बोध्या ।

इन्दुमतो—( सीताजीन कहा—हे नाय ! ) बनवासके समय छह और श्रोमें तत्तद्वत्तुके फल-पुष्पोंका भोजन करती हुई भ न माता, न पिता और न घर की याद कर्त्ता ( अर्थात् मेरा जी बनमे नहीं घबड़ायगा ) ।

न च तत्र तत्र रिञ्जिद्व द्रष्टुमर्हसि विप्रियम् ।

मत्कृते न च ते शोको, न भविष्यामि दुर्भरा ॥ १७ ॥

अन्वय —तत्र, तत्र, ( त्व ) मत्कृते, किञ्चित्, विप्रिय, द्रष्टु, न च, अर्द्धसि, ( तथा मत्कृते ) ते, शोक, च, न ( भविष्यति अत ) दुर्भरा, न भविष्यामि ।

सुधा—तत्र =उक्तहेतो, तत्र =बने, ( त्व ) मत्कृते =मञ्जिमित्त, किञ्चित् त्व=ईषत्, विप्रियम्=अनभिन्नपितम्, द्रष्टुम्=अउन्नोक्तिपु, न च=नहि, अर्द्धसि=शनोषि, ( तथा मत्कृते ) ते=तत्र, शोक्त्व=चिता च, न=नहि, ( भविष्यति-अत ) दुर्भरा=दुखमें भत्तव्या, न भविष्यामि=न स्यामित्यर्थ ।

इन्दुमतो—( सीताजीन कहा—हे नाय ! ) बनमे पूर्वोक्तरूपसे मेरे रहने पर मेरे लिये आपको न तो कोइ अनभिन्नपित कार्य ही करना पड़ेगा और न तो मेरे निये किसी वस्तुकी चिता ही करनी पड़ेगी । अत हे नाय ! मैं बनमे दुखमे भरण शेषण करने योग्य नहा होऊसी (मेरे निये दुख नहीं उठाना पड़ेगा)

यस्त्रया सह स स्वर्गं निरयो यस्त्रया पिना ।

इति जानन् परा प्रीति गच्छ राम ! मया सह ॥ १८ ॥

अन्वय —त्रया, सह, य, ( वास ), स, स्वर्ग, त्रया, विना, य ( वास स ) निरय, इति, परा, प्रीति, जानन्, ( त्व ) गया, सह, गच्छ ।

सुधा—किमचिकजल्पनेन निभितमेक स्क्षेपत शृणिवत्याद—य इति ।

त्वया=भवता, सह=साक, य, ( वास ) स, स्वर्ग=स्वर्गसम, स्वया=भवता, विना, य ( वास स ), निरय=नरकोपम त्वत्स्योगवियोगादन्ये न मे सुखदुःखे स्त इति भाव, इति=एव, परा=वियोगासहा, प्रीति=स्नेह, जानन्=बहुशोऽनुभवन्, ( त्व ) मया सह, गच्छ=यादि । यद्वा त्वत्साहित्येन निरयोऽपि स्वर्गं स्वद्वाहित्येन स्वर्गो निरय इति मम निष्ठय जानन् मया सह गच्छेत्यर्थ ।

इन्दुमती—(सीताजीने कहा) हे राम । ( अधिक मैं क्या कहू ) आपके साथ रहने में मुझे स्वर्गके समान सुख है और आपके विना नरकके समान दुःख है । वह, इस तरहका मेरा प्रेम जानते हुए आप अपने साथ मुझे ले चलिये ।

अथ मामेवमध्यग्रां वन नैव नयिष्यसि ।

विषमद्यैव पास्यामि मा वश द्विपता गमम् ॥ १९ ॥

अन्वय—अय एवम्, ( अपि ) अव्यग्रा, मा, ( यदि ) वन, नैव, नयिष्यसि, ( तदि ) अश, एव, विष पास्यामि, द्विषता, वश मा, गमम् ।

सुधा—कैवल्यवन्मधिनसिद्धान्तमाह—अथेति । अथ=अथवा, एव=मध्या र्थनाऽनन्तरम् ( अपि ) अव्यग्रा=वनवासे दोषानगण्यतां, माम्=आत्मपक्षी, ( यदि ) वन, नैव नयिष्यसि=नैव नैष्यसि, ( तदि ) अश एव=त्वत्सन्निधावेव, विषम्=गरल पास्यामि=भोक्ष्ये, तत्र हेतुमाह—मेति । द्विपता=भरतादीना त्वद्विरहेतुकसर्ववस्तुविषयकप्रीत्यभाव्युक्तानामित्यर्थ । वशम्=अघीन, मा गम=न प्राप्त्यामि तानवलोकयितु न शक्यामीत्याशय ।

इन्दुमती—( अ तमे सीताजीने कहा-हे नाथ ! ) अब इतनी प्रार्थना करनेके अनन्तर भी यदि आप मुझे, जिसे वन-वास सम्बन्धी किसी बातका भय नहीं है, अपने साथ लेचलनेकी राजी नहीं हुए तो मैं आज आपके सामने मैं ही विष-पान कर लूँगी किन्तु वैरियोका ( कैवल्यी और भरतका ) वश होकर यहा नहीं रहूँगी ।

पश्चादपि हि हु. खेत मम नैष्याऽस्ति जीवितम् ।

उजिभतायास्त्वया नाथ । तदेव मरण वरम् ॥ २० ॥

अन्वय—हे नाथ !, त्वया, उजिभताया, मम, पश्चात्, अपि, हु खेत, जीवित, नैव, अस्ति, हि, तदा, एव, मरण, वरम् ।

सुधा—ननु विषमदस्य स्वल्पकालहृतित्वाद्विषपानमकिञ्चित्तरमित्यत आह—पश्चादपीति । हे नाथ =स्वामिन् ।, त्वया =भवता, उजिभताया =स्वत्याया,

मम=सीताया , पश्चात् अपि=विषमदनाशाऽनन्तरमपि, दु लेन=त्वद्विरहकलेशन, जीवित=प्रायधारण, मत्कर्त्तृक्तवद्भावादिसेवन वेति नवितोऽर्थ , । नैव अस्ति=नैव मविष्पति, हि = यत , तदा एव=त्वद्विरहकात् एव, मरणम्=इहलोकत्याग , बर=अभेष्म ।

**इन्दुमतो—**( सीताजीने कहा— ) है नाथ । आपके बन चले जानेके बाद भी तो दु खसे मुझे मरना ही है तो आरसे परित्यका होनेके समय (आपके सामनेमें ) ही मरजाना अच्छा है ।

इमं हि सहितु शोक मुहूर्तमपि नोत्सहे ।

किं पुनर्दशपर्णाणि त्रीणि चैक च दुःखता ॥ २१ ॥

**अन्वय—**इ, दु खिता, इम, शोक, मुहूर्तम्, अपि, सहितु, न, उत्सहे, ( तत्र ) दशपर्णाणि, त्रीणि, च, एक, च, किं पुन ।

**सुधा—**ननु चतुर्दशवर्षानन्तरमिहायमन मम निधितमेव सत्किमर्थमेतादश क्लेश चिकीर्त्यित आह—इयमिति । हि = यत , दुखिता=त्वद्विरहेयातिपी-दिता, इम शोक = त्वद्वियोगजनितशोक, मुहूर्तम् अपि=द्वादशवर्षाणामकालमपि सहितु = मधितु, न उत्सहे = न समर्याऽस्मि, ( तत्र ) दशवर्षाणि = दशहाय नानि, त्रीणि = त्रिवर्षाणि, च = पुन , एवम्=एकवर्ष च, चतुर्दशवर्षाणीर्थ , किं पुन = कि वक्तव्यम् । विरहितया आदी दशवर्षाणि, मरणे त्रीणि दशाणि, अते चैक वर्षे च सममेवामातीति जनयितु विमञ्च प्रतिपादितम् । एतेन बन बासकालसरयाया अतिदुर्शतस्त्व सचितम् ।

**इन्दुमतो—**( सीताजीने पुन कहा—है नाथ । ) मैं आपके वियोग जनित शोकको मुहूर्त भर भी नहीं सह सकती तो चौदह वषके वियोग जन्य दु खको, कैस सह सकूँगी ।

इति सा शोकसतसा विलम्ब्य करण यहु ।

चुकोश पतिमायस्ता भृशमालिङ्ग्य सस्वरम् ॥ २२ ॥

**अन्वय—**शोकसतसा, ( अत एव ) आयस्ता, सा, इति, करण, यहु, विलम्ब्य भृश, पतिम् , आलिङ्ग्य, सत्त्वर, चुकोश ।

**सुधा—**शोकसतसा = शोकपीडिता, ( अत एव ) आयस्ता = आस्त्या-यास प्राप्ता प्रशियिलगात्रोत्यर्थ , सा = सीता, इति = एव प्रकारेण, करण = करण-यरसयुक्त, यहु = अनेकविष, विलम्ब्य = इदिवा, भृशम् = अत्यन्त, पति=बल्लभ

रामम्, आज्ञिज्ञय=याश्चित्य, सत्वर=सशब्द, चुकोश=हरोद ।

इन्दुमती—( अघोलिखित चार श्लोकोंसे बालमीकिनी सीताजीके प्रस्तुत इवरूपका वर्णन करते हैं — ) इस प्रकार रामचन्द्रजीसे कहनेके पश्चात् सीताजी शोकसे सतत हो अनेक प्रकारसे करुणापूर्ण विलापकरके रामचन्द्रजी को आविगमकर, जोरसे रोने लगी ।

सा विदा यहुभिर्दाक्यैदिंग्धैरिति गजाङ्गना ।

चिरसनियत वाप्प मुमोचाग्निमिवारणि ॥ २३ ॥

अन्वय—दिग्धै—विदा, गजाङ्गना, इति, यहुभि, वाक्यै, ( विदा ) सा, चिरसनियत, वाप्पम्, अग्निम्, अरणि, इति, मुमोच ।

सुधा—दिग्धै=विषयितवाणी, विदा=व्यथिता, गजाङ्गना=करिणी, इति, यहुभि=वियोगादिसूचकै, वाक्यै=ममोक्तै ( विदा ) सा=सीता, चिरसनियत=यहुकालनिश्चद, वाप्पम्=अन्ताश्चमाणम्, अग्निम्=वह्निम्, अरणि इति=वह्निमन्थनकाष्ठमिव मुमोच=तत्त्वाज । सधर्यितारणि यथा वह्नि मुखति तथैव रामवाक्यैविदेय वाप्प मुश्चिनवतीति भाव ।

इन्दुमती—विषाक्त वाणोंसे व्यथित इथिनीकी तरह श्रीरामचन्द्रजीके बच नोंसे विद्व सीताजीका दृष्ट एक लालसे एक हृथा आसू वैसे ही प्रकट हुआ, जैसे अरिणीसे आग प्रकट होती है ( 'अरिण' का पूर्व विशेषका नाम है रगड़ने पर इससे आप निकलती है जो कि विशिष्ट यशादिमें काम आती है ) ।

तस्या स्फटिकस्काश वारि सन्तापसम्भवम् ।

नेत्राभ्या परिसुखाव पद्मजाभ्यामिवोदकम् ॥ २४ ॥

अन्वय—पद्मजाभ्याम्, उदकम्, इति, सन्तापसम्भव, स्फटिकसङ्काश, तस्या, वारि नेत्राभ्या, परिसुखाव ।

सुधा—पद्मजाभ्या=नीलोत्तलाभ्याम्, उदक=मकर दृष्ट तदृष्टपुष्ट निर्मल च भवति तदिव सन्तापसम्भव=वियोगधूतिइनुकरन्तापजनित, स्फटिकसङ्काश=स्फटिकसूक्ष्मगुटिकावज्ञासमान, तस्या=सीताया, वारि=नयनजल, नेत्राभ्या=लोचनाभ्या, परिसुखाव=परिस्पन्द ।

इन्दुमतो—सीतानीकी आखोंसे स्फटिक प्रस्तरकी तरह श्वेत श्रांमुओङी चूदे वैसे ही टपकने लगी जैसे कमलोंसे पानीकी चून्दे टपकती है ।

तत्सितामलच्चद्राभ मुखमायतलोचनम् ।

पर्यशुभ्यत वाष्पेण जलोदृतमिग्राम्बुजम् ॥ २५ ॥

अन्यय — उत्तामलच्चद्राभ आपतलोचन, तत्, मुख, जलोदृतम्, अम्बुजम्, इव, वाष्पेण, पर्युभ्यत ( इव ) ।

सुधा—उत्तामलच्चद्राभ = सिते—शुक्रगच्छ, अमन -- राहायनुपरक्तवेन निर्मल, यश्चाद् पूर्णिमाचाद्र इत्यर्थ, तस्य आभा सादृश्य यत्र तद् तथोक्तम्, आयतलोचनम् = आयते-दीर्घे, लोचने-नयने यत्र तत्त्वोक्तम् शृगमयनमित्यर्थ, तत् = प्रदिद्ध, मुख = साताया ग्रानन, जलोदृत = जल-पव, उदधृत--निस्तु यस्मात्तथोक्तम् आहितायादित्वात्समाप्त । अम्बुज = कमलम्, इव, वाष्पेण = सतापननितोभ्यणा, अम्बुजपच्छे उध्मरोत्यर्थ, पर्युभ्यत इव = शोदण्यमत्तमन इव, इवेत्युभयान्वयी ।

इन्दुमती—पूर्णिमाके उक्तव्य पूर्णचाद्रके समान देवीप्यमान तथा वडे वडे नेत्रोंसे अति सुशोभित सीताजीका मुखमण्डल शोक-सातापसे उसी तरह सुरभा गया जैसे जलसे निकला हुआ कमल सुरक्षा जाता है ।

ता परिष्पज्य वाहुम्या प्रिसक्षामित्र दुखिताम् ।

उवाच वचन राम परिविश्वासयस्तदा ॥ २६ ॥

अन्यय — तदा, राम, दुखिताम्, ( अत एव ) विसक्षाम्, इव, ता, वाहुम्या, परिष्पज्य, परिविश्वासयन, ( सन् ) वचनम्, उवाच ।

सुधा—तदा = उस्मिन् काले, राम, दुखिता = विषोगथरणहेतुकुरु खाकान्ताम्, ( अत एव ) विसक्षाम् इव = चेतनारहितामिव, ता = प्रेयसा सीता, वाहुम्या = दीर्घी, परिष्पज्य = परिम्य, परिविश्वासयन् = साहित्यगमने विश्वास सुखादयन् ( सन् ) वचन = वद्यमाणवाक्यम्, उवाच = उक्तवान् ।

इन्दुमतो—( इस प्रकार जब सीताजीका रोते २ सुदर इरुल औहत होगया तब ) भीरामचन्द्रना मूर्च्छितप्राय भीर शाक-सातस सीताजीको अपनी दोनों विश्वान मुजाओंसे आनिगन कर प्रिश्वास दिलाते हुए कहने। लगे— ।

न देवि ! तत्र दुखेन स्वर्गमप्यभिरोचये ।

नहि मेऽस्ति भय किञ्चित्स्पय भोरिय सर्वतः ॥ २७ ॥

अन्यय — है देवि !, तत्र, दुखेन, स्वर्गमपि, न, अभिरोचये, स्वयम्भो, इव, सर्वतः, मे, किञ्चिद्, भय, नहि, अस्ति ।

सुधा—तद्वचनमेव वर्णयन्नाह—नेति । हे देवि = सीरे ।, तव=भवत्या, दु खेन = कलेशेन, स्वर्गमपि न अभिरोचये = नाभिनषामि, त्वयि दुखिताय प्रातस्वर्गमपि नेच्छामीत्यर्थ, तेन त्वा सह नेष्यामीति व्यञ्जितम् । यत्र पूर्वोक्त मयादिक तदप्यकिञ्चित्करमित्यत आह—नहोति । स्वयम्भो = नारायणस्य, सर्वत = सर्वजनतुम्य, मे = मम, किञ्चित् = अन्तपमपि, भय = भीति, नहि अस्ति = नहि विद्यते । अत्र “स्वयम्भु”पदेन चतुर्मुखो न भाद्रस्तस्य मधुकैट भादिदैत्येन्यो भयसम्भवात् ।

इन्दुमती—( रामचन्द्रजीने कहा— ) हे देवि । तुम्हारे कष्टसे सुक्ष्मे स्वगती भी अभिलापा नहीं है । ( वनमें तुम्हारी रक्षा में नहीं कर सकूगी ऐसा तुम्हारा समझना गलत है क्योंकि ) सुक्ष्मे कुछ भी भय नहीं है । जैसे ब्रह्माजी निर्मय है वैसे मैं भी सचतरहसे निर्भीक हूँ ( किन्तु- ) ।

तव सर्वमभिप्रायमविज्ञाय शुभानने ॥

वास न रोचये अरण्ये शक्तिमानपि रक्षणे ॥ २८ ॥

अन्वय—हे शुभानने !, तव, सर्वम्, अभिप्रायम्, अविज्ञाय, रक्षणे, शक्तिमान्, अपि, ( अहम् ) अरण्ये, ( तव ) वास, न, रोचये ।

सुधा—ननु गमननियेषकवाक्य पूर्व त्वया कथमुक्तमित्यत आह—तवेति । हे शुभानने=शुभ=दर्शने मङ्गलदायकम्, आनन-बदन यस्या तत्समुद्दीरणम् । तव = भवत्या, सर्व=सहगमनविषयकसमग्रमान्तरम्, प्रभिप्रायम्=आशयम्, अविज्ञाय=अबुद्ध्वा ( तत एव हेतो ) रक्षणे=त्राणे, शक्तिमान् अपि = सामर्थ्यवानपि, ( अहम् ) अरण्ये=विपिने, ( तव ) वास=स्थिति, न रोचये=न कामये, नाहीकृतवान् “इत पूर्व”मित्याशय । एतेन त्वदमिप्रायविज्ञानार्थे—नेद पूर्वमभिहितमिति अविनितम् ।

इन्दुमती—( रामचन्द्रजीने कहा—हे साते । वनमें मैं भली-पाँति तुम्हारी रक्षा कर सकूगा किन्तु) हे शुभानने ! सुक्ष्मे तुम्हारे मनका अभिप्राय शात नहीं या अत शक्तिमान् होकर भी मैं तुम्हारा वनजाना पसाद नहीं करता या ।

यत्सृष्टासि मया साध्यं वनवासाय मैथिलि ॥

न विहातु मया शक्या प्रीतिरामवता यथा ॥ २९ ॥

अन्वय—हे मैथिलि !, यत्, मया, साध्यं, वनवासाय, ( ग-तु ) सृष्टा, असि, ( अन ) आत्मवता, यथा, प्रीति, विहातु, न, शक्या, ( तथा त्व ) मया विहातु, न, शक्या ।

**सुधा—**हे मैथिलि = मिथिनादेशोत्तमे । यत् = यस्मात्कारणात्, मया = रामेण, सार्थ = साक, वनवासाय = दण्डकारण्यनिवासाय ( गन्तु ) सुधा असि = निश्चय प्राप्ताऽसि, यद्वा—सप्ताऽसि=अवनीणाऽसि, ( अत् ) आत्मवता=परमा त्वंविषयकविज्ञानवता, अतिकृच्छाऽवस्थायामप्यक्षुमितमनस्वेन वा, यथा = येन प्रकारेण, प्रेति = परमात्मविषयकत्वेह दया वा, विहातु = परित्यक्तु, न रुदया = नार्हा ( तथा त्व ) मया = रामेण, विहातु न शक्या = न योग्या ।

**इन्दुमती—**( रामच द्रजीने पुन कहा—) हे मैथिलि । यदि मेरे साथ बनवासक लिये तुम ब्रह्मासे बनाई गयी हो (एतदर्थ ही तुम्हारा जाम हुआ है) तो मैं तुम्हें वैसे ही छोड़कर नहीं जा सकता, जैसे कि शीलवान् अपनी शीलता को नहीं छोड़ता ।

**धर्मस्तु गजनासोऽहं । सन्दिरावरितं पुरा ।**

**त चाहमभुवतिष्ये यथा सूर्यं सुवर्चला ॥ ३० ॥**

**अन्वय—**हे गजनासोऽहं !, ( य ) धर्म , पुरा, सन्दि , आचरित त, च, धर्मम् अहम् , अनुवतिष्ये, ( त्व च ) सूर्यं यथा, सुवर्चला, ( अन्वर्वर्तत तथा मामनुवर्तत्व )

**सुधा—**सपक्षोक्तिमिद बनगमन न रागप्राप्त भवति, किंतु शिष्टाचारसिद्धमिति प्रतिपादयन्नाह—धर्मस्त्विति । हे गजनासोऽहं=इतिशुश्रावहस्यजह्वे ।, ( य ) धर्म = श्रुतिस्मृत्युदित , पुरा = पूर्वकाले, सन्दि = सपनीके राजविभि , आचरित = अनुष्ठित “वर्त्तते” इति शेष । त च = पूर्णचरितज्ञ, धर्मम् अहम् , अनु वतिष्ये=प्रबर्त्तयिष्यामि, ( त्व च ) सूर्यं=दिवाकर, यथा=येन प्रकारेण, सुवर्चला=एतनाम्नी तत्स्वामी, ( अंवर्वर्तत तथा मामनुवर्तत्व )

**इन्दुमतो—**( रामच द्रजीने कहा—) हे गजनासोऽहं ( हाथी ) के सूडके समान सु-दर जाध वाली सीते ।) पहले के सज्जनलोग जैसा धर्माचरण करनुके हैं उसीका अनुसरण मैं भी करूँगा और तू भीं कर । जैसे सुवर्चला देवीजी अपने पति भगवान् सूपका अनुसरण करती हैं वैसे ही तू भी मेरा अनुसरण कर ।

**न खरयह न गच्छेय यत्त जनकनन्दिति ॥**

**चवन तन्नयति मा पितु सत्योपवृहिनम् ॥ ३१ ॥**

**अन्वय—**सत्योपवृहित, पितु , ( यत् ) तद् , चवन, मा, ( यत् ) नयति, ( अत् ) हे जनकनन्दिति । खलु, अह, वन, न, गच्छेयम् , ( इति ) न, ( छिन्तु गच्छेयमेव ) ।

**सुधा—**मम वनगमन तु निश्चितमेवेति प्रतिपादयन्नाह—न खल्विदि सत्योवृहितं सत्यसयुक्त, पितृ-मत्तारत्य, ( यत ) तद् वचनं=तद् वन् ( “जटादलैलस्युतश्चतुर्दशवर्षीणि वने वस” इति वाक्य ) मा, ( वन ) नयति=प्रापयति, ( अत ) हे, जनकनन्दिनि=जनकानन्दविद्यायिनि, सीरे !, मूलु=निश्चयेन, अह, वन =महारण्य न गच्छेय=न वनेयम् ( इति ) न ( पितृ गच्छेयमेव ) नवदूय प्रकृतमर्थं द्रढीकरोति ।

**इन्दुमती—**(रामचन्द्रजीने कहा—) हे जनकनन्दिनि ! मैं वन नहीं लाउँगा ऐसा भी नहीं हो सकता, क्योंकि सत्यके पाथमें बधे हुए पिताजीका वचन मुझे वन ले जा रहा है ( अह उनका वचन-पालन करनेके लिये निष्ठय ही मुझे वन जाना होगा ) ।

एष धर्मस्तु सुथोणि ! पितृमातुञ्च वद्यता ।

माहा चाऽह व्यतिक्रम्य नाऽह जोवितुमुत्सहे ॥ ३२ ॥

**अन्वय—**हे सुथोणि !, पितृ, मातुञ्च, वश्यता, एष, तु, धर्म, अह, ( तयो ) आशा च, व्यतिक्रम्य, जीवितुम्, अह, न, उत्सहे ।

**सुधा—**ननु यदि तत्र तव नेच्छा तदा पितुर्वचनमुल्लङ्घयाऽव्यत्रैव निष्ठेत्यत आह-एष इति । हे सुथोणि = शोभुना! ओणि -कठि यस्या सा तत्कम्बुद्धो पितु =नातस्य, मातुञ्च=मनन्याञ्च, वश्यता=‘जीविते याक्यकरणादि’ ति वाक्याद अधीनना, एष = अय, तु=हि, धर्म =श्रेयस्कर, अह ( तयो ) आशाम्=आदेश, च, व्यतिक्रम्य =उल्जङ्घय, जीवितु=प्रजापालनाय प्राप्यान् धारयितुम्, अह, न उत्सहे=नात्यवस्थे नेच्छामीति भाव ।

**इन्दुमती—**(रामचन्द्रजीने कहा—) हे सुथोणि ! ( सुदूर क्षर माली ) माता-पिताकी आशाका पालन करना ( उनके अधीनमें रहना ) पुत्रका धर्म है । माता-पिताकी आशाका उल्जनन कर मैं जीता भी नहा चाहता ।

अस्वाधीन कथ दैव प्रकारैरभिराध्यते ।

स्वाधीन समतिक्रम्य मातर पितर गुरुम् ॥ ३३ ॥

**अन्वय—**स्वाधीन, मातर, पितर, समतिक्रम्य, अस्वाधीन, दैव, प्रकारै, कथम्, अभिराध्यते ।

**सुधा—**ननु मादृपितृवचनगानन, दैवमाराध्यस्माभिरत्रैव वर्त्तव्यमित्यत आह-अस्वाधीनमिति । स्वाधीन = प्रत्यक्षस्वचेत्या आयचन्, “अधीनो निम-

आयत् " इत्यमर । मातर = जननी, पितर = लात, गुरु = वशिष्ठ, समतिकम्भ = गरिमज्य, अस्त्वावीनम् = अप्रत्यक्षत्वेन प्रत्यक्षत्वनेवायत्तवरहितम्, यद्वा-अस्त्वा-वीनम् = आराधकानधीन स्वत्र ब्रह्मिति यावत् । दैव = देवता, प्रकारे = मावना मात्रकाप्याराघनप्रकारै, कथ = केन प्रकारेण, अभिराघ्यते = सेव्यते, तथा च गुस्तादृष्टपर्येनैवाशमाभि देवा आग्नेयनीया नावयेत्याशय ।

इन्दुमती—( रामचन्द्रजीने पुन कहा-हे सीते । दैवमे भी बढ़कर माना, पिता और गुरु होते हैं क्योंकि- ) दैव स्वाधीन ( प्रत्यक्ष ) नहीं है, उसकी आयधना मावनामात्रसे ही मनुष्य करसकता है, किन्तु—माता, पिता और गुरु वो स्वाधीन ( प्रत्यक्ष ) हैं, अत एव उनकी आशाका उल्लङ्घन नहीं करना चाहिये ।

यत्र व्रय त्रयो लोका पवित्र तत्सम भुवि ।

नाम्यदस्ति शुभापाङ्गे ! तेनेदमभिराघ्यते ॥ ३४ ॥

अन्वय — हे शुभापाङ्गे ।, यत्र, व्रय, ( मवति तथा ), ( प्रय लोका , ( आराधिता भवति, अत ) तत्सम, पवित्र, भुवि, आयत्, न, अस्ति, तेन, इदम्, अभिराघ्यते ।

सुधा—हे शुभापाङ्ग=शुभ-शुभलक्षणसयुग्म्, अपाङ्ग-त्रेत्रप्रान्त यस्या तत्समुद्दी । यत्र = मात्राद्याराघने सति, व्रय = धर्मार्थकामरूप ( भवनि, तथा ) त्रय = कर्व्याऽत्रोपाध्यवर्त्तिन, लोका = जना, ( आराधिता भवन्ति, अत ) तत्सम = मात्राद्याराघनसदृश, पवित्र = पुरायजनक, यद्वा-विवि = “पविर्वज्ज महा भयम्” इत्यभिधानात् महाभयस्य ससार, तस्यरक्षायते यत्तत्त्वयोक्तम्, ससार वारकमित्यर्थ, भुवि = पृथिव्याम्, आयत् = एतदतिरिक्त कञ्जन त्रैलोक्ये वस्तु, न अस्ति = न विद्यने, तेन=हेतुना, इद-मात्रादित्रयम्, अभिराघ्यते=सुसेज्यते । तथा चैतेषामाराघीनैव सबलेष्टिविद्विरिति यज्ञनो मात्रादिकमेवाराघनीया इत्याशय ।

इन्दुमती—( रामचन्द्रजीने कहा- ) हे शुभापाणे ! ( शुभनोचने ! ) इस पृथिवीपर माता, पिता और गुरुकी सेवा के बढ़कर पवित्र कार्य दूसरा कोई नहीं है, इन तीनोंकी सेवा करनेसे वर्म, अर्थ और काम इन तीनोंकी प्राप्ति होती है तथा तीनों लोकोंकी सेवा हो जाती है, अत में इनकी आयधना ( सेवा ) करता हूँ ।

न सत्य दानमानौ वा न यज्ञाश्चासदक्षिणा ।

तथा बलकरा सीते ! यथा सेवा पितुहिता ॥ ३५ ॥

अन्वयः—हे सीते ! यथा पितु, सेवा, हिता, ( मता ) तथा, सत्य, न ( बलकरम् ) वा, दानमानौ, न ( बलकरी तथा ) आसदक्षिणा, यज्ञा, च, न बलकरा ( मता ) ।

सुधा—सम्प्रति भित्रवाक्यस्य सत्यादिवैलक्षण्यमुरपादवति-नेति । अब “बलकरा” इति लिङ्गवचनविपरिणामेन यथायथ व्याख्येयम् । हे सीते=बनजा हमजे !, यथा = येन प्रकारेण, पितु = तात्पर्य ( एतचोपलक्षण मात्रादे ( सेवा=आराधना, हिता = कल्याणकरी, ( मता ) तथा, सत्यम्=अनृत, न, ( बलकरी=पारत्रिकाभ्युदयसाधक ) वा=अथवा, दानमानौ=दानसत्कारी, न ( बलकरा=पारत्रिकाभ्युदयसाधकी, तथा ) आसदक्षिणा = आसा-न्राज्ञाणै श्रासा, दक्षिणा येषु ते तपोका, यशाभ्य = राजसूयादिकतव्य, न बलकरा = पारत्रिकाभ्युदय साधका ( मता ) ।

इन्दुमती—( रामचन्द्रजीने कहा- ) हे सीते ! सत्य, दान, मान और दक्षिणा सहित यज्ञ भी परलोक प्राप्तिके लिये उतने हितकर नहीं हैं जितनी कि पिशादि गुरुजनोंकी सेवा है अर्थात् पिता, माता और गुरुकी सेवा करनेमें जो फल मिलता है, वह फल सत्य बोलनेसे, दान व सत्कार करनेसे अथवा दक्षिणा सहित यज्ञ करनेसे प्राप्त नहीं होता ।

स्वर्गं घन धान्य वा विद्या पुत्रां सुखानि च ।

गुरुदृत्यनुरोधेन न किञ्चिदपि दुर्लभम् ॥ ३६ ॥

अन्वयः—गुरुदृत्यनुरोधेन, स्वर्गं, घन, वा, धान्य, वा, विद्या, पुत्रा, सुखानि, च, ( प्राप्त शक्तुवन्ति जना, कि वक्तव्य ससारे तेषा कृते ) किञ्चित्, अपि, ( वस्तु ) दुर्लभ, नास्ति ।

सुधा—उक्तमेव द्रढयति-स्वर्गं इत्यादिना । गुरुदृत्यनुरोधेन=गुरुणा-मात्रादीना, कृति-शुश्रूषा तदनुरोधेन—तदनुवर्तनेन “अनुरोधोऽनुवर्त्तनम्” इत्यमर । स्वर्गं=देवलोक, घन=हिरण्यादिवित्त, वा=अथवा, धान्य=बीहादि “धान्यं ब्रीहि इतम्वकरि” इत्यमर । वा=अथवा, विद्या = आन्विक्षिक्यादय, पुत्रा = पुत्रा, सुखानि च = एतदितरिक्तलोकानुवर्त्तनामोदाय, ( प्राप्त शक्तुवन्ति जना, कि वक्तव्य ससारे तेषा कृते ) किञ्चिदपि=किमपि ( वस्तु ) दुर्लभम्=अप्राप्य, नास्ति=न विद्यते ।

इन्दुमती—( रामचान्द्रजीने कहा-हे सीते । ) जो महारमा लोग माता, पिता और गुरुकी सेवा किया करते हैं उनके निये-शर्व, घन-घान्य, विद्या, सनानादि कुछ भी दुर्लभ नहीं है ।

**देवगन्वर्षगोलोकान् ब्रह्मलोकास्तथा परान् ।**

**प्राप्तुवन्ति महात्मानो मातापितृपरायणाः ॥ ३७ ॥**

अन्वय—मातापितृपरायणा, महात्मान, देवगन्वर्षगोलोकान्, तथा, परान्, ब्रह्मलोकान् ( अपि ) प्राप्तुवन्ति ।

सुधा—मातापितृपरायणा = मात्रादिगुभूषणैकरता, महात्मान = हृदयमनस्तः, देवगन्वर्षगोलोकान्-देवश्च गन्वर्षश्च गीव्येत्यपा द्रुन्द्रे देवगन्ववगावस्तेयोलोकास्तान् तथोकान् देवलोकान् धर्वलोकगोलोकानित्यर्थ, तथा, परान्=अत्युक्तिशान्, ब्रह्मलोकान्=सारेतत्त्वलोकान्, ( अपि ) प्राप्तुवन्ति=न भन्वते ।

इन्दुमती—( रामचान्द्रजीने कहा- ) हे सीते ! जो महामालीग माता-पिता आदि गुरुजनोंकी सेवा किया करते हैं, उनको-देवलोक, गन्ववलोक, गोनोक तथा सबमें उत्कृष्ट ब्रह्मलोक भी प्राप्त होता है ।

**स मा पिता यथा शास्ति सत्यधर्मपथे स्थित ।**

**तथा वतितुमिच्छामि स हि धर्म सनातन ॥ ३८ ॥**

अन्वय—सत्यधर्मपथे, स्थित, स, पिता, यथा, मा, शास्ति, तथा, वर्त्तिशुभ्र ( अहम् ) इच्छामि, हि, यत, स, धर्म, सनातन ( वर्त्तते ) ।

सुधा—सत्यधर्मपथे = सत्यलग्विशेषधर्मसार्गे, स्थित = वर्त्तमान, स = न्वतन्त्र, पिता = मम तात, यथा = येन प्रकारेण, मा = राम, शास्ति = आशा-प्रति, तथा = तेन प्रकारेण, वर्त्तिशुभ्र=अनुष्टुप्मूर्त्तम् ( अहम् ) इच्छामि=अभिलापामि, हि=यत, स = विश्वाशापालनस्य, धर्म, सनातन = सार्वकाङ्क्षिक ( वर्त्तते ) ।

इन्दुमती—( रामचान्द्रजीने कहा-हे सीते ! इस निये ) सत्यमागमें स्थित मेरे पिता पुर्खे जो आशा देते हैं, तदनुकूल ही मैं करनेको इच्छा करता हूँ क्योंकि यही सनातनधर्म है ।

**मम सना मति सीते ! नेतु त्वा दण्डकावनम् ।**

**चसिष्यामोति सा त्वे मामनुयातु सुनिश्चिना ॥ ३९ ॥**

अन्वय—हे सीते !, ( बने पत्था सह ) चसिष्यामि, हति, ( हठनिष्पयेन )

त्वम्, माम्, अनुयात्रु, ( यत ) सुनिष्ठिता, ( अत ) त्वा, दण्डकावन नेटु, मम (या) मति ( त्वद्वावापरिशानादिरुद्धासीत् ) सा (इदानी) सन्ना (जाता) ।

सुधा—हे सीते=जनकात्मजे । ( वने पत्था सह ) वसिष्यामि=वत्स्यामि, इति-एव ( इडनिष्ठयेन ) त्व मा=स्वशन्तम्, अनुयात्रुम्=अनुगन्तु ( यत ) सुनिष्ठिता=सुनिष्ठीता, ( अत ) त्वा=मवती, दण्डकावन = दण्डकनाममहार यथ, नेतु = प्रापयितु = मम=रामस्य, (या) मति = बुद्धि , ( त्वद्वावापरिशानादि रुद्धासीत् ) सा=मति , ( इदानो ) सन्ना=विशीर्णा, सम्प्रति त्वद्वाव परिशाय सहैव वन नेष्टामीत्याशय ।

इन्दुमतो—( रामचन्द्रजीने कहा- ) हे सीते ! पहले तो, तुम्हारे मनका अभिप्राय न जानने के कारण ही मेरी इच्छा तुम्हें दण्डक वनमें ले चलनेकी नहीं थी, किन्तु अब तुम्हारा मेरे साथ वन चलनेका इडनिष्ठयको देखकर मेरा विचार बदल गया है, अब मैं तुम्हें अपने साथ दण्डकवनमें ले चलूगा ।

सा हि सृष्टानवद्याङ्गो वनाय मदिरेक्षणे ! ।

अनुगच्छुस्व मा भीरु ! सहघमचरी भव ॥ ४० ॥

अन्वय—हे मदिरेक्षणे !, हि, अनवद्याङ्गी, सा, ( त्व ) वनाय, सृष्टा (असि अत ) हे भीरु ! माम्, अनुगच्छुस्व, (तथा वने त्व) सहघमचरी, भव ।

सुधा—हे मदिरेक्षणे=मदिग—“सौषुप्तेन परियका स्मेरापाङ्गमनोहरा । वेगमानान्तरा दृष्टिर्मदिरा परिकीर्तिता” इत्युक्तलक्षणेन दृष्टिविशेष, तद्युक्तम् ईक्षणम्-अवलोकन यस्या तत्सम्बुद्धौ । हि = यतः, अनवद्याङ्गी=अनवद्य-निष्पा पम्, अङ्ग-शरीर यस्या सा तथोक्ता, सा = पातिब्रतघर्मपालने प्रसिद्धा, ( त्व ) वनाय = वनवासाय, सृष्टा = निष्ठिता, यद्वा-अवतीर्णा ( असि, अत ) हे भीरु=कातरे ।, माम्, अनुगच्छुस्व=अनुवज्जस्व । ( तथा वने त्व ) सहघमचरी=सहघमविघायिनी, भव । एतेन वनवाससाध्यस्य स्वघर्मस्य रक्षोवधजस्य त्वया विनाऽसम्भव इति सूचितम् ।

इन्दुमतो—( रामचन्द्रजीने कहा- ) हे मदिरेक्षणे ! ( रक्षोचने । ) जब धर्मस्वरूपा तुम वन जानेके लिये ही वनायी गई हो तब हे भीरु ! तुम मेरे साथ वन चलो और मेरे धर्मानुष्ठानमें साथ हो जाओ ।

सर्वथा सदृश सीते ! मम स्वस्य कुलस्य च ।

व्यवसायमनुकान्ता कान्ते ! त्वमतिशोभनम् ॥ ४१ ॥

अन्वय — हे सीते !, च, सर्वथा, मम, कुलस्य, च, स्वस्य, कुनस्य (अपि) सद्गु, व्यवसाय, अनुकान्ता, (असि अत एतत्) हे कान्ते ! अतिशोभनम्, (सनातम्) ।

सुधा—हे सीते = जनका मजे !, च = भवती, सर्वथा = सबप्रकारेण, मम, कुलस्य = रुद्धवशस्य, च = पुन, स्वस्य = स्वकीयस्य, कुनस्य = वशस्य, (अपि) सद्गु = तुर्वप, व्यवसा = प्रश्ननुसरणविषयकाध्यवसायम्, अनुकान्ता = प्राप्ता, (असि अत एतत्) हे कान्ते = मनोगमे !, अतिशोभनम् = अतिमय (सञ्जातम्) ।

इन्दुमतो—(रामचाद्रजीने कहा-) हे सीते ! मेरे बाप बन चलनेवा तुम्हारा विचार बहुत ही उत्तम है, क्योंकि वह तेरे पितृकुन और मेरे कुनके सर्वथा अनुस्वर है ।

आरभस्त्र शुभथोणि । वनवासक्षमा किया ।

नेदानीं त्वदत्ते सीते ! स्वर्गोऽपि मम रोचते ॥ ४२ ॥

अन्वय — हे शुभथोणि !, वनवासक्षमा, किया, आरभस्त्र, हे सीते ! त्वदत्ते, इदानीं, स्वर्ग, अपि, मम, न रोचते ।

सुधा—हे शुभथोणि = शोभनकृते !, वनवासक्षमा = वनवासदिता “क्षम राके हिते त्रिपु” इत्यमर । किया = दानादिकर्माणि, आरभस्त्र = प्रारभस्त्र, हे सीते = वैदेहि !, त्वदत्ते = त्वया विना, इदानीम् = रव इदनिष्ठये, स्वर्ग अरि = देवलोकोऽपि मम = रामाय, न रोचते = न प्रोणाति ।

इन्दुमतो—(रामचाद्रजीने कहा-) हे शुभथोणि ! सीते ! वनवास लानेकी चैयारी करो । तुम्हारे विना इस समय मुझे स्वर्ग भी नहीं इच्छता ।

ब्राह्मणोभ्यश्च रत्नानि भिञ्जुतेभ्यश्च भोजनम् ।

देहि चाशसमानेभ्य, सत्परस्व च मा चिरम् ॥ ४३ ॥

अन्वय — आशसमानेभ्य, भिञ्जुतेभ्य, ब्राह्मणेभ्य, च, रत्नानि, च, भोजन, च, देहि, च सत्परस्व, मा, चिरम् ।

सुधा—आशसमानेभ्य = महानमूर्च्चारयितूभ्य, भिञ्जुतेभ्य = याचेभ्य, ब्राह्मणेभ्य = विभेभ्यश्च, रत्नानि = उत्तमवस्थानि, च = पुन, भोजन = खाद्य च, देहि = अपय च = तथा, सत्परस्व = गयनाय शीघ्र प्रयत्स्व, मा चिर = विलम्ब न कुरु ।

इन्दुमतो—(रामचाद्रजीने कहा-) हे सीते !, मगलराड करने वाले ब्राह्मणोंकी रत्नादि दाँदों और भिञ्जुद्धोंकी भोजन दो तथा अब बिनम्ब मर

करो ( वन चलनेके लिये शीघ्र तैयार हो जाओ ) ।

भूपणानि महार्द्दिणि वरवस्त्राणि यानि च ।

रमणोयाश्च ये केचित्क्रीडार्थाश्चाऽस्युपस्करा ॥ ४४ ॥

शयनीयानि यानानि मम चान्यानि यानि च ।

ऐहि स्वभृत्यवर्गस्य ब्राह्मणानामनन्तरम् ॥ ४५ ॥

**अन्वय**—ब्राह्मणानाम्, अनन्तर, मम, च क्रीडार्थां, रमणीया, ये, केचित्, उपस्करा, ते, च, यानि, महार्द्दिणि, भूपणानि, च, वरवस्त्राणि, अपि, च, यानि, यानानि, शयनीयानि, ( तानि ) अन्यानि च स्वभृत्यवर्गस्य, देहि ।

**सुधा**—ब्राह्मणाना = ब्राह्मणप्रदानत्रदानानाम्, अनन्तर = तदुत्तर मम, च = स्वस्य, क्रीडार्था - क्रीडामात्रप्रयोजनका, रमणीया = मनोहरा, ये केचित् उपस्करा = स्वर्णमयपुत्रिकादिसम्ब्रय, ते = सर्वे, च = पुन, यानि, महार्द्दिणि = बहुमूल्यानि, भूपणानि = हेमाङ्गदायत्रद्वाय, च = तथा, वरवस्त्राणि अपि = उच्चमवस्थनायपि, च = पुन, यानि, यानानि = रथा, शयनीयानि = स्वारयोग्य वस्त्रादीनि ( तानि ) अन्यानि = उच्चाऽवशिष्टानि च ( यानि तानि ) स्वभृत्यवर्गस्य = स्वदासवर्गम्, देहि = वितर ।

**इन्दुमती**—( रामचन्द्रजीने कहा- ) हे छीते ! तुम अपने और मेरे बहुमूल्यक सभी आभृषण तथा ऐष्ट (रत्न जड़ित) जितने वस्त्र हैं वे तथा अन्य भी जो उपहारमें प्राप्त बहुमूल्यक विनोदका सामान हैं वह एव ओढ़ने-बिछौने तथा सवारी आदि ( जो कुछ उपभोगका सामान हो वह ) ब्राह्मणोंको देकर अवशिष्ट जो वचे वे नोकरो-चाकरों को दे दो ।

अनुकूल तु सा भर्त्तर्षात्वा गमनमात्मन ।

क्षिप्र प्रसुदिता देवी दातुमेव प्रचकमे ॥ ४६ ॥

**अन्वय**—आत्मन, गमनम्, भर्तु, अनुकूल, शात्वा, प्रसुदिता, ( उत्ती ), देवी, सा, क्षिप्र, तु, दातुम्, एव, प्रचकमे ।

**सुधा**—आत्मन = स्वस्य, गमन = वनाय गन्तुम्, भर्तु = वहनभस्य, अनुकूलम् = अविरुद्धम्, शात्वा = अवस्था, प्रसुदिता = प्रहरिता, ( उत्ती ) देवी = देवतावदाराघनीया, सा = उत्तीता, क्षिप्र = शीघ्र, तु, दातु = वितरितुम् एव, प्रचकमे = आरब्धवती ।

**इन्दुमती**—( बालमीकिजी कहते हैं कि- ) अपने स्वामी श्रीरामचन्द्रजीको

भनुकूल देख तथा उनके साथ अपना बनजाना निश्चय जानकर सीताजी अति प्रसन्न हुई और ( रामचन्द्रजीके कथनानुसार ) शीघ्रतासे ब्राह्मणोंको और नौकर-चाकरोंको यथा योग्य वस्तु सब देनेके निये उथत हो गयी ।

ततः प्रहृष्टा प्रतिपूर्णमानसा यशस्विनी भर्त्तुरवेद्य भाषितम् ।

घनानि रत्नानि च दातुमङ्गला प्रचक्षमे धर्मभूता मनस्विनी ॥४७॥  
इत्यापें भीमद्वामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्योध्याकाशडे विश उग्म ।

अन्वय — भर्तु, भाषितम्, अवेद्य, तत, प्रहृष्टा, प्रतिपूर्णमानसा, यशस्विनी, मनस्विनी, अङ्गना, धर्मभूता, घनानि, च, दातु, प्रचक्षमे ।

सुधा—भर्तु = पत्नु, भाषित = वचनम्, अवेद्य = आलोच्य, तत = तदनन्तर, प्रहृष्टा—प्रमुदिता, प्रतिपूर्णमानसा = प्रतिपूर्णम्-अङ्गुञ्ज भानस-चित्त यस्या सा तथोक्ता निभिर्तेत्यर्थ, यशस्विनी = कीर्तिमती, मनस्विनी = दृढमनस्का, अङ्गना = छों सीता, धर्मभूता = धर्मभूद्ध्य, घनानि = वित्तानि, रत्नानि = बहुमूल्यवस्तुनि च, दातु = वितरितु, प्रचक्षमे = प्रारब्धवती ।

इति श्रीवाल्मीकीयरामायणोऽयोध्याकाशडे “तुधा” टीकाया विश उग्म ।

इन्दुमती—यशस्विनी सीताजी स्वामी श्रीरामचन्द्रजीको अपने अनुकूल बोलते देख प्रसन्न होकर निश्चित हो गयी ( उनकी सारी दुख-ज्यया दूर हो गयी ) और मनस्विनी सीताजी धर्मात्मा ब्राह्मणोंको ( रामचन्द्रजीके कथनानुसार ) धन-रत्नादि दान देने लगी ।

इसप्रकार इन्दुमती टीकामें प्रथोध्याकाशडका ३० वा उग्म समाप्त हुआ ।

एकत्रिशः सर्गः

आता लक्ष्मणः

एव थुत्वा स सपाद लक्ष्मणः पूर्वमागत ।

वाष्पपर्याकुलमुख शोक लोदुमशस्तुपन् ॥ १ ॥

अन्वय—पूर्वम्, आगत, वाष्पपर्याकुलमुख, स, लक्ष्मण, एव, सपाद, भुत्वा, शोक, लोदुम्, अथस्तुपन् ( सन् अस ) ।

सुधा—एव रामेण सीतामने स्त्रीकृते लक्ष्मणस्यानुगमनप्रार्थनमुपत्ति पत्नाइ—एवमिति । पूर्व = कौद्यस्यागद्याशमसीतासपादप्रवृत्तेः प्रारोध, आगत =

आयात , वाघपर्याकुलमुख = अभुव्यासवदन , स , लक्ष्मण = सीमित्रि , एवम्= अनुपदोकप्रकारेण , सवाद = सीतारामोक्तिप्रत्युक्ती श्रुत्वा = आकर्ष्य, शोकम्= अर्धशरीरभूताया सीताया अपि वनानुगमन कुञ्जादेवाङ्गीकृत मम कथ तत्संभविष्यतीति सभावितरामविरहज सताप, सोहु = मर्पितुम् , अशक्तुवन् = अपारयन् ( सन् आस ) ।

**इन्दुमती—**(महाय वाल्मीकिजी कहते हैं कि—) भी राम-सीताके आपसमें परस्पर बात-चीत आरम्भ होनेके पूर्व ही श्रीजन्मणजी वहा पहुँच गये थे । वे इस बात-चीतको सुनकर (अर्थात् राम-सीताका वन जाना निश्चित समझकर) शोकचे बेगको रोकनेमें असमर्थ हो गये, उनका मुख रोदनाश्रुमें व्यास हो गया ।

स भ्रातुश्चरणौ गाढ निषीडय रघुनन्दन ।

सीतामुवाचातियशा राघव च महाव्रतम् ॥ २ ॥

**अन्वय—**अतियशा , स रघुनन्दन , भ्रातु , चरणी , गाढ , निषीडय , सीताम् , महाव्रतम् , राघव च , उवाच ।

**सुधा—**अतियशा = उत्कृष्टकीर्तिमान् , स = सर्वजनविदित , रघुनन्दन = लक्ष्मण , भ्रातु = रामस्य , चरणी = पादो गाढ = दृढ़ , निषीडय = प्रणम्य , सीता=भ्रातृजाया, ( चक्षुरादिभि प्राथयन् , ) महाव्रत=न त्यजेय कथचन एत दूषत मम इत्युक्तगुह्यतरतयुक्त , राघव=राम , च = हु , उवाच = स्वाभिमत फलाय विशापयामाप । स्वाभिमतप्राप्तौ सीताशरणगमनमेव मद्रमनमङ्गीकार यत्येवमयमेव मुख्य उपाय इति मत्वा तत्प्रार्थनेत्यवग्नतव्या ।

**इन्दुमता—**रघुकुलका आनन्दवधक महायशस्त्री श्रीजन्मणजी अपने बड़े भाई श्रीरामचन्द्रजीके चरणोमें साष्टाग प्रणाम कर महाव्रतवारी श्रीरामचन्द्रजी तथा सीताजी से ( रोते हुए ) कहने लगे— ।

यदि गन्तु कृता बुद्धिर्वन्मृगगजायुतम् ।

अह त्वानुगमिष्यामि घनमये घनुधरं ॥ ३ ॥

**अन्वय—**( हे राघव ! ) यदि, मृगगजायुतम् , वन, ग तु, बुद्धि , कृता, ( तर्हि ) अह, ( तव ) अग्रे, घनुधर , ( सन् ) त्वा, वनम् , अनु, गमिष्यामि ।

**सुधा—**यैद्वयमथयते—यदीति । ( हे राघव ), यदि=चेत् , मृगगजायुत=हरिणहस्तिसयुत , वन=महारण्य , गन्तु=यातु , बुद्धि =मति' , कृता = निश्चिता ( तर्हि ) अह = लक्ष्मण , ( तव ) अग्रे=पुरत , घनुधर = घृतधनु ( सन् )

स्वा = स्वा वनगतार, वन = महरिष्यम्, अतु = सह, गमिष्यामि=वज्जिष्यामि ।  
यद्वा—अतु = पश्चात्, ( श्रिय ) गमिष्यामि तथा च तवाप्रे पश्चादा यत्र दुष्ट-  
मृगादिशङ्का तत्र धूनघनुरह सावधानो गमिष्यमीत्यर्थ । “यदि” इत्यनेन  
गमिष्य वनगमन स्थानभिस्तमित्यव्येष्यम् ।

इन्दुमती—(लक्षणज्ञने कहा—हे राघव !) यदि मूरा, हाथी आदि पशुओं  
से व्याप्त वनमें जानेका आपने निश्चय कर लिया है, तो मैं भी आपके पीछे चलूगा  
और वनमें आपके आगे आगे धनुष-वाण लेकर ( अगरदूर वनकर रहूगा ।

मया समेतोऽरण्यानि रम्याणि विचरिष्यसि ।

पक्षिभिर्मृगयूथेष्व सधुष्टानि समन्तत ॥ ५ ॥

अन्वय.—( हे राघव ! ) मया, समेत, समात, पक्षिभि, मृगयूथै,  
च, सधुष्टानि, रम्याणि, अरण्यानि, विचरिष्यसि ।

सुधा—( हे राघव ! ) मया=धनुर्धेण, समेत = सहित, सम दत = अभिन,  
पक्षिभि = शकुन्ते, मृगयूथै = दरियोसमौदे, च सधुष्टानि=सरावितानि, रम्याणि=  
मनोदराणि, अरण्यानि = वनानि, विचरिष्यसि = भ्रमिष्यसि ।

इन्दुमती—( लक्षणज्ञने कहा— हे राघव ! ) जिन बनोमें पक्षो और  
मृगोंके क्षुएड चारों ओर सम्यक् प्रकारसे मुद्रर शब्द करते हैं ऐसे रमणीय उन  
बनोमें आप मुझको साथमें लेकर धूमेंदे ( तो मुझे बहुत आनन्द होगा )

न देवलोकाकमण नामरत्प्रभद चृणे ।

ऐश्वर्यं वापि लोकाना कामये न त्वया विना ॥ ५ ॥

अन्वय—त्वया, विना, अह, देवलोकाकमण न, कामये, ( तथा त्वया-  
विना अमरत्वम्, च, ( अह ), न, चृणे, ( तथा त्वया । विना ) लोकानाम्, ऐश्व-  
र्यम्, श्रिय, न ( कामये ) ।

सुधा—नन्दप्रैव भोगानुपभुज्य त्वया स्थातव्यमित्यतु आह—नेति । त्वया =  
भवता, विना, अह = लक्षण, देवलोकानमण, ( १ ) नदुयादिवदेवलोकमारोह,

( १ ) पुरा विन वृत्तव्येन वद्दाहत्यापापशुज्ञानिनि देवे द्र मानससरोवरे निष्ठति देवे  
स्वर्गलोकमानक वीक्ष्य चाद्रवशीयो राजा नदुर वृत्तपोभिर्विवद्य स्वगाराम्ये प्रतिष्ठापित ।  
स च कशाविद्वद्वारा कामयमानतत्त्वया—उक्त ‘प्रज्ञन् । यदि मनान् महिषिर्मद्वितीयो शिवि  
कामारुद्ध मद्भूदनमाणमिष्यनि दरा भवतामह महिषामि’ इति । तैरेव दत्तीकृत्य नदुशस्तु भृत्या  
दौन् देवपान् शिविकाया वाइकत्वेन निषोज्य तामाश्वर द्राणीं प्रति वदन् शोभ चरिषु पुरे

न कामये = नाभिलक्षणमि, ( तथा त्वया विना ) अमरत्व, च न दृष्टे = नस्तीक रोमि, ( तथा त्वया विना ) लोकाना = भूर्भुवस्वरित्यादित्तुर्दशभुवनानाम् , ऐश्वर्यम् अपि = लोकाधिपतित्वमिति, ब्रह्मावभिति यावत् , न, ( कामये ) ।

इन्दुमतो—( लक्षणज्ञाने कहा-है राधव ! ) आपके विना न तो मुझे स्वर्गकी, न अमरत्वकी और न त्रिलोकोंके ऐश्वर्यकी ही इच्छा है ।

एव श्रुताण् सौमित्रिर्वनवासाय निष्ठतः ।

रामेण वहुमि सान्त्वैनिषिद्धं पुनरवृत्तीत् ॥ ६ ॥

अन्धय — वनवासाय, निष्ठित, एव, श्रुताण्, सौमित्रि, वहुमि, सान्त्वै, रामेण, निषिद्ध ( अपि ) पुन, अवृत्तीत् ।

सुधा—वनवासाय = वनवास विधातु, निष्ठित = कृतनिष्ठय, एवम् = उक्तप्रकारेण, श्रुताण् = कथ्यमान, सौमित्रि = लदमण, वहुमि = अनेकप्रश्नरै, सान्त्वै = वियोगभवणजनितोद्वेगशामकै, ( वचनै ) रामेण = ज्येष्ठभ्रात्रा, निषिद्ध = षारित, ( अपि ) पुन = भूय, अवृत्तीत = अवोचत् ।

इन्दुमतो—( वालमीकिजी कहते हैं कि— ) लक्षणज्ञीके इस प्रकार कहने पर और उनको भी अपने साथ वन जानेको उद्यत देख और रामचन्द्रजीने लक्षणज्ञीको बहुत प्रश्नारसे समझाया और नहीं चलनेको कहा, परन्तु मदमणज्ञी ( नहीं माने ) पुन कहने लगे—।

अनुशातस्तु भवता पूर्वमेव यदस्मयहम् ।

किमिदानी पुनरपि कियते मे निवारणम् ॥ ७ ॥

अन्धय — यद्, पूर्वमेव, भवता अनुशात अहम्, अस्मि, दु। इदानीं, पुनः, अपि, मे, निवारण कि, कियते ।

सुधा—यत् = यस्माद् कारणात्, पूर्वमेव = प्रागेव, भवता = भ्रीमता, अनुशात = आहापिति, ( तस्मादपरिताप सस्त्वमप्यनुविधाय माम् । प्रतिसहारय क्षिप्रमानिषेचनिक्षी किया ” इत्यनेनादिष्ट , तथा “ भ्रातृपुत्रो ममौ चापि द्रष्टव्यौ च विशेषत । त्वया भरतश्चुम्हो प्राणै प्रियतरी मम ॥ ” इत्यनेन च भरतश्चुम्होरेव सीताया अनुसरणीयत्वोक्त्या चादिष्ट ) अह लक्षण, अस्मि, तु = यायिन भृगु मूर्धिन “ सप सप ” इति कथयन्नदादयद् । अत्रान्तर भृगोब्रदास्त्वन्नहितो भगवान् गस्त्वप्रस्तुतदैन ताडित शशाप “ त्वं सप सप् परितो भव ” तेन च नदुः सप्तो भृत्या दिमार्थ युद्धायामपदिति महामारठीया कथा ।

वर्दि, इदानीं = सम्प्रति, पुनरपि = भूयोऽपि मे=मम, निवारण=निवेष, कि=अथ कियते=विषयते । कि च “पूवम्” इत्यस्यावतरणसमयेऽपौत्थर्योऽपि ।

इन्दुमती—( लक्ष्मणजीने कहा—हे राष्ट्र ! ) आपने तो पहले मुझे ( बनजानेकी ) आशा दी थी, किर अभी इस प्रकार निवारण ( मना ) क्यों कर रहे हैं ?

यदर्थं प्रतिषेधो मे क्रियते, गन्तुमिच्छत् ।

एतदिच्छामि विश्वातु सशयो हि ममाऽनन्द ! ॥ ८ ॥

अन्वय—गन्तुम्, इच्छत्, यदर्थं, मे, प्रतिषेध, ( भवता ) क्रियते, एतत्, विश्वातुम्, ( अहम् ) इच्छामि, हि, हे अनन्द ! मम, ( हृदि महान् ) सशय, ( अस्ति ) ।

सुधा—जनु प्रथोऽनविशेषस्य विषयानत्वात् पूर्वं गमनायानुक्षात् सम्प्रति तदभावानिवार्यसे इत्यत आह-यदिति । गत्वा=यातुम्, इच्छत् =अभिलिपत, यदर्थं = यज्ञिमित्त, मे = लक्ष्मणस्य, प्रतिषेध = निवारण ( भवता ) क्रियते = विषयते, एतत् = निमित्त, विश्वातुम् = अवबोद्धुम्, ( अहम् ) इच्छामि=अभिलिपति, हि = यत्, हे अनन्द=निष्पाप ], मम=लक्ष्मणस्य, ( हृदि महान् ) सशय.=पूर्वं केनाऽभिप्रायेणानुमति, सम्प्रति केनाऽभिप्रायेण निवारणमिति सदैह, ( अस्ति ) ।

इन्दुमतो—( लक्ष्मणजीने कहा—) हे अनन्द ! ( निष्पाप ] ) जिस कारणसे आप मुझे बन जानेसे रोकते हैं, उस कारणको में जानना चाहता हूँ, क्योंकि इस निषेधको सुनकर मुझे बहुत सशय हो गया है ।

ततोऽन्नरामहातेजा रामो लक्ष्मणमग्रत ।

स्थित प्राग्गामिन धीर याचमान कृताङ्गलिम् ॥ ९ ॥

अन्वय—तत्, महातेजा, राम, अग्रन्, स्थित, प्राग्गामिन, याचमान, धीर, कृताङ्गलि, लक्ष्मण, अवबोद्ध ।

सुधा—तत् =लक्ष्मणकथनानन्तरम्, महातेजा=अतितेजत्वी, राम, अग्रत = अग्रे, स्थित=वर्तमानम्, प्राग्गामिन=रामगमननिष्ठये सति रामगमनात्पूर्वमेव गमनशील, याचमान=सहगमन प्राथयन्त, धीर = धैर्यवन्त, कृताङ्गलि=याच्चाव्यञ्जकाङ्गलिषुक, लक्ष्मण=ठीमिनिम्, अवबोद्ध=थवोचत् ।

इन्दुमतो—( बाल्मीकिजी कहते हैं कि— ) हाथ जोबहर बन जानेके

लिये प्रार्थना करते हुए और पहलेसे वन यात्रा करनेके लिये तैयार आगेमें खड़े हुए उन धीर श्रीलक्ष्मणजीने उपयुक्त वचनोंको सुनकर महातेजस्वी श्रीराम चद्रन्जी कहने लगे—।

स्त्रिग्न्यो धर्मरतो धीर सतत सत्पथे स्थित ।

प्रिय प्राणसमो वश्यो विद्येयश्च सखा च मे ॥ १० ॥

मयाद्य सह सौमिने ! त्वयि गच्छुति तद्वनम् ।

को भजिष्यति कौशल्या सुभित्रा वा यशस्विनीम् ॥ ११ ॥

अन्वय — हे सौमिने !, च, (त्व) स्त्रिय, धर्मरत, धीर, सतत, सत्पथे, स्थित, (मम) प्राणसम, प्रिय, वश्य, विद्येय, मे, सखा, च, मया, सह, अद्य, त्वयि, तद्वन, गच्छुति (सति) यशस्विनी, कौशल्या, सुभित्रा, वा, क, भजिष्यति ।

सुधा—तद्वचनमेवाह = स्त्रिय इत्यादिना । श्लोकहृष्यमेकान्वयि, च शब्दो यद्यपितथाप्यर्थवाचकौ, वाक्यार्थे । हे सौमिने = लक्षण ।, च = यद्यपि (त्व) स्त्रिय = मद्विषयकस्नेहवान्, धर्मरत = मत्तोषककर्मनिष्ठ, धीर = कर्मविषयकप्रमादरहित, सतत = निरन्तर, सत्पथे=वेदोक्तमार्गे, स्थित = वर्तमान, (मम) प्राणसम = प्राणतुल्य, प्रिय = स्नेही, वश्य = मदधीन, विद्येयः = पृथा अवश्य चारणीय, मे = मम, सखा = सुहृत्, (वर्त्तसे) च = तथापि, मया = रामेण, सह=सार्थ, अद्य = अस्तित्वादिनि, त्वयि=प्रवति, तद्वन = मुगागजादियुत भजिगमिषित दण्डकारण्य, गच्छुति=व्रजति, (सति) यशस्विनी=कीर्तिमती, कौशल्या = मम मातर, सुभित्रा=तव मातर, वा=च, क भजिष्यति=क सेविष्यते । मम विरहजनितसन्तानोद्देशसमयेऽनयोभितशाति त्वदन्य क करिष्यतीत्याशय ।

इन्दुमती—(रामचन्द्रजीने कहा—) हे लक्षण ! तुम मेरे हनेही, धर्मरत, पराक्रमी, सर्वदा सन्मांगपर चलनेवाले, प्राणके समान प्रिय, भक्त, मेरे छोटे भाई हो और मेरे मित्र भी हो (अत यदि तुम मेरे साथ वन चलोगे तो मुझे आराम मिलेगा, कि तु—) हे सुभित्रानन्दन ! आज मेरे साथ तुम्हारे भी वन चले जानेपर यशस्विनी माता कौशल्या और सुभित्राकी सेवा-सुश्रृणा कीन करेगा ? ।

अभिवर्षति कामैर्य, पर्जन्य पृथिवीमिव ।

स कामपाशपर्यस्तो महातेजा महीपति ॥ १२ ॥

अन्वय — महातेजा , य , महीपति , पृथिवी , पर्जन्य , इव , अभिवर्यति , स , ( सम्रति ) कामपराणपद्मन ( अस्ति ) ।

सुधा—ननु भैंवास्या रहको भविष्यतीत्यत आह—अभिवर्यतीति ।  
महातेजा = अतितेजस्वी य , महीपति = राजा , पृथिवी = मूर्मि , पर्जन्य = मेर  
इव , अभिवर्यति = प्रजेप्तिमखिल ददाति , स = महीपति ( सम्रति ) काम  
पाणपर्यस्त = कामपाशेन—कैक्ययनुरागेण , पर्यस्त = इद , ( अस्ति ) अत एव  
तद्मादक्षण तस्या ग्रहमम इयाशय ।

इन्दुमती—( रामचन्द्रजीने कहा— ) हे लक्ष्मण ! महापराक्रमी पृथिवीपति  
महाराज ( पिताजी ) मेषकी तद्व अथात् मेर जैसे पृथिवीका मनोरथ पूर्ण करता  
है ( पथावसर पर बरस कर शस्य-समूद्रि करता रहता है ) उसी प्रकार सबके  
मनोरथको पूर्ण करते थे किन्तु वे तो अभी काम-नाशमें दद गये हैं ( कैक्ययीके  
कुचकमें फड गये हैं ) वे माता कौशलया और सुमित्राकी भनाई नहीं कर सकेंग  
( अत तुम्हारा यहा रहना आवश्यक है ) ।

सा हि राज्यमिद् प्राप्य नृपस्याऽद्वपते सुता ।

दुःपिताना सपत्नीना न करिष्यति शोभनम् ॥ १३ ॥

अन्वय — अश्वपते , नृपस्य , सुता , सा , हि , दु लिताना , सपत्नीना ,  
( समीपे ) इद , राज्य , ( प्राप्यावि ) शोभनम् , न , करिष्यति ।

सुधा—ननु तदि प्राप्तराज्याचिकारत्वाकैवेयी रचिष्यतीत्यत्राह—स्तेति ।  
अश्वपते = अश्वपतिनाम्न नृपस्य = राजा सुताऽनुहिता , सा हि = कैवेयी  
अपि , दु लिताना = मद्दियोगजनितप्राप्तक्लेशाना , सपत्नीना = कौशलयादीना  
( समीप ) इद राज्यम् = इदमाचिगत्य ( प्राप्यावि ) शोभन = शोकोद्देशुमये सा  
न्त्रवनावाक्येतस्या हृदयस्य समाधानरूप मङ्गल , न करिष्यति = न पालयिष्यति  
एतेन तददुन्दु लिता कैक्ययप्यवश्य न भवितेति एचितम् ।

इन्दुमती—( रामचन्द्रजीने कहा—हे लक्ष्मण ! ) राजा अश्वपतिकी  
कन्या कैवेयी जय ( भरतके राज्याभियेक होने पर ) राज्ञ-माता होगी , तब यह  
अपनी दुलिनी सपत्नी कौशलया और सुमित्राके प्रति अन्त्या वर्णव नहीं करेगी  
( अत तुम्हारा यहा रहना आवश्यक है ) ।

न स्मरिष्यति कौशलया सुमित्रा च सुदु लिताम् ।

भरतो राज्यमासाद्य कैक्यया पर्यवस्थित ॥ १४ ॥

**अन्यथा** —कैवेद्या, पर्यावरित्यन्, भरत, राज्यम्, आशाद्, सुदुखिता, कौशल्या, सुमित्रा, च, न, स्मरिष्यति ।

**सुधा**—ननु भरत पालयिष्यतोत्यपेक्षाया सोऽपि कैवेद्यी परतन्त्र न पालयिष्यतीत्यभिप्रायेणाइ—न स्मरिष्यतोति । कैवेद्या=कैवेद्यीसप्तनीतिरस्कारविषये, पर्यावरित्य=प्रतिष्ठित, भरत=कैवेद्यीसुनु, राज्य=चक्रवर्तिपदम्, आशाद्=प्राप्य, सुदुखिता=महिरहजनितक्लेशेनातिदुखिता, कौशल्या=मम मातर, सुमित्रा=तव मातर, च न स्मरिष्यति=चिन्तयिष्यति तथाच यत्र स्मरणमेव न तत्र पालनस्य का वार्तेति भाव ।

**इन्दुमती**—(रामचन्द्रजीने कहा—हे लक्ष्मण !) भरत भी राज्य पाकर अपनी माता कैवेद्यीके आशानुसार ही काम करेगा अत वह भी दुखिनी माता कौशल्या और सुमित्राकी खोज-खबर नहीं करेगा (इसलिये तुम्हारा यहा रहना आवश्यक है) ।

तामार्यो स्वयमेवेह राजानुप्रहणेन वा ।

सौमित्रे ! भर कौशल्यासुकमर्थमसु चर ॥ १५ ॥

**अन्यथा**—हे सौमित्रे ! राजानुप्रहणेन, वा, ( तदमावे ) स्वयम्, एव, आर्या, ता, कौशल्या, भर, उक्तम्, अमुम्, अर्पम्, इट, चर ।

**सुधा**—ननु यदि चैते रक्षितुमसमर्थास्तदि मयापि रक्षितु कथ शक्यमित्यत आह—तामिति । हे सौमित्रे=लक्ष्मण !, राजानुप्रहणेन=राजानुपत्या, वा=अथवा, (तदमावे) स्वयमेव, इह=अयोध्यायाम् आर्या=भ्रेष्टो, ता=प्रतिद्वा, कौशल्या=मम मातर, (स्वमातर च) भर=गलय । अस्योत्तर त्वया न वाच्यमित्यत आह—उक्तमिति । उक्त=मया वर्णितम्, अमुम् अर्पम्=इह स्थितौ प्रयोनन, चर=जानीहि । “ये गत्यर्थात्ते शानार्या” इत्युक्तिप्रसिद्धे प्रकृते चरो शानमर्यो उवगन्तव्य ।

**इन्दुमती**—(रामचन्द्रजीने कहा—अत) हे लक्ष्मण ! इस मेरे कथन को मानो और हुम यही ( अयोध्यामें ) रहकर राजा ( भरत ) का अनुप्रइकी पावर अथवा ( यदि भरत तुम्हारे प्रतिकूल चलें तो ) स्वय ( अपने भुज-बल ) अपनी भ्रेष्ट माता कौशल्या ( और सुमित्रा ) का भरण-पोषण करो ( तुम्हारे भी वन चले जानेपर माताओंको बड़ा कष्ट होगा ) ।

एव मयि च ते भक्तिर्भविष्यति सुदृशिता ।

धर्मज ! शुरुपूजाया धर्मध्वाऽन्यतुलो महान् ॥ १६ ॥

अन्यथ — हे धर्मज ! एव, च, ते, गुष्पूजाया (हृताया) सुदर्शिता, मयि, भक्ति, भविष्यति, ( अत एव ) अतुल, महान्, धर्म, च, अवि (भविष्यति) ।

सुधा—ननिवहस्यिती तब शुश्रूपामङ्ग स्यादत आह-परमिति । हे धर्मज धमवेत्तुन् । एव=मदुक्तप्रकारेण, च=हि, ते=स्याया, गुष्पूजाया = मात्रादिशुश्रूपाया (हृताया) मुदर्शिता=विविनोच्छा, मयि=रामे, भक्ति=परानुरक्ति, भवि ष्यति=सप्तस्यति, ( अत एव ) अतुल=अतुपम, महान्=अधिक, धर्म, च, अवि=पुण्यमापि, ( भविष्यति ) इदेव हस्यितवा मात्रादिशुश्रूपयाऽस्मत्सेवाऽपि सज्जातेति न तब सेवाभक्तेशोऽनीति भाव ।

इन्द्रमती—( रामचन्द्रजीने पुन कहा— ) हे धर्मज लक्ष्मण ! इस प्रकार कार्य करनेसे ( अयोध्यामें रहकर माता कौशल्या और सुमित्राभी सेवा करने से ) तुम्हारी परम भक्ति प्रदर्शित होगी और शाय ही माताओंकी सेवा-मुश्रूपा करनेसे तुमको बड़ा मारी पुण्य भी होगा ।

एव कुरुष्य सौमित्रे ! मत्कृते रघुनन्दन ॥

अस्माभिर्प्रहीणाया मातुर्नै न भवेत्सुखम् ॥ ७ ॥

अन्यथ — सौमित्रे ।, मत्कृते, एव, कुरुष्य, (अन्यथा) हे रघुनन्दन । अस्मा भि, विप्रहीणाया, मातु, सुख, न, भवेत्, न, ( च सुख न भवेत् ) ।

सुधा—उग्रहरति-एव भवति । सौमित्रे = लक्ष्मण ।, मत्कृते = मदर्थम्, एव = मदुक्तप्रकारेण, कुरुष्य = विष्वस्य, ( अन्यथा ) हे रघुनन्दन=खुलानन्ददायक । अस्माभि = आवाम्या सौतया च विप्रहीणाया = वियुक्ताया, मातु = जनन्या, सुख = शर्म, न भवेत् = न स्यात्, ( तथाभवति ) न = अस्माक ( च सुख न भवेत् ) अत एव न विधाता०यमित्याशय ।

इन्द्रमती—( रामचन्द्रजीने कहा— ) हे खुरुन आनदवर्धक लक्ष्मण ! मेरे कहनेसे तुम ऐसा ही करो (अयोध्यामें ही रहो) क्योंकि इमलोगोंके (हमारे, तुम्हारे और सोताके) यहा न रहनेवर माता ( कौशल्या और सुमित्रा ) को मुख नहीं होगा ।

एवमुक्तस्तु रामेण लक्ष्मण इलदण्या गिरा ।

प्रत्युवाच तदा राम वान्यहो वान्यकोविंदम् ॥ १८ ॥

अन्यथः—तु, रामेण, एवम्, उक, तरा, वाक्यह, लक्ष्मण, इलदण्या, गिरा, वान्यकोविंद, राम, प्रत्युवाच ।

सुधा—यदायें तिति । तु=यदा, रामेण=ज्येष्ठश्रावा, एवम्=उक्तप्रधारेण, उक् =कथित, तदा=तस्मिन् काले, वाक्यहः=युक्तियुक्तवाक्योविद, लक्ष्मणः=सौमित्रि, श्लेषण्या=सरस्या, गिरा=वाचा, वाक्योविद=वाक्यपण्डित, राम=ज्येष्ठश्रावातर, प्रथयुवाच=कथयामास ।

इन्दुमतो—(पालमीकिंजी कहते हैं कि—) इस प्रकार जब भीरामचन्द्रजीने (माता कीशत्या और सुमित्राकी देख-रेख कानुके लिये अयोध्यामें रहनेको) कहा, तभ युक्तियुक्तिर वाक्योको जाननेवाले भी लक्ष्मणजी वाक्य-पण्डित श्रीरामचन्द्रजीको मधुर वचनोंसे उत्तर देने लगे— ।

तवैव तेजसा वीर ! भरत पूजयिष्यति ।

कौशल्या च सुमित्रा च प्रयतो नात्र सशय ॥ १६ ॥

अन्वय—हे वीर !, तव, एव, तेजसा, प्रयत, कौशल्या, च, सुमित्रा च, भरत, पूजयिष्यति, अत्र, सशय, न, (कर्तव्य)

सुधा—पूर्वोक्तानुसप्तिं परिहरन्नाइ-तवैवेति । हे वीर=क्षात्रतेज सप्तन !, तव=भवत, एव, तेजसा=पराक्रमेण, प्रयत=प्रयत्नेन, कौशल्या=तव मातर, च=तथा, सुमित्रा=मम मातर, च, भरत=कैवेयोतनय, (एव) पूजयिष्यति=अप्रमेयवत्तराममातुरसेवाया मम मदाननर्थं सप्तस्यतीति मत्वा सेविष्यते,। अत्र=अस्मिन् विषये, सशय=भरतो मम मातु सेवा करिष्यति न वेति सदैह, न, (कर्तव्य किन्तु) — ।

इन्दुमनो—(लक्ष्मणजीने कहा—) हे वीर राघव ! आपके प्रतापसे (भयसे) भरत माता कीशत्या और सुमित्राका प्रतिपानन करेगा (न कि दुख देगा) इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है (परन्तु—) ।

यदि दु स्थो न रक्षेत भरतो राज्यमुच्चमम् ।

प्राप्य दुर्मनसा वीर ! गर्वेण च विशेषत ॥ २० ॥

तमह दुर्मतिं कूर वधियामि न सशय ।

ततपक्षानपि तान् सर्वोस्त्रेलोऽयमपि किं तु सा ॥ २१ ॥

अन्वय—हे वीर ! उत्तम, राज्य, प्राप्य, दुर्मनसा, विशेषत, गर्वेण, च, दुस्य, (सन्) भरत, यदि, (मातर) न रक्षेत, (तदा) दुर्मतिं, कूरं, तम्, अह, वधियामि, (अत्र) सशय, न (वर्तते) तद् पक्षान्, तान्, रवान्, अपि, (इनिष्यामि) (तत्तद्) ब्रैलोऽयम्, अपि, (इनिष्यामि) 'किं तु सा' इत्युत्तरस्तोकान्वयि ।

सुधा—उद्देश्ये वालान्तरपव भय दर्शयति—यदीत्यादिना । हे वौर—  
द्वात्रतेज सवज्ज राम । उत्तम =धेष्ठ, राज्यम् =आधिगत्य, प्राप्य=लभ्या, हुर्म  
नसा =कैकेयीनुरोधादुष्टान्त करणेन, विशेषत, गर्वेण=प्रातराज्य मा किमन्यः  
करिष्यतोर्यदक्षारेण, च, दुर्स्थ =दुर्मार्गस्थ, यदा चञ्चलचित्त, ( सत् )  
भरत =कैकेयीसुन, यदि =चेत्, ( मातर ) न रक्षेत्=न पानयेत्, ( तदा )  
हुर्मति =दुष्टनिष्पत्यम् ( अत एव ) कूर=तृशास त=भरतम्, अह, विध्यामि=  
इनिष्पामि ( अत ) सशय =अय राजा एन इनिष्पति नवेति सदेह, न ( वर्तते ) ।  
ननु तेन विरोधे तत्पक्षीयगाजान्तरहतोपद्रव स्यादत आह—तत्पक्षानिति ।  
( तत्पक्षान्=तत्पक्षमात्रिय सुखुत्सृत, तान्, सर्वान्=ग्रजिनान् तृपतीन्, अपि,  
( इनिष्पामि ) ननु वहुमि सह विरोधे जये सशय सभाव्यत इति चेदत आह—  
ब्रैलोक्यमिति । ( तत्पक्ष ) ऐनोस्य =विसुवनम्, अपि, ( इनिष्पामि ) तावनी  
शक्तिरस्तपाश्वेऽस्तीति भाव । विध्यामीत्यार्प प्रयोग ।

इन्दुमती—( लक्षणजीने तमक्कर कहा—) हे वौर राघव । यदि वह  
भरत इस उत्तम ( अपोद्या ) राज्यको पाक्षर अपनी माना कैकेयीके कुचक्कसे  
विचारोक्तो गन्दा कर देगा और तदनुपार विशेषत ( अत्यन्त ) गर्वसे ( राज  
मदसे ) कुर्यागामी होकर ( माता कौशल्या और सुभित्राकी ) रक्षा नहीं करेगा  
तो मैं उस दुष्ट दृश्यको मार डालूगा—इसमें सन्देश नहीं है ( कि उस समय )  
जितने उसके पक्षपाती हाँगे उनको भी मैं मार डालू गा । ( इतना ही नहीं )  
तीनों लोक भी उसकी हिमायतमें खड़े क्यों न हो मैं तीनों लोकोंका सहार कर  
डालूगा ( तु ) किन्तु ( इसकी आवश्यकता नहीं होगी क्योंकि ) वह— ।

कौशल्या विभृयादार्या सहस्र मद्विधानपि ।

यस्या सहस्र ग्रामाणा सप्राप्तमुपजीविनाम् ॥ २२ ॥

अन्यथा—पूर्वत “किं तु सा” इति सम्बन्धीयम् । ( यदेव किं तु, यस्या,  
उपजीविनाम् =उपजीविभि भृत्यादिभिरित्यर्थ, ग्रामाणा =सवल्पाना “समौ  
सवस्यप्रामौ” इत्यमर । सहस्र=सहस्रश्ल्याक, सप्राप्त=सनस्थ, सा=प्रसिद्धा,

आर्या=कुर्तीना, कौशल्या=एव माता, मद्रिधान्=मत्सदृशान्, सहस्रमणि=सहस्रसरयाकानपि, विश्रयादृ=धारयेत् पोषयेच । यस्या उपजीविन सहस्रामाचिना विद्यते, या च मद्रिधसहस्रल्याकानपि पालयितु शक्नोति, तत्पाननदिष्ट येऽस्याभिन चिन्तनीयमित्याशय ।

इन्दुमती—(वह) आर्या माता कौशल्याजी तो मुझ जैसे हजारोंका स्वर्ण पालन-पोषण कर सकती है क्योंकि जिनके नेग पाने पाले सहस्रों गाढ़ोंके मालिक हैं ।

तदात्मभरणे चैव मम मातुस्तथैप च ।

पर्यासा मद्रिधाना च भरणाय मनस्त्वनी ॥ २३ ॥

आन्वय—तत्, मनस्त्वनी, च, एव आत्मभरणे, पर्यासा, तथा, एव, मम, मातु, च, भरणाय, ( पर्यासा, तथा ) मद्रिधाना, च ( भरणाय ( पर्यासा ) ) ।

सुधा—उक्तमेव भज्ञयन्तरेणाह—तदिति । तत्=उक्तहेतो, मनस्त्वनी=हृदमनस्का, च एव=यथैव, आत्मभरणे=स्वपोषणे, पर्याप्ता=परिपूर्णा, तथा एव=तेन प्रकारेणैव मम, मातु=सुमित्राया, च=अपि, भरणाय=पोषणाय, ( पर्यासा, तथा ) मद्रिधाना—मत्सदृशाना च, ( भरणाय पर्यासा ) अस्तीति शेष ।

इन्दुमती—इसलिये हे राघव । वे यशस्विनी माता कौशल्याजी आना और मेरी माता (सुमित्रा) का तथा मुझ जैसे (सहस्रों) का भरण-पोषण मनी-माति ( स्व ) कर सकती हैं ।

कुरुप्य मामनुचर वैधर्म्यं नेह विद्यते ।

कृतार्थोऽह भविष्यामि तत्र चार्थं प्रकृत्यने ॥ २४ ॥

आन्वय—(यदेवमत ) माम्, अनुचर, कुरुप्य, इह, वैधर्म्यं, न, विद्यते, ( एव सति ) अह, कृतार्थ , भविष्यामि, तत्र, अर्थं च, प्रकृत्यते ।

सुधा—एव रामोऽक परिदृश्य प्रस्तुत स्वाभिमत कैङ्गये प्रश्नयत्राह—कुरु एवेति । ( यदेवमत ) मा=नद्वयमणम्, अनुचर=मेवकम्, कुरुप्य=अनुमन्यस्व, इह=मत्सेवानुमतौ, वैधर्म्यं=वैपरीत्यसाधक ( क्विद्विदपि ) न विद्यते=नास्ति, भवदुक्षेतोरन्यथासिद्वेष्यगादितत्वादिति शेष । ननु कैङ्गर्याक्तरे तत्र वा हानिरित्यत आह—कृतार्थ इति । ( एव सति ) अह, कृतार्थ =हृतकृत्य, भविष्यामि=भविताऽर्थम्, तत्र=भवत्, अर्थं=स्वायास विना पलनूनाद्याहरण, च, प्रकृत्यने=प्रकृत्यति, एवज्ञोप्रयद्वित मदनुगमनमित्यभिप्राय । “प्रकृते” इति वचमानसामीप्ये भविष्यति लद् ।

**इन्दुमती—**अत एव हे गघव । आप मुझे अपना अनुचर बनाइये ( मुझे भी साधम बन हेते चलिये ) मेरे चलनेमें कोई भी विप्रतिपत्ति नहीं होगी । प्रथुत में कृत-कृत्य हो जाऊगा और आपका भी अर्थ-साधन होगा ।

धनुराशय सगुण खनित्रपिटकाधर ।

अग्रतस्ते गमिष्यामि पाथान तत्तदर्शयन् ॥ २५ ॥

**अन्त्य—**खनित्रपिटकाधर , ( प्रह ) सगुण, धनु , आदाय, तत्त, पन्थान, दर्शयन् , ते अग्रन , गमिष्यामि ।

**सुधा—**कैङ्क्षयमेव दशायज्ञाइ—धनुरित्यादिना । खनित्रपिटकाधर = खनित्र-मूलक दशानसाधक कुद्दात , पिटका-फलमूलाद्याइरण्योभ्या वशादिनि र्मितमञ्जूषाविशेष , खनित्रेण सहिता पिटका परति य सस्तनयोक , ( अह ) सगुण = ज्यासहित, धनु = कामुकम्, आदाय = गृहीत्वा, तत्त=भवत, पाथान=मार्ग, दर्शयन् = अवलोकयन् , ते=तत्त, अग्रन = अग्रे, गमिष्यामि=वजिष्यामि । अत्र धनुपहण व्यापदादिभ्यो नृशसजन्तुम्यो रक्षार्थम् ।

**इन्दुमती—**(लक्ष्मणजी अर्थ-साधनका स्थृतिकरण करते हैं—) हे राजव ! मैं तीर-धनुष, खता ( जपीनसे कन्द-मूलखोदनेश्च औजार ) और वासकी बनी फलमूल रखनेकी पट्टी लिये हुए आपके छागे आगे ( बनमें ) राजा बतलाता हुआ चलूण ।

आहरिष्यामि ते नित्य मूलानि च फलानि च ।

चन्यानि च तथान्यानि स्वाहार्द्दणि तपस्त्रिनाम् ॥ २६ ॥

**अन्त्य—**नित्य, मूलानि, च, फलानि, च, तथा, तपस्त्रिना स्वाहार्द्दणि, अ यानि, च, वन्यानि ( वस्तूनि ) ते, आहरिष्यामि ।

**सुधा—**इथ पषि सम्भावित कैङ्क्षयमभिष्याय स्यानेत्रम्भाविनमाह—आ हरिष्यामःति । नित्य = प्रतिदिन, मूलानि, च = तथा, फलानि = तत्तद्वृत्तुभ वानि आस्रादीनि, च = तथा, तपस्त्रिना = तपस्यवता जनाना, स्वाहार्द्दणि = होमयोग्यानि हविमूलानि, अ यानि = शास्त्रप्रियानवीज़ज्ञादीदीनि, च, वन्यानि = वनोपज्ञानि, ( वस्तूनि ) ते = वदर्थम्, आहरिष्यामि = आनेष्यामि ।

**इन्दुमती—**श्रीर हे राघव ! ( बनमें ) नित्यप्रति कन्द-मूल, फल तथा तपस्त्रियोंके हथन करनेका सामग्री एव बनमें उत्तम होने वाली अर्थ आवश्यक वस्तुयें भी ला दिया करूणा ।

भवास्तु सह वैदेह्या गिरिसानुषु रस्यते ।

अह सर्वं करिष्यामि जाप्रत स्वपतश्च ते ॥ २७ ॥

अन्वय—गिरिसानुषु, वैदेह्या, सह, भवान्, रस्यते, अह, तु, ते, जाप्रत, स्वपत, च, ते, सर्वं, करिष्यामि ।

सुधा—कैङ्कर्यान्तरमाह—भवानीति । गिरिसानुषु = पर्वतशृङ्खेषु, वैदेह्या = सीतया, सह = साधू, भवान्, रस्यते = विद्विष्यते, अह = लक्ष्मण, तु, जाप्रत = जागरण विदधत, स्वपत = शयन कुरुते, च, ते = तत्त्व, सर्वम् = आश्रितमनुमिति, च, करिष्यामि = सपादिष्यामि । अत्र “जाप्रत स्वपतश्च” इत्युक्त्या स्वस्य निद्रानन्धीनत्वं सूचयति ।

इन्दुमतो—(लक्ष्मणजीने कहा-हे राघव ! और) आप सीताजीके साथ पर्वतोंके शिखरोंपर (निष्ठिन्त होकर) विहार कीजियेगा । मैं आपके सोते-आगते (रात्रि-दिवा) सब काय कर दिया करुणा अर्थात् रातमें आपके शयनके समय पहरेदारका काम करुणा और दिनमें उपर्युक्त (छुवीसवा श्लोकोंक) कार्य करुणा ।

रामस्त्वनेन वाक्येन सुप्रीत प्रत्युवाच तम् ।

ब्रजाऽपृच्छुस्व सौमित्रे ! सर्वमेव सुहृद्जनम् ॥ २८ ॥

अन्वय—अनेन, वाक्येन, सुप्रीत, राम, ते, प्रत्युवाच, हे सौमित्रे ! ब्रज, तु, सर्वम्, एव, सुहृद्जनम्, आपृच्छुस्व ।

सुधा—अनेन = स्वपतश्चेत्यतेन, वाक्येन = वचसा, सुप्रीत = सुप्रसन्न, राम, ते = लक्ष्मण, प्रत्युवाच = प्रत्युक्तवान्, हे सौमित्रे = लक्ष्मण !, ब्रज = मया सह अनुगच्छ, तु = किन्तु, सर्वमेव = निखिलमेव, सुहृद्जन = सुहृद सौहार्द, जनयति नित्य प्रकटयतीति त मात्रादिमित्यर्थ । आपृच्छुस्व = अनुमति गृहा य, एतेन मात्रादिसम्मानमेव कर्त्तव्य न तु सह नेतव्यमिति सूचितम् ॥

इन्दुमतो—रामचंद्रजी अपने छोटे भाई लक्ष्मणजीके इन (उपर्युक्त) वचनोंको सुन अति प्रसन्न होकर बोले—हे सौमित्रे लक्ष्मण ! जाओ, (पहले) अपने सब (माता आदि) सुहृद्जनोंसे (मेरे साथ बन चलनेही) अनुमति ले आओ (तदनन्तर--) ।

ये च राष्ट्रो ददौ दिव्ये महात्मा वरुण स्वयम् ।

जनकस्य महायज्ञे धनुषी रौद्रदर्शने ॥ २९ ॥

अभेद्ये कवचे दिव्ये तूणो चाऽक्षयसायकौ ।

आदित्यविमलाभौ द्वौ खङ्गौ हेमपरिष्ठृतौ ॥ ३० ॥  
सत्कृत्य निहित सर्वमेतदाचार्यसंग्रहनि ।  
सर्वमायुषमादाय क्षिप्रमावज्ज लक्षण । ॥ ३१ ॥

अन्वय — राह , जनकस्य, महायणे, महात्मा, वरण, स्वय, च, ये, दीद  
दर्शने, दिव्ये, घनुशी, दिव्ये, अभेद्ये, कवचे ( तथा ) अकृत्यसायकौ, तृणी, च,  
हेमपरिष्ठृतौ, ( अत एव ) आदित्यविमलाभौ, द्वौ, खङ्गौ, सत्कृत्य, ददौ, एतत्,  
सर्वम्, आचार्यसंग्रहनि, ( मया ) निहित, हे लक्षण ।, ( तत् ) सर्वम्, आयुष,  
( त्वम् ) क्षिप्रम्, आदाय, आवज्ज ।

सुधा—राज्ञ मूरते, जनकस्य=वैदेहस्य, महायणे=महामणे, महात्मा,  
वरण = प्रचेता, स्वय च = स्वयमेव, ये, रौद्रदर्शने = भयहृतावलोक्ने, दिव्ये=  
अमत्यें, घनुशी=चापौ, दिव्ये=अर्लौकिके, अभेद्ये=अच्छेद्ये, कवचे = उत्तरश्लुदसी  
“उत्तरश्लुद कङ्कटकोऽजगर कवचोऽज्ञियाम्” इत्यमर । ( तथा ) अकृत्यसायकौ=  
अकृत्यवाणी, तृणी=इपुषी, च=तथा, हेमपरिष्ठृतौ=सुवरणमूर्धितौ, ( अत एव )  
आदित्यविमलाभौ=स्वच्छुदिवाकरकान्तितदृशौ द्वौ, खङ्गौ=निखिलौ, ‘खङ्गे तु  
निखिलं घनुरादिकम् , आचार्यसंग्रहनि=गुरुविद्विषये, ( मया ) निहित=  
पूजार्थ स्थानित, हे लक्षणे=सौमित्रे । ( तत् ) सर्वम्=अखिलम्, आयुषम्=  
अख्यम्, ( शब्द जातावेकवचनम् ) (६) क्षिप्र=शीघ्रम्, आदाय=एहीत्वा, आवज्ज=  
आगच्छ । अत घनुरादितु सर्वत्र द्विवचनोपादानादावमोर्ददाविति विदम् ।

यद्यप्य रामायणे बालकाएडैन्युकोऽय विषय , तथापि यथा सुदरकाण्डे  
“मणिरत्नमिद दत्त वैदेशा शवसुरेण मे । वधूकाले यथा वद्ममधिक मूर्धित  
र्णोमते ॥” इत्युक्त सुदरकाएडैन्यते यद्वदेवाश्रानुवादालिपिद इति विभावारीयम् ।

इन्दुमती—(सुहृजजनोंकी आहा पानेके पक्षात्) पुन हे लक्षण । राज्ञि  
जनकके महायहम ( जानकी-विवाहके अवलोक्त ) महात्मा वरणदेवने स्वय  
( अपने हाथोसे ) जो भयकर दो घनुप, दो अमोघ कवच, दो दिव्य अच्य  
( जो वाणोंसे कभी खाली नहीं होता ऐसा ), तरकस और सुरर्ष्णे मदा हुआ  
सूर्यके समान अत्यात वैदीप्यमाता दो तलवार आदि ( हम-तुम दोनोंको ) सम्मान  
करके दिये थे, वे सब गुरु वशिष्ठजीके घरमें रखे हैं, उन रव अख-राखोंको  
कैकर जब्दोंसे तुम यदा चले आओ ।

स सुहृज्जनमामध्य वनवासाय निश्चित ।

इहगाकुगुरुमागम्य जप्राहा८८युधसुत्तमम् ॥ ३२ ॥

अन्यथ — वनवासाय, निश्चित, स, सुहृज्जनम्, आम द्य, ( तत ) इद्वाकुगुरुम्, आगम्य, उत्तमम्, आयुध, जप्राह ।

सुधा—वनवासाय=वन ग तु, निश्चित = नृतनिषय, स = लक्ष्मण, सुहृज्जन = मात्रादिम्, आम द्य = अनुमा य, ( तत ) इद्वाकुगुरु=रघुकुचगुरु वशिष्ठम्, आगम्य = प्राप्य, उत्तम = अष्टमम्, आयुधम् = अख्ल घनुरादि, जप्राह = गृहीतवान् ।

इन्दुमती—(बालमीकिजी कहते हैं कि इसप्रकार श्रीरामच द्वंजीके बचनों को सुनकर) अपना बन जाना निश्चित हुआ जान, श्रीनक्ष्मणजीने अपनी माता सुमित्रा आदि सुहृज्जनोंके पास आकर विदा मारी और तदुपरा न कल-गुरु वशिष्ठजीके घरसे उन उत्तम २ ( वर्ण प्रदत्त ) अख्ल-शास्त्रोंको ले आये ( तदुपरा त— ) ।

तद्विद्य राजशादूल सरकृत माल्यभूषितम् ।

रामाय दर्शयामास सौमित्रि सर्वमायुधम् ॥ ३३ ॥

अन्यथ — राजशादूल, सौमित्रि, दिव्य, सरकृत, माल्यभूषितम्, सर्व, तद्, आयुध, रामाय, दर्शयामास ।

सुधा—राजशादूल = राजव्याप्र, सौमित्रि = लक्ष्मण, दिव्य = दिवि भव, सरकृत = पूजित, माल्यभूषित = लगलचूकृत, सर्वम् = अस्तिल, तद् = गुरुग्रहानी तम्, आयुधम् = अख्लम् ( जातावेकवचनम् ) आयुधानीत्यर्थ । रामाय = अष्टमात्रे, दर्शयामास = अवलोक्यामास ।

इन्दुमती—क्षनियश्वेष लक्ष्मणजीने गुरु वशिष्ठजीके घरसे लाये हुए माला श्रोसे अलकृत तथा पूजित उन सभी उत्तम आयुधोंका श्रीरामच द्वंजीके सामने रखकर दिखलाया ।

तमुग्राचात्मवान् राम प्रोत्या लक्ष्मणमागतम् ।

काळे त्वमागत सोम्य ! काहिते मम लक्ष्मण ॥ ३४ ॥

अन्यथ — आत्मवान्, राम, जागर, लक्ष्मण, ( वीद्य ) प्रोत्या, उवाच, हे सौम्य ! लक्ष्मण ! मम, काहिते, काले, त्व ( शीमम् ) आगत ।

सुधा—आत्मवान् = जीवादिनिय ता, राम = दाशरथि, आगतम् = आयत, शीमम् = शीम ।

लद्मण्य = सौमित्रि, ( वीच्य ) श्रीत्या = प्रेमणा, उवाच—उक्तवान् , हे सौभ्य लद्मण्य-सुभेग सौमित्रे । मम काङ्क्षिते = मदीषिते, काले=प्रयोजननिभित्त खण्डनोनितसमये, त्व, ( शीघ्रम् ) आगत = प्राप्त ।

इन्दुमतो—( तदुपरान्त बशिष्ठजीके घरमे घुशादि र्थस्त्र-शस्त्रोंको लेकर शीघ्रतासे ) आये हुए लद्मण्यजीको ( देखकर ) रामचन्द्रजीने प्रसन्न होकर कहा—अद्वी, भद्र लद्मण्य ! ( मैं अभी तुम्हारी याद कर रहा था ) भले समय पर तुम आये ।

अह प्रदातुमिच्छामि यदिद मामक धनम् ।

ब्राह्मणेभ्यस्तपस्त्रिभ्यस्त्रया सह परन्तप ! ॥ ३५ ॥

सन्ध्य—हे परन्तप ! यत् , मामकम् , इद, धन, ( तत् ) तथा, सह, तपस्त्रिभ्य, ब्राह्मणेभ्य, थद, प्रशातुम् , इच्छामि ।

सुधा—शहूरमेवाह-अद्विनि । हे परन्तप=परमतपस्त्रिन् लद्मण्य । यत् , मामक = मदुपाजितम् , इद = दृश्यमान, धन ≈ वित, ( तत् ) तथा = भवना, सह, तपस्त्रिभ्य = तरस्यानुग्रातृभ्य, ब्राह्मणेभ्य, =विप्रेभ्य, अह = राम, प्रशातु = वितरितम् , इच्छामि = अभिलक्षामि ।

इन्दुमतो—( रामचन्द्रजीने कहा—) हे परमतपस्त्रिन् लद्मण्य ! ( देखो ) मेरे पास जो कुछ मेरी ( उपभोग करनेकी निजी ) सम्पत्ति है, उसे मैं तपस्थी ब्राह्मणोंको दे देना चाहता हू, तुम इस कार्यमें मेरी मदद करो ।

वसन्तोह दृढ भक्त्या गुरुपु द्विजसत्तमा ।

तेपामपि च मे भूय सर्वंया चोपजीविनाम् ॥ ३६ ॥

आन्ध्य—इह, गुरुपु, भक्त्या, ( ये ) द्विजसत्तमा, दृढ, वसन्ति, तेपाम्, अपि, ( तथा ) मे, सर्वेषाम् , उपजीविना, च, भूय , ( दातुमिच्छामि )

सुधा—इह=मत्समीपे, गुरुपु = ज्ञानदेपु, भक्त्या = प्रेमणा, ( ये ) द्विज सत्तमा = विप्रमुख्या , दृढ = दृढर्वक, वसन्ति = निवसन्ति, नित्य गुरुगुरुपूरण कुर्वतीत्यथ । तेपामपि तेत्य अपि, ( तथा ) मे=मम, सर्वेषाम् उपजीविना च= सर्वेभ्यो भूत्येभ्यश्च, भूय = अतिशयेन ( दातुमिच्छामि ) तानानयेति शेष ।

इन्दुमतो—( रामचन्द्रजीने कहा—) हे लद्मण्य ! इस नपरमें जो गुरुमें दृढ भक्ति रखने वाले उत्तम ब्राह्मण वहते हैं, उन सबको तथा अपने भूत्य वर्गों को भी ( इस वनगमनके अवधर पर ) अधिकसे अधिक धन देना उचित है ।

वसिष्ठपुत्र तु सुयज्ञमाये त्वमानयाशु प्रवर द्विजानाम् ।

अपि प्रयास्यामि वन समस्तानम्यर्थं शिष्टानपरान्द्वजातोन् ॥३७॥  
इत्याखे श्रीमद्रामायणे वर्णकीय आदिकाव्येऽयोग्याकारड एकविंश सर्गं ।

अन्वय — द्विजाना॑, प्रवर, वसिष्ठपुत्रम्॒, आर्ये॑, सुयज्ञ, तु॒, आद्व॑, त्वम्॑, आनय॑, ( तथा ) समस्तान्॒, अपरान्॒, शिष्टान्॒, द्विजातीन्॒, अपि॑, अम्यर्थं॑, वन, प्रयास्यामि॑ ।

**सुधा** — द्विजाना॑ = विप्राणा॑, प्रवर॑=श्रेष्ठ वसिष्ठपुत्र॑ = कुलगुरुविधिष्ठसुतम्॒, आर्ये॑=‘कर्तव्यमाचरन्॒ काममक्त्वा॑ यमनाचरन्॒ । तिष्ठति प्रकृताचारे स तु आर्य॑ इति स्मृत ॥’ इत्युच्चलक्षणोपेत महाकुलीनभिति यावत् । सुयज्ञ॑=सुयज्ञमामान, तु॒, आशु॑=शीघ्र, त्वम्॑, आनय॑=प्रापय, ( तथा ) समस्तान्॒=समप्रान्॒, अप॑ रान्॒=आचान्॒, शिष्टान्॒=कलात्मकतारो भान्तिरद्वितान्॒, द्विजातीन्॒=ब्राह्मणान्॒, अपि॑, ( आनय, अह सुयज्ञ तान्॒ द्विजाभ्य ) अम्यर्थ॑ = पूजयित्वा, वन॑=महारथ, प्रयास्यामि॑=प्रवजिष्यामि॑ । अत “वसिष्ठपुत्र सुयज्ञमानय” इत्यनेन मूलप्रभोदंशरथस्य वसिष्ठ पुरोहित “तद्वपुत्रस्य तद्वपुत्र” इति न्यायेन सुयज्ञस्य विशिष्यानयननियोग इति कुशला ।

इति परिडतश्रीलोकनाथठक्कुरामज-षाहित्य-व्याकरणाचार्य-श्रीकृष्णमोहन शास्त्रिनिर्मित “सुधा॑” टीकायामेकविंश सर्ग ।

**इन्दुमती॑—**( रामचन्द्रजीने कहा—) हे लद्दपण ! ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ वसिष्ठ-जोके पुत्र पूज्य भी सुयज्ञजीको तुम जाकर शीघ्र बुना लाओ, मैं उनका तथा तत्प्राप्त अन्य भी सभ्य कर्मठ द्विजातियों ( ब्राह्मण-द्वितिय-वैश्यो ) का यथा योग्य सम्मान करके वन जाऊँगा ।

इस प्रकार दरभगा मङ्गलान्तर्गत ‘तरीनी॑’ ग्रामवाली परिडत श्रीरामच द्रव्यं॑ व्याकरणाचार्य विरचित ‘इन्दुमती॑’ टीकामें अयोध्याकाण्डका एकत्रिसवा सर्ग समाप्त हुआ ।

समाप्तव्याऽय प्रन्थ ।

## परमलघुकला

### ( परमलघुमञ्जूषाप्रश्नोत्तरी )

प्रस्तुत सत्करण में परीक्षा में आने योग्य सभी प्रश्नों के उत्तर ऐसे सरल तथा निर्दृष्ट परिष्कारों से युक्त लिख दिये गये हैं कि—“एक पन्थ दो काज” आने पाय लगाने में भी इस से आपको अत्यधिक सहायता पहुँचेगी और कठोर कर लेनेपर परीक्षा में अधिक से अधिक नम्बर भी पासकेगें। १)

### मनोरमाशब्दरत्नप्रश्नोत्तरी

इसमें हर एक प्रश्नका उत्तर इस तरह लिखा गया है कि अस्वास करलेने पर विद्यार्थी परीक्षा में पूरी अकलता प्राप्त कर सकेंगे तथा प्रथाशाय का भी पूरा क्षान हो जायगा। प्रथम खण्ड ॥१॥) द्विंदुः खण्ड ॥२॥)

### प्रवन्ध-पारिजातः

मुन्नप्फरपुर सस्कृत कालेज के सुविसिद्ध वेदान्ताध्यापक कर्ति १० श्रीरामचन्द्र मिश्र विरचित परोक्षोर्योगो यह प्रश्न्य-पारिजात नामक ग्रन्थ वस्तुत सस्कृत रचनामें प्रथम स्थान पा लिया है १।)

### सिद्धान्तकौमुदी—जेवी-गुटका

सिद्धान्तकौमुदी का ऐसा सुदर जेवी गुटका का मनोहर सत्करण यह प्रथम बार ही है। प्रति दिन सिद्धान्तकौमुदी की आृति करना विद्यार्थियोंके लिये आवश्यक है। सुवह-शाम घूमते—किरते समय तथा परदेश-यात्रा करते समय विद्यार्थियोंका बहुत ही समय व्यथामें व्यतीत हो जाता है। अब जहाँ हो जाना हो इस सत्करण को जेवी में रख लीजिये और जब चाहें सिद्धान्तकौमुदी की आृति कीजिये। सूत्रशब्दी धारुद्यादि परिशिष्ट सहित ३।)

**सिद्धान्तकौमुदी—१०** गोगालशास्त्रीनेनेकृत परीक्षोपयोगी 'सरला' टीका तथा रूपलेखनप्रकार-पक्षिलेखनप्रकार आदि परीक्षोपयोगी विविध परिशिष्ट सहित स्थीपत्ययान्त १॥) काशकान्त २।)

प्राप्तिस्थानम्—चौद्वाश्व सस्कृत पुस्तकालय, बनारस मिठी।

१. अधि धातुरुप आदि है "रिर्द्वित अभिनव" (८८)

इसमें प्रथमार्थीका के छात्रों को अनुबाद १२० के नियम अत्यन्त सरल रूपमें समझाए गये हैं और तदनुसार अनुग्रादार्थ आवास भी दिए गये हैं। अभ्यासार्थ वाक्योंमें आप हुए प्रत्येकठिन शब्दों के सम्बन्ध से दिए गये तथा दिए गये सरकृत अनुबाद करने के प्रबन्ध भी पुस्तक में आते में १० प्रकरणोंमें दें दिए गये हैं जिनस अनुबाद करने में अत्यन्त सरलता हो गई है। पुस्तक की उपादेयता पर गवर्नेंसेट स० कालेज, हिंदू विश्वविद्यालय काशी तथा आगरा, छुर्णी, घारानपुर, इन्दौर आदि २ बड़े बड़े विद्यालयोंने मुक्तकार्य से प्रसापन दिए हैं जो पुस्तक में प्रकाशित आप को प्राप्त होंगे। प्राथमिक विद्यालयोंके लिए इस सेवाकर अनुबाद के लिए पथ-प्रदर्शक दूसरी पुस्तक नहीं है २।)

### प्रबन्ध-पारिजात

इसमें परीक्षार्थी छात्रोंका सम्बृत प्रबन्ध रचना लिखने के नियम अत्यन्त सरल रूपमें समझाये गये हैं और तदनुसार परीक्षोपयोगी 'प्रबन्ध लखनप्रकार' (परीक्षामें आने वीम्य नियन्त्रों का उत्तर) इस तरह सरल और सक्षिप्त में लिखा गया है कि अभ्यास कर लेने पर भी विद्यार्थी परीक्षामें पूरी सफलता प्राप्त कर सकते हैं। इतना ही नहीं अत्यन्तमें (१) 'पत्र लखन प्रकार' (चिट्ठी-पत्री, आवेदन पत्र आदिका उप्लेस ) तथा प्रसगोपयुक्त (२) 'दुष्पापितागारावली' (३) 'मुभापित पद्याशावली' और (४) 'लीकिक न्यायमाला' आदि विषयोंका समावेश करके आधुनिक चतुरख विद्यान बननेका सुगम रास्ता दिखाया गया है। विश्वास है कि आजतक के प्रकाशित प्रबन्धोपयोगी प्रन्थोंमें इस 'प्रबन्धपारिजात' के समान दूसरी कोई भी पुस्तक नहीं है। १।)

### विदुलोपारूपानम्

सान्ध्य-लीला प्रिलाम-स्वरूप-हिन्दीटीकाद्योपेतम् ।

सदृश्व ४८ के नवीन पाठ्यक्रमके अनुधार यह प्रयत्न प्रकाशित किया गया। इस प्रयत्नकी 'लीला' नामक सम्बृत व्याख्यामें अन्धय, पर्याय, समाप्त, कोश देकर शब्दोंकी अति सरल व्याख्या कर दी गयी है। साथमें 'विलास' नाम विस्तृत हिन्दी भाषा टीका हानम तो इस सम्बृतकी उपयोगिता और भी अधिक दर्शाई है। प्रथमार्थ सुक्रोमलभासि विद्यालयोंके लिये यही एक सबोंका एक सिद्ध हो सकता है। द्वितीय सम्बृत १।

प्राप्तिस्थानम्—नाम्भरा भर्तु न पुस्तकालय, उनारस । १